इतिहास और नागरिक शास्त्र

इतिहास और नागरिक शास्त्र

कक्षा VIII की पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जुलाई 1980 : आषाढ़ 1902

पुनर्मुद्रण
अप्रैल 1981 : चैत्र 1903
मार्च 1983 : चैत्र 1905
दिसम्बर 1983 : पौष 1905
फरवरी 1987 : माघ 1908

P.D. 40 T—SC

मानचित्रों में आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

मूल्य : रु. 8.65

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित तथा जुपीटर आफसैट प्रैस, बी 10/3 झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित।

आमुख

यह पाठ्यपुस्तक "इतिहास और नागरिक शास्त्र" माध्यमिक कक्षाओं की पुस्तकों की श्रेणी में तीसरी पुस्तक है। कक्षा छः के लिए निर्मित पहली पुस्तक "प्राचीन भारत और हमारा नागरिक जीवन"—के विषय में है, सातवीं कक्षा के लिए निर्मित दूसरी पुस्तक "मध्यकालीन भारत और हम अपना शासन कैसे चलाते हैं"—पर आधारित है। प्रस्तुत पुस्तक कक्षा आठ के लिए है और यह "आधुनिक भारत और स्वतंत्र भारत—उपलब्धियां और चुनौतियां"—विषय पर आधारित हैं।

"आधुनिक भारत" अठारहवीं शती के प्रारम्भ से लेकर स्वतंत्रता-प्राप्ति तक के भारतीयों के जीवन में आए प्रमुख परिवर्तनों के विषय में है। इसमें आधुनिक भारत के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण व्यक्तियों तथा विशिष्ट घटनाओं पर आधारित न रखकर, आंदोलनों तथा संस्थाओं के अध्ययन द्वारा करने का प्रयास किया गया है।

"स्वतंत्र भारत—उपलब्धियां और चुनौतियां—का उद्देश्य विद्यार्थियों को उन चुनौतियों से अवगत कराना है जो स्वतंत्र भारत के सम्मुख आईं। इसके साथ-साथ इसका उद्देश्य भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त उपलब्धियों से भी विद्यार्थियों का परिचय कराना है। इस बात का भी प्रयास किया गया है कि पुस्तक की भाषा तथा अभिव्यक्ति यथासंभव सरल हो और विषयवस्तु पूर्णतया व्यावहारिक हो। प्रत्येक अध्याय के अन्त में दिए गए प्रश्न—अभ्यास शिक्षकों एवं विद्यार्थियों—दोनों के प्रयोग के लिए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में इतिहास के खंड का निर्माण सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के डा० जी० एल० आद्या एवं श्री अर्जुन देव ने किया

है। इस के प्रश्न—अभ्यास श्री एस० एच० खान और श्री ओ० पी० मलिक की सहायता से बनाए गए और रेखाचित्र श्री के० सी० बाग ने तैयार किए। इस खंड का हिन्दी-अनुवाद दिल्ली विश्वविद्यालय के डा० गिरीश मिश्र ने किया। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इन सबके प्रति अपना आभार प्रकट करती है।

सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के डा० डी० एस० मुले, श्री ए० सी० शर्मा और श्रीमती सुप्ता दास का भी मैं आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक के नागरिक शास्त्र के खंड का संशोधित संस्करण तैयार किया है। विभाग के श्री रमेशचन्द्र तथा जनसंख्या शिक्षा इकाई के श्री सत्यपाल चावला, के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूं जिन्होंने योजना एवं जनसंख्या के अध्यायों को तैयार करने में सहायता दी है। पाण्डुलिपि का अवलोकन करने तथा उसे अन्तिम रूप देने के लिए अनुभवी शिक्षकों और विश्वविद्यालय स्तर के विशेषज्ञों का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है। इस खंड का हिन्दी-अनुवाद अग्रसेन कालिज, इलाहाबाद के उप-प्रधानाचार्य श्री पी० एस० खरे ने किया है। श्री एम० डी० धरमानी ने इसके लिए चित्र तैयार किए हैं। परिषद् इस सब के प्रति आभारी है।

पुस्तक को उपयोगी बनाने के लिए शिक्षकों तथा शिक्षाविदों के सुझावों का हार्दिक स्वागत है।

शिव के० मित्र

नई दिल्ली
अप्रैल 1980

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

इतिहास

आधुनिक भारत

जी० एल० आद्या
अर्जुन देव

विषय-सूची

अध्याय 1

आधुनिक विश्व

कल्पना करो कि सत्रहवी शताब्दी का कोई व्यक्ति आज एकाएक जीवित हो जाता है। आँखें खोलने पर वह आसपास की दुनिया को विस्मय से देखेगा। आसपास की दुनिया उसे बिल्कुल अपरिचित तथा 17 वीं शताब्दी के अपने सुपरिचित संसार से भिन्न लगेगी। उसे अपने जमाने की कुछ इमारतें देखने को मिल सकती है जिनमें से कुछ खँडहर बन चुकी हैं और कुछ ज्यों की त्यों हैं। उसे अपने जमाने की तुलना में कई गुना अधिक और बड़े शहर देखने को मिलेंगे। इतना ही नहीं, उसे आज के शहर पुराने जमाने के शहरों से बिल्कुल भिन्न लगेंगे। वे गुणात्मक रूप से एक दूसरे से भिन्न हैं। यहाँ तक कि भूदृश्य भी भिन्न है क्योंकि उसके जमाने में न कारखाने थे और न पक्की सड़कें। जिस प्रकार के मकान वह आज पाएगा वैसे पहले नहीं थे। सड़कों पर उसे ऐसी गाड़ियाँ देखने को मिलेंगी जिनकी उसने पहले कल्पना भी नहीं की थी। विरले उसे ऐसा कोई वाहन मिलेगा जिसकी शक्ल-सूरत उसके जमाने के किसी वाहन के अनुरूप हो। आसमान में उड़ते हवाई जहाज या पटरियों पर चलती रेल गाड़ी उसे आश्चर्यचकित कर देगी। दुकानों में उसे ऐसी चीजें देखने को मिलेंगी जिन्हें उसने पहले सपने में भी नहीं देखा था। उनके प्रयोग की विधि जानने में भी उसे कुछ समय लगेगा। गाँवों में वह खेती करने के नए तौर-तरीके देखेगा। ऐसी कुछ फसलें भी हो सकती हैं जिन्हें वह पहली बार देखेगा। बारीकी से न देखने पर भी वह जल्द ही समाज, राजनीति और संस्कृति या यों कहें कि हर क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन पाएगा। लोगों की भाषा में भी वह भारी परिवर्तन पाएगा। इस प्रकार वह अपने को एक ऐसी बिल्कुल भिन्न दुनिया में पाएगा जिसके बारे में उसे सपने में भी कोई विचार नहीं आया था।

इस किताब में उपर्युक्त परिवर्त्तनों में से कुछ के बारे में तुम पढ़ोगे। तुम देखोगे कि हमारे अपने देश में पिछले दो-तीन सौ वर्षों में क्या परिवर्त्तन हुए हैं। तुम्हें अब तक प्राचीन और मध्यकालीन जीवन और समाज के संबंध में कुछ मालूम हो चुका है। तुम देख चुके हो कि संसार प्रारंभ से लेकर अब तक कभी जड़वत नहीं रहा है। मानव और उसके सहयोगी मानवों के क्रिया-कलापों के परिणामस्वरूप मानव समाज और विश्व में निरंतर परिवर्त्तन होते रहे हैं। समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक संस्थाएँ, संक्षेप में, जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्त्तन होते रहे हैं। परिवर्त्तन कभी तेजी से और कभी धीमी गति से हुए हैं। कभी परिवर्त्तनों को तत्कालीन लोगों ने अनुभव किया और कभी उनकी धीमी गति के कारण उनके संबंध में उन्हें कुछ अनुभव न हो सका। इस प्रकार परिवर्त्तन संसार का नियम रहा है। किंतु परिवर्त्तन जितनी तेजी से पिछले दो-तीन सौ वर्षों में हुए हैं उतनी तेजी से पहले कभी नहीं हुए।

यहाँ तुम कई प्रश्न पूछ सकते हो : किन परिवर्त्तनों ने हमारी दुनिया को 17वीं शताब्दी की दुनिया से बिल्कुल भिन्न बना दिया है ? उपर्युक्त परिवर्त्तन कब और कैसे शुरू हुए और किस प्रकार उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है ?

17वीं शताब्दी की दुनिया से आया हमारा दोस्त भी ये ही प्रश्न पूछेगा। उसकी जिज्ञासा भी तुम्हारी तरह ही होगी।

उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए पिछले दो-तीन सौ वर्षों का इतिहास पढ़ना और समझना होगा। किंतु इस इतिहास को कैसे जाना और समझा जा सकता है ?

तुम पहले पढ़ चुके हो कि विगत काल के अवशेषों तथा अन्य चीजों ने हमें प्राचीन और मध्यकाल के इतिहास को तैयार करने और टूटी कड़ियों को जोड़ने में सहायता दी है। भूतकालीन अवशेषों में इमारतें तथा पुराने सामान, औजार, हथियार इत्यादि और उनके संबंध में पुरातत्वविदों द्वारा प्रस्तुत नए तथ्य हैं। पुराने शिलालेख, यात्रा-वर्णन, संस्मरण, अभिलेख तथा पुस्तकें इतिहास की कड़ी जोड़ने में सहायक हुई हैं। तुम्हें ज्ञात है कि बहुत पुराने अभिलेख, पुस्तकें, संस्मरण एवं यात्रा-वर्णन भोजपत्रों तथा ताल-पत्रों पर लिखे हुए हैं।

आधुनिक काल के इतिहास को पढ़ना और समझना अपेक्षाकृत आसान है। सूचना के सूत्रों की कमी नहीं है। इस काल के इतिहास पर प्रकाश डालने वाली चीजों को सुरक्षित रखा गया है। उनको सुरक्षित रखने के लिए काफी सावधानी बरती गई है। पुस्तकें, दस्तावेज और सरकारी अभिलेख सुरक्षित रूप से अभिलेखागारों में रखे गए हैं। तुम

उन्हें देख और पढ़ सकते हो। इस काल में लिखी और छपी अन्य किताबें पुस्तकालयों और यहाँ तक कि हमारे घरों में भी मिलेंगी। इनमें से अनेक पुस्तकें और कई प्रकार के प्रतिवेदन (रिपोर्ट) तथा अभिलेख समय-समय पर मुद्रित और पुनर्मुद्रित होते रहते हैं जिससे कि जो उन्हें पढ़ना चाहें उन्हें वे आसानी से मिल सकें। इनके अतिरिक्त कई अन्य चीजें हैं जिनका तुम निरीक्षण और अध्ययन कर सकते हो। उदाहरण के लिए महत्त्वपूर्ण इमारतें, नई और पुरानी मशीनें आदि। औद्योगिक संग्रहालयों में तुम्हें अनेक ऐसी पुरानी मशीनें देखने को मिलेंगी जो अब प्रयोग में नहीं आती हैं। उनमें से कुछ मशीनें तो सिर्फ सौ वर्ष पूर्व पहली बार इस्तेमाल में आईं किंतु अब कहीं भी प्रयोग में देखने को नहीं मिलती हैं।

अपने देश में ऐसे अनेक लोग अब भी वर्तमान हैं जिनको देश के जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन या मोड़ लाने का श्रेय है। उदाहरण के लिए, ऐसे कई लोग अब भी हमारे बीच हैं जिन्होंने भारत को स्वतंत्र बनाने के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किए। इनमें हमारे अपने परिवार के बड़े-बूढ़े सदस्य भी हो सकते हैं। हम उनसे स्वतंत्रता-आंदोलन के बारे में पूछ सकते हैं। इस प्रकार हमारे बीच कई व्यक्ति और चीजें हैं जिनसे हम अपने देश के आधुनिक इतिहास के किसी न किसी पहलू के बारे में काफी बातें जान सकते हैं।

यहाँ तुम्हें एक जिज्ञासा हो सकती है कि 18वीं शताब्दी के बाद के इतिहास को हम आधुनिक भारत का इतिहास क्यों कहते हैं।

तुम्हारी यह जिज्ञासा बिल्कुल सही है। अन्य देशों तथा संपूर्ण विश्व के इतिहास की तरह ही भारत का इतिहास तीन कालों—प्राचीन, मध्य, तथा आधुनिक में विभाजित है।

इस विभाजन का आधार क्या है? उपर्युक्त तीनों कालों में समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति और संस्कृति गुणात्मक रूप से भिन्न रही है। किंतु हर काल में समाज, अर्थ-व्यवस्था, राजनीति और संस्कृति मूलतः एक समान रही है। इस प्रकार काल-विभाजन में समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति और संस्कृति का ध्यान रखा जाता है। तुम्हें मालूम है कि मध्यकालीन भारत प्राचीन भारत से क्योंकर भिन्न था। इतिहास की दृष्टि से मध्यकाल और आधुनिक काल के बीच कही अधिक बुनियादी अंतर हैं क्योंकि आधुनिक काल में इतनी तेजी से परिवर्त्तन हुए हैं कि पहले उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। परिवर्त्तनों के फलस्वरूप हमारा जीवन पहले की तुलना में अब काफी बदल चुका है।

हम इस पुस्तक में भारत का आधुनिक इतिहास 18 वीं शताब्दी से शुरू करते हैं क्योंकि आधुनिक युग से जुड़े अनेक या यों कहें कि अधिकांश परिवर्त्तन इसी शताब्दी में शुरू हुए। इनमें से बहुतेरे परिवर्त्तन पहले संसार के दूसरे भागों में शुरू हुए और बाद में हमारे देश मे आए। जिन परिस्थितियों में उपर्युक्त परिवर्त्तन हमारे देश में आए उन परिस्थितियों को अनुकूल नहीं कहा जा सकता। हमारा देश गुलाम था इसलिए हम अपने देश की परिस्थितियों के स्वामी नहीं हो सकते थे। जिन रूपों और परिस्थितियों में नए परिवर्त्तन हमारे समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति और संस्कृति में आए वे पूर्णतया हमारे हितों के अनुकूल नहीं थीं। नतीजा यह हुआ कि अनेक समस्याएँ खड़ी हो गईं और हमारे समाज के विकास की प्रक्रिया भी गड़बड़ हो गई। जो भी हो, हमारे देश का जनजीवन इन परिवर्त्तनों से काफी दूर तक प्रभावित हुआ है। हमें अब यह पढ़ना और समझना है कि इस काल में कौन से परिवर्त्तन हुए। वे परिवर्त्तन कतिपय विशेष रूपों में ही कैसे और क्यों आए?

तुम्हें याद होगा कि 18 वीं शताब्दी के शुरू में हमारा देश कई छोटे-बड़े स्वतत्र एवं अर्ध स्वतंत्र राज्यों में विभाजित था तथा देश का प्रशासन कमजोर था। जनजीवन और संपत्ति काफी असुरक्षित थी। देश के विभिन्न भागों में यूरोपीय सौदागर व्यापार में लगे थे। उन्होंने भारत की बुरी अवस्था का फायदा उठाया। उन सौदागरों में इंग्लैंड के व्यापारी अधिक चतुर निकले। उन्होंने भारत पर कब्जा जमा लिया। अगले दो सौ वर्षों तक भारत अंग्रेजों का गुलाम रहा और फलस्वरूप वह विकास की दृष्टि से पिछड़ गया। उसका तेजी से आधुनिकीकरण नहीं हो सका। किंतु देर-सबेर जो भी परिवर्त्तन हुए उन्होंने हमें अपनी आजादी की लड़ाई सफलतापूर्वक लड़ने में सक्षम बना दिया और बाद में उन्हीं के कारण हम एक सार्वभौम राष्ट्र बन सके।

भारत के पतन और पुनरुत्थान की कहानी पढ़ने के पहले हम देखेंगे कि बाहरी दुनिया विशेषकर यूरोप में मुख्य परिवर्त्तन और विकास किस दिशा में हुए। आधुनिक युग के निर्माण में यूरोप का हाथ सबसे अधिक है। आधुनिक युग का प्रारंभ करने वाले अनेक परिवर्त्तन और सुधार सबसे पहले यूरोप में हुए। इस अध्ययन से हमें भारत का आधुनिक इतिहास पढ़ने और समझने में आसानी होगी।

पुनर्जागरण का प्रभाव

आधुनिक युग में प्रगति एकाएक नहीं हुई है। मनुष्य की जिज्ञासा की भावना तथा

साहसिकता ने उसे अन्वेषण और अविष्कार की ओर प्रेरित किया। मानव ज्ञान के भंडार को बढ़ाने तथा नए देशों की खोज करने के लिए प्रोत्साहन देने में एक विशेष आंदोलन का हाथ था। यह आंदोलन मध्यकाल के अंतिम दिनों में इटली के कुछ शहरों में शुरू हुआ था। इसे 'पुनर्जागरण' कहा जाता है। पुनर्जागरण के संबंध में तुम्हे पहले बतलाया जा चुका है। पुनर्जागरण ने यूरोप मे अनेक लोगों को अपने से सोचने और प्रचलित स्थापित सिद्धांतों एवं संस्थाओं के संबंध में डटकर शंकाएँ करने और प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित किया। फलस्वरूप 'वैज्ञानिक पद्धति' का जन्म हुआ। वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ है प्रश्न, पर्यवेक्षण और प्रयोग द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति। आधुनिक वैज्ञानिक और प्राविधिक शोध एवं अन्वेषण इसी पद्धति के प्रयोग के फल है। प्रश्न पूछने की भावना ने कई यूरोप-वासियों को निरंकुश शासकों तथा रोमन कैथोलिक चर्च के अंधविश्वासों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उभारा। व्यापार तथा अन्य तरीकों से संपर्क होने पर धीरे-धीरे यह दृष्टिकोण संसार के अन्य भागों में भी अपनाया गया।

मध्यकाल के उत्तरार्ध में व्यापार की प्रगति के कारण यूरोप में अनेक शहर विकसित हुए। उनमें कुछ प्रमुख शहर थे : मिलन, फ्लोरेंस, वेनिस, पेरिस, लंदन, आक्सफोर्ड, कैंब्रिज, डोवर, एंटवर्प, हैमबर्ग और लाइपजिग। उपर्युक्त शहर व्यापारिक मार्गों के चौमुहाने या व्यापार के लिए सुविधाजनक समुद्रों तथा नदियों के किनारों पर स्थित थे। देहाती क्षेत्र की अपेक्षा शहर अधिक मुक्त स्थान थे, जहाँ सब प्रकार के नए विचार और कला एवं साहित्य के विभिन्न पक्ष फल-फूल सकते थे। व्यापार की मात्रा में वृद्धि के साथ सौदागर समुदाय का महत्त्व धीरे-धीरे बढ़ा और समाज तथा सरकार के नए पदों पर वे आसीन हो गए। इस प्रकार एक नया समुदाय—मध्यवर्ग—सामने आया। यह समुदाय सरदारों और जनता के बीच आता था। मध्यवर्ग मे दक्ष दस्तकार और बाद में विनिर्माता भी शामिल हो गए जिससे उसका आकार और महत्त्व बढ़ गया। इस वर्ग के सदस्यों ने बहुत लंबे समय तक आधुनिक युग के विकास के क्षेत्र में अग्रदूत तथा अभिकर्त्ता के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। हम आगे चलकर देखेंगे कि भारत में मध्यवर्ग का उदय बाद में भिन्न पृष्ठभूमि मे हुआ, तो भी उसने देश को स्वतंत्र कराने, जनतंत्र की स्थापना करने तथा भारत को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाने में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

औद्योगिक क्रांति

देश के अंदर और बाहर व्यापार के विस्तार ने यूरोपीय व्यवसायियों को उत्पादन-



औद्योगिक क्रांति के कारण वस्तुओं का उत्पादन बहुत बढ़ गया। उद्योगपतियों का मुख्य ध्येय मुनाफा कमाना था, इसलिए जनता के जीवन मे कोई सुधार नही हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैंड के औद्योगिक शहरों में आम जनता की दशा शोचनीय थी। इस चित्र मे उस समय के लोगों के रहन-सहन का चित्रण किया गया है। अपनी दशा को सुधारने के लिए लोगों ने अपने आप को संगठित किया।

प्रणाली में सुधार लाने के लिए बाध्य किया जिससे अधिक वस्तुएँ तेजी से उत्पन्न हो सकें। वस्तुओं की बढ़ती हुई माँग मुख्य प्रेरक शक्ति सिद्ध हुई। उस समय तक दस्तकार अपने घरो में साधारण औजारों से काम करते थे। उनके परिवार के सदस्य उन्हें काम में सहायता देते थे। सौदागर उन्हें आवश्यक कच्चे माल देते थे और उनसे तैयार वस्तुएँ प्राप्त करते थे। किंतु यह व्यवस्था दिनोंदिन बढ़ते हुए बाजार की माँग को पूरा नहीं कर सकी। 18वीं शताब्दी में इसकी जगह पर कारखाने की व्यवस्था आई। कारखाने के मालिकों ने बहुत बड़ी रकम कच्चा माल, मशीन और अन्य साज-सामान खरीदने तथा दस्तकारों को काम पर लाने के लिए लगाई। अब दस्तकार नई मशीनों से काम करने लगे। कारखाने के मालिक तैयार माल सौदागरों को बेचते थे। नई व्यवस्था के अंतर्गत कारखाने का मालिक या पूँजीपति समाज में सबसे शक्तिशाली व्यक्ति था। यह व्यवस्था सबसे पहले इंग्लैंड में विकसित हुई। एशिया और अमरीका महाद्वीप के देशों के साथ

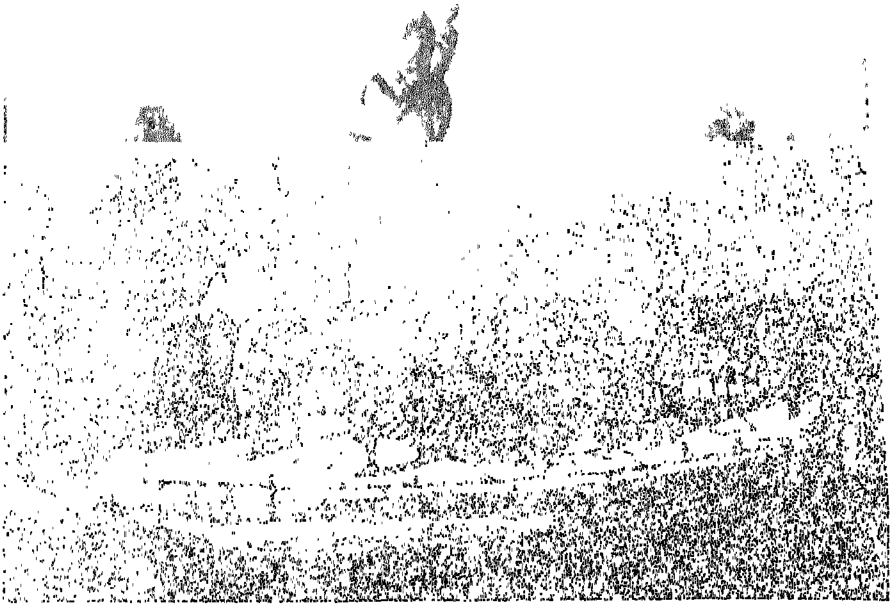
व्यापार कर अंग्रेज व्यवसायियों ने काफी रकम इकट्ठी की थी। इसके अतिरिक्त मशीनों का इस्तेमाल सबसे पहले इंग्लैंड में शुरू हुआ। सूत कताई की नई मशीन, नए करघों और भाप की ताकत के आविष्कार और अन्वेषण ने सूती कपड़ों के उत्पादन में एक नया मोड़ दिया। अब इंग्लैंड को सूती कपड़ों को बेचने के लिए नए बाजारों की आवश्यकता हो गई। उत्पादन की नई व्यवस्था ने समाज पर गहरा प्रभाव डाला। स्वतः रोजगार प्राप्त दस्तकार लुप्त हो गए और उनकी जगह पर पूँजीपति और मजदूर आ गए। पहले जहाँ वस्तुओं का उत्पादन मुख्यतः व्यापारिक विक्रय के द्वारा मुनाफा कमाने के लिए नही होता था, वहाँ अब उत्पादन का प्रधान उद्देश्य बाजार में बिक्री द्वारा अधिकाधिक मुनाफा कमाना हो गया। उपर्युक्त सारे नए परिवर्त्तनों को औद्योगिक क्रांति का नाम दिया गया है। यह क्रांति 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैंड में शुरू हुई। कालक्रम से औद्योगिक क्रांति ने हर जगह उत्पादन-प्रणाली और समाज-व्यवस्था पर भारी प्रभाव डाला। बिजली, धमन-भठ्ठी, परिवहन एवं संचार के नए तरीकों आदि से औद्योगिक क्रांति की प्रक्रिया और भी शक्तिशाली हो गई। औद्योगिक क्रांति ने इतिहास की धारा और गति को नया मोड़ दिया।

अमरीकी और फ्रांसीसी क्रांतियाँ

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में संसार ने दो और क्रांतियाँ देखीं। वे क्रांतियाँ सब देशों के आम लोगों को स्वतंत्रता और समता के अधिकार देने के आंदोलन की अग्रदूत सिद्ध हुई। वे क्रांतियाँ थीं : अमरीकी स्वतंत्रता की लड़ाई और फ्रांसीसी क्रांति।

अमरीकी स्वतंत्रता की लड़ाई अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध हुई। उत्तर अमरीका में उस समय तेरह उपनिवेश थे। उन उपनिवेशों में बसे हुए लोग अंग्रेजी सरकार के अधीन थे क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने ही नए भूभाग जीत कर वे उपनिवेश बसाए थे। अंग्रेजी सरकार उपनिवेशों के निवासियों से कर वसूल करती थी। करों की मात्रा में वृद्धि होने तथा वाणिज्य-व्यवसाय पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगाए जाने से उपनिवेश अंग्रेजी सरकार से विरोध प्रकट करने लगे। अठारहवीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक के दौरान अनेक जगहों पर विद्रोह भी हुए।

अनेक उपनिवेशी लोग उस समय के क्रांतिकारी विचारों से अनुप्राणित थे। तत्कालीन क्रांतिकारी विचार अंग्रेज और फ्रांसीसी दार्शनिकों के लेखों के रूप में सामने आए थे। उन दार्शनिकों के अनुसार मनुष्य को कतिपय मौलिक अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें कोई भी



1776 मे अमरीकियों ने स्वतन्त्रता-घोषणा-पत्र को अंगीकार किया। इससे उनमे खुशी की लहर फैल गई। चित्र मे वे अंग्रेज राजा जार्ज तृतीय की मूर्ति गिराते हुए दिखाए गए है। **(यूनाइटेड स्टेट्स इन्फर्मेशन सर्विस, नई दिल्ली के सौजन्य से।)**

सरकार उनसे नही छीन सकती। विद्रोह करने का अधिकार मौलिक अधिकारों की कोटि में था। इस अधिकार को वास्तविक रूप देने के लिए अमरीकी नेता टॉमस जेफरसन ने उपनिवेशी जनता को प्रोत्साहित किया। 4 जुलाई, 1776 को तेरह उपनिवेशों के प्रतिनिधि एक साथ मिले और उन्होंने 'स्वतंत्रता की घोषणा' की। इस घोषणा में कहा गया कि सभी मनुष्य समान हैं और उन्हें कुछ जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त हैं जिनसे उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता। इन अधिकारों में जीवन, स्वतंत्रता और सुख-प्राप्ति के अधिकार शामिल हैं। अंग्रेजी सरकार बार-बार इन अधिकारों को छीनने की कोशिश कर रही थी इसलिए अमरीकियों ने स्वतंत्रता की लडाई शुरू कर दी। अंततोगत्वा उपनिवेशो की स्वतंत्रता को मान्यता दे दी गई। उपनिवेशों ने गणतंत्र की स्थापना की और वे अपने को संयुक्त राज्य अमरीका कहने लगे। गणतंत्र में सरकार की सत्ता का स्रोत आम जनता है। उत्तरी अमरीका की सरकार का गठन करने वाले प्रतिनिधियो ने

एक अधिकार-विधेयक (बिल आफ राइट्स) स्वीकार किया। इस विधेयक ने सब नागरिकों को भाषण, लेखन, और धर्म की स्वतंत्रता तथा कानून के अंतर्गत न्याय के अधिकार दिए।

इसके तुरत बाद फ्रांस में क्रांति हुई। अठारहवीं शताब्दी के दौरान फ्रांस में वाल्तेयर, रूसो, और मांटेसक्यू जैसे दार्शनिक थे। इन्ही दार्शनिकों ने वहाँ पर क्रांति की आधारशिला तैयार की। इन चिंतकों ने तर्क-बुद्धि को सबसे अधिक महत्त्व दिया। इन्होंने खुले आम राजतंत्र, धर्म एवं अन्य पुरानी धारणाओं को चुनौती दी। उस समय फ्रांस की आम जनता की हालत बहुत ही दयनीय थी। किंतु सामंती सरदारों, पादरियों तथा अफसरों को सारे विशेषाधिकार प्राप्त थे। इस पृष्ठभूमि में फ्रांस के राजा लुई सोलहवें ने अधिक कर लगाना और जनता से नए ऋण के नाम पर धन उगाहना चाहा। फ्रांसीसी दार्शनिकों के क्रांतिकारी विचारों ने तब तक आम जनता को स्वशासन का अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित कर दिया था। जनता इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए उठ खड़ी हुई और इस तरह क्रांति शुरू हो गई। जनता के प्रतिनिधियों ने अपने को 'फ्रांस की राष्ट्रीय असेंबली' के रूप में गठित कर लिया। 14 जुलाई, 1789 को जनता ने बैस्टील के राजकीय कैदखाने को तोड़ दिया। कैदखाने का तोड़ा जाना निरंकुशवाद के पतन का प्रतीक था। राष्ट्रीय असेंबली ने 'मनुष्य और नागरिक के अधिकारों का घोषणा पत्र' पारित किया। इसके अनुसार "मनुष्य जन्म से ही स्वतंत्र होते हैं तथा उनके अधिकार आजन्म समान रहते हैं"। इस महान क्रांति के बाद फ्रांसीसी गणतंत्र स्थापित हुआ। स्वतंत्रता, बंधुत्व और समानता उसके पथप्रदर्शक सिद्धांत बन गए।

राष्ट्रीयता

आधुनिक विश्व के सब देशों में जनतंत्र और जनता की सार्वभौम सत्ता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील लोगों को अमरीका और फ्रांस की क्रांतियों से प्रेरणा मिली है। इन क्रांतियों ने राष्ट्रीयता के विचार पुष्ट किए। राष्ट्रीयता और राष्ट्रों का निर्माण, उन सब चीजों की तरह जिनके बारे में इस अध्याय के शुरू में तुम पढ़ चुके हो, एक आधुनिक तथ्य है। तुम प्राचीन और मध्य काल के राज्यों और साम्राज्यों के संबंध में पढ चुके हो। वे उस अर्थ में राष्ट्र नहीं थे जिस अर्थ में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग हम सभी करते हैं। राष्ट्रो का निर्माण तब शुरू हुआ जब एक निश्चित भूभाग में रहने वाले जनगण ने जिसका एक लंबा और समान इतिहास था, अपने को एक रूप मानना शुरू कर दिया। उस जनगण

के सदस्य परस्पर निर्भर थे किंतु अन्य किसी जनगण के सदस्यों से भिन्न थे। ऐसा मुख्य रूप से समान आर्थिक जीवन के विकास के फलस्वरूप हुआ। समान आर्थिक जीवन का विकास शुरू में वाणिज्य-व्यवसाय और बाद में उद्योगों के विकास के कारण हुआ। समान इतिहास और संस्कृति ने जनगण के बीच एकता का जो सूत्र तैयार किया उसे समान आर्थिक जीवन ने मजबूत बनाया। वाणिज्य और उद्योग के फलस्वरूप जो नए जनसमुदाय सामने आए उन्होंने और विशेषकर मध्य वर्ग ने इस प्रक्रिया में सहायता दी। मध्य युग के अंतिम दिनों मे यूरोप के कुछ देशों में सामंतों द्वारा स्थापित सामाजिक विभाजनों को खत्म किए बिना सौदागर और बाद में, विनिर्माता स्वतंत्रतापूर्वक काम नही कर सकते थे। इसीलिए उन्होने अपने राजाओं का समर्थन किया और सामंतों को पराजित करने में उनकी सहायता की। उन्होंने सारे देश में समरूप कानून लागू करने के लिए उनके हाथों को मजबूत किया। आंशिक या पूर्ण रूप से विदेशी शासकों के गुलाम देशों ने गुलामी की जंजीर को तोड़ फेंकने और संयुक्त राष्ट्र के रूप में अपने को स्थापित करने के लिए संघर्ष शुरू किए। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के दौरान पोलैंड, ग्रीस (यूनान), जर्मनी, इटली और अन्य देशों में स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता के लिए संघर्ष हुए। इनमें कई, जैसे इटली और जर्मनी अपने को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करने में 19 वी शताब्दी में सफल हो गए। अन्य देशों ने संघर्ष किए और 20 वी शताब्दी में स्वतंत्र हुए। उन्नीसवी और बीसवी शताब्दियों के विश्व के निर्माण में और विदेशी आधिपत्य से स्वतंत्रता प्राप्ति तथा राष्ट्रीय एकीकरण के लिए संघर्ष मे जनतंत्र का सबसे अधिक सक्रिय योगदान रहा है।

साम्राज्यवाद

तुम पूछ सकते हो कि जब यूरोप और अमरीकी महाद्वीप के देश जनतांत्रिक और राष्ट्रीय सरकारें स्थापित कर रहे थे और अपने उद्योगों के विकास के लिए मशीनों का प्रयोग कर रहे थे उस समय भारत और एशिया एवं अफ्रीका के अन्य देशों में क्या हो रहा था। पंद्रहवी शताब्दी से लगातार एशिया के बंदरगाहों पर आने वाले यूरोपीय नाविकों और व्यापारियों की कहानी तुम जान चुके हो। वे मसाला, सूती कपड़ा, मलमल, चाय, चीनी, शोरा आदि खरीदने के लिए आते थे। इन वस्तुओं के लिए यूरोप के बाजारों में बड़ी माँग थी। यूरोप से आने वाले नाविक और व्यापारी मुख्यतः पुर्तगाल, हालैंड, इंग्लैंड और फ्रांस के रहने वाले थे। ये सब समुद्र तटवर्ती देश थे। यूरोपीय व्यापारी अपना

माल लंका, भारत, मलाया, इंडोनेशिया आदि देशों से खरीदते थे। उन्हें एशिया के साथ व्यापार से भारी मुनाफा-राशि प्राप्त होती थी। इसलिए एशियाई व्यापार पर एकाधिकार जमाने के लिए यूरोपीय व्यापारी बहुधा आपस मे लड़ते रहते थे। इस लड़ाई में उन्हे अपनी सरकारों से सैनिक सहायता मिलती थी। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी एशिया के साथ व्यापार करने वाले यूरोपीय व्यापारियों में प्रमुख बन चुकी थी। ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य केंद्र भारत था। अन्य यूरोपीय देशों के व्यापारियों ने अपने केंद्र दक्षिण पूर्व एशिया मे स्थापित किए थे। वे सारे व्यापारी उन्नीसवीं शताब्दी मे चीन के तटवर्ती क्षेत्रों में सक्रिय थे।

उस समय एशिया और अफ्रीका के देशों में यूरोप से बिल्कुल भिन्न स्थिति थी। उनकी सरकारें कमजोर थी। उनमें से किसी के पास उल्लेखनीय नौसेना नही थी, यद्यपि वह नौसेना का जमाना था। जिन आर्थिक परिवर्त्तनों ने कई यूरोपीय देशों को ताकतवर बनाया था वे तब तक एशिया और अफ्रीका के देशों में नहीं शुरू हुए थे। नए जनसमूह या वर्ग, विशेषकर मध्य वर्ग, जो यूरोप में इन परिवर्त्तनों की रीढ़ की हड्डी बने थे, इन देशों में अनुपस्थित थे। व्यापार के क्रम में यूरोपवासियों ने इन कमजोरियो को मालूम कर लिया। तुरंत ही एशिया और अफ्रीका में यूरोपवासियों के कब्जे तथा औपनिवेशिक शासन का युग शुरू हो गया।

इस कमजोरी के अतिरिक्त एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण था जिससे यूरोपवासी एशिया और अफ्रीका में अपने उपनिवेश बनाना चाहते थे। हम ऊपर देख चुके है कि औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप इंग्लैंड में वस्तुओं के उत्पादन में विशाल वृद्धि हुई। कारखाने लगातार चलते रहें और उनके मालिकों को अधिकाधिक मुनाफा-राशि प्राप्त होती रहे इसके लिए तैयार माल के लिए उपयुक्त बाजार और कच्चे माल के नए स्रोत आवश्यक थे। यूरोप के अन्य हिस्सों में औद्योगिक क्रांति होने पर सिर्फ पिछड़े हुए देश, जहाँ उद्योग-धंधे विकसित नहीं हुए थे उपयुक्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते थे। यूरोपवासी एशिया और अफ्रीका के बाजारों से पूर्ण परिचित थे। उनके बाजारों को सुरक्षित करने के लिए उन पर राजनीतिक आधिपत्य जमाया गया।

इस प्रकार एशिया पर साम्राज्यवादी औपनिवेशिक कब्जा शुरू हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य मे अफ्रीका भी चपेट में आ गया। हर जगह यूरोप वालों के कब्जे की कहानी कमोबेश एक ही रही है। सबसे पहले यूरोपीय अन्वेषक और फिर उनके बाद व्यापारी पहुँचे। अंततोगत्वा व्यापारिक देशों की सरकारें उन क्षेत्रों पर राजनीतिक कब्जा जमाने

के लिए आ गई। राजनीतिक कब्जा जमाने पर ही उन्हें सबसे अधिक फायदा पहुँच सकता था। अपनी मजबूत अर्थव्यवस्था, सैनिक शक्ति और नव विकसित राष्ट्रीय अभिमान के कारण यूरोपवासी एशिया और अफ्रीका की जनता के मुकाबले विजयी रहे। एशिया और अफ्रीका के लोगों में आधुनिक विज्ञान और प्राविधिक ज्ञान का अभाव था और उनमें राजनीतिक एकता नहीं थी।

एशिया और अफ्रीका के उपनिवेशों में यूरोपवासी शासन करने लगे और अधिकाधिक मुनाफा कमाने लगे। वे वहाँ के लोगों से अपने को अलग-थलग भी रखने लगे। वे उपनिवेशों के बाशिंदों को रोजगार और प्रगति के अवसर प्रदान करने में भेदभाव बरतते थे। वे उनके साथ जानबूझकर दुर्व्यवहार करते थे। इन सबके कारण यूरोपवासियों और एशिया तथा अफ्रीका के लोगों के बीच परस्पर अविश्वास और घृणा का भाव आ गया। अफ्रीका के जिन हिस्सों में यूरोपवासी बस गए वहाँ पर उन्होंने स्थानीय लोगों को उजाड़ दिया तथा उन्हें उनकी जमीन और सब प्रकार के मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया। यूरोपवासियों ने स्थानीय लोगों को अलग इलाकों में रहने के लिए बाध्य किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों का अधिकांश यूरोपीय साम्राज्यवाद के प्रत्यक्ष नियंत्रण या प्रभाव-क्षेत्र में चला गया। जर्मनी और इटली जैसे यूरोपीय देश उपनिवेश हथियाने की होड़ में देर से शामिल हुए। इसीलिए उन्हें मुश्किलों का सामना करना पड़ा। उपनिवेश यूरोपवासियों को आर्थिक फायदा पहुँचाने के अतिरिक्त उनके लिए राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक भी हो गए थे।

व्यापारिक और साम्राज्यवादी होड़ ने यूरोप के देशों को परस्पर विरोधी समूहों में बाँट दिया। यही होड़ दो विश्व युद्धों का कारण बनी। प्रथम विश्व युद्ध 1915–1919 और द्वितीय विश्व युद्ध 1939–1945 के दौरान हुआ। इन युद्धों के दौरान अभूतपूर्व विध्वंस हुआ। लड़ाई के तौर-तरीकों और हथियारों में नए आविष्कारों और अनुसंधानों ने आमूल परिवर्तन कर दिए और नतीजा यह हुआ कि अब कोई भी लड़ाई शायद ही स्थानीय लड़ाई के रूप में रह गई। उपर्युक्त युद्धों ने अपनी आग में लगभग सब देशों को समेट लिया।

द्वितीय विश्व युद्ध ने साम्राज्यवादी शक्तियों को कमजोर बना दिया। उपनिवेशों पर उनका कब्जा ढीला हो गया। साम्राज्यवाद के विरुद्ध विश्व जनमत भी तैयार हो गया। किंतु उपनिवेशों में साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध काफी पहले संघर्ष शुरू हो गए थे। स्वतंत्रता-संघर्ष के दौरान उपनिवेशों की जनता को कठिन यातनाएँ सहनी

पड़ीं और अगणित बलिदान करने पड़े। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद एशिया और अफ्रीका के अधिकतर देश स्वतंत्र हो गए।

नए आंदोलन

बीसवी शताब्दी के दौरान कुछ ऐसी क्रांतियाँ हुईं जिनके फलस्वरूप उन देशों में एक नई समाज-व्यवस्था स्थापित हुई। फ्रांसीसी क्रांति ने विश्व को आधुनिक जनतंत्र प्रदान किया जिसमे हर व्यक्ति को समान राजनीतिक अधिकार मिले। किंतु आधुनिक उद्योगों के विकास और मुक्त बाजार की व्यवस्था ने जनता को दो वर्गों : पूँजीपति और श्रमिक वर्गों—में बाँट दिया। श्रमिकों को नए उद्योगो के अधिकांश फायदे नहीं मिले और वे गरीब और बेरोजगार बने रहे। ऐसी स्थिति में बिना आर्थिक और सामाजिक समानता प्राप्त किए, राजनीतिक समानता पर अधिकार उनके लिए निरर्थक हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान अपने समान हितों की रक्षा और प्राप्ति के लिए श्रमिको ने अपने संगठन बनाने शुरू कर दिए। ये संगठन 'श्रमिक संघ या मजदूर संघ' (ट्रेड यूनियन) कहलाए। नई और बेहतर जिंदगी के लिए उन्होंने राजनीतिक आंदोलन शुरू किए। कई चिंतको और दार्शनिकों ने समाज-व्यवस्था में परिवर्तन करने तथा आम लोगों को बेहतर जिंदगी देने की समस्याओं पर विचार किया। उनमें से कुछ लोगों ने कारखानो, जमीन और उत्पादन के अन्य साधनों पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित करने की माँग की। वे तत्कालीन समाज व्यवस्था मे केवल बुराई ही देखते थे। वे उसके स्थान पर एक योजनाबद्ध समाज चाहते थे जो कुशल और न्यायपूर्ण हो। भावी आदर्श समाज के इन स्वप्न-दृष्टाओं ने उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व को सुखमय जीवन का आधार समझा। यह समाजवाद की प्रारंभिक कल्पना थी। उसी समय दो ऐसे विचारकों का उदय हुआ जिन्होने 'समाजवाद' को सुदृढ़ सैद्धांतिक आधार प्रदान किया। वे थे : कार्ल मार्क्स और फ्रैडरिक एंगेल्स। दोनों मे घनिष्ठ मैत्री थी जो विश्व इतिहास में अद्वितीय है। इन दोनो चिंतको के विचारों का विश्वव्यापी प्रभाव हुआ। उन्होने उन शक्तियों को खोजना चाहा जो सामाजिक परिवर्तन लाती हैं। वे जानना चाहते थे कि जिस पूँजीवादी समाज में वे जी रहे थे, उसे गति देने वाले तत्त्व कौन से है। पूँजीवादी समाज के अपने विश्लेषण के द्वारा वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समाजवाद संसार मे अवश्य आएगा। अठारहवीं और उन्नीसवी शताब्दियों के दौरान जो सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था संसार में आई थी उसे उन्होंने पूँजीवाद कहा। उनके अनुसार पूँजीवाद के स्थान पर



कार्ल मार्क्स



फ्रैडरिक एंगेल्स

एक नई समाज व्यवस्था---समाजवाद---की स्थापना अवश्य होगी। समाजवादी व्यवस्था के अंतर्गत उत्पादन के सारे साधन---भूमि, कारखाने, आदि---समाज की सामूहिक संपत्ति होंगे, उनपर थोड़े से लोगों का अधिकार नहीं होगा।

कार्ल मार्क्स और फ्रैडरिक एंगेल्स के सिद्धांतों पर आधारित आंदोलन लगभग सारे संसार में समाजवाद की स्थापना के लिए शुरू हुए। उनके विचारों के अनुकूल पहली सफल क्रांति 1917 में रूस में हुई जिसने ज़ारों के निरंकुश शासन को उखाड़ फेंका। क्रांति के बाद रूस में समाजवादी व्यवस्था का निर्माण शुरू हुआ। अमरीकी और फ्रांसीसी क्रांतियों की तरह ही रूसी क्रांति का सारे संसार पर असर पड़ा। हमारा राष्ट्रीय आंदोलन भी उसके असर से अछूता नहीं रहा। रूसी क्रांति ने सारे विश्व में 'समाजवाद' और 'आर्थिक नियोजन' के विचारों को पुष्ट किया। बाद में कई अन्य देशों में मार्क्स और एंगेल्स के विचारों के अनुकूल समाजवादी क्रांतियाँ हुईं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पिछले दो-तीन सौ वर्षों में विश्व अनेक आंदोलनों और बड़े परिवर्तनों से होकर गुजरा है। उनके परिणामस्वरूप विभिन्न देशों के जनगण परस्पर निकट आए हैं। विश्व युद्धों के बाद अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का जन्म हुआ है। प्रथम विश्व

युद्ध के बाद लीग ऑफ नेशंस तथा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई है। इन संस्थाओं ने सब देशों को एक दूसरे के निकट लाने और शांतिपूर्ण तरीकों से उनके झगड़ों को निबटाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। किंतु अब भी ऐसी कई चीजें हैं जो तनाव पैदा करती हैं और विश्व के जनगण को विभाजित करती हैं। हमारे देश की तरह ही अन्य देशों में अनेक समस्याएँ हैं जिनके बारे में तुम आगे चलकर पढ़ और समझ सकोगे।

तुम आधुनिक विश्व के कुछ बड़े परिवर्त्तनों के संबंध में पढ़ चुके हो। इन परिवर्त्तनों को ध्यान में रखकर अगले अध्यायों में पढ़ोगे कि हमारे देश में अठारहवीं शताब्दी से लेकर अब तक क्या हुआ है।

1917 में रूस में क्रांति हुई। चित्र में उन दिनों रूस की राजधानी पीटर्सबर्ग की सड़कों पर जनता द्वारा प्रदर्शन दिखाया गया है। क्रांति के कुछ वर्षों बाद शहर का नाम लेनिनग्राड रखा गया। **(सोवियत दूतावास, नई दिल्ली के सूचना विभाग के सौजन्य से।)**



अध्याय 2

अठारहवीं शताब्दी का भारत

मुगल साम्राज्य का विघटन

जैसा कि 'मध्यकालीन भारत' नामक इतिहास की किताब में तुम पढ़ चुके हो, मुगल साम्राज्य ने लगभग सारे देश को सफलतापूर्वक एक सूत्र में बाँध दिया था। अकबर के शासन-काल में एक कुशल प्रशासन की व्यवस्था की गई थी, जिसने अगले डेढ़ सौ सालों तक साम्राज्य के स्थायित्व को बनाए रखने और उसके विस्तार में सहायता दी। संस्कृति के विभिन्न पक्षों—कला, वास्तुकला, संगीत और साहित्य—के इस काल में विकास के संबंध में भी तुम पढ़ चुके हो।

महान मुगल बादशाहों में आखिरी औरंगजेब के शासन-काल के दौरान साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह हुए। इनमें मराठों, सिक्खों, जाटों और कई अन्य लोगों के विद्रोह शामिल थे। औरंगजेब की मृत्यु होते ही मुगल साम्राज्य तेजी से बिखरने लगा। देश जल्दी ही छोटे-छोटे क्षेत्रों में बँट गया। वे क्षेत्र लगभग स्वतंत्र थे।

परवर्ती मुगल

औरंगजेब की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठने वाले मुगल बादशाहों को परवर्ती मुगल कहते हैं। इन शासकों के समय वास्तविक सत्ता सरदारों के हाथों में चली गई। सरदार कई गुटों में बँटे हुए थे। उनके गुटों के संगठन का आधार मुख्यत. समान उद्भव था। उदाहरण के तौर पर, मध्य एशिया से तूरान से आए हुए सरदार एक गुट में संगठित थे और तूरानी कहे जाते थे। इसी तरह ईरानी, अफगान और हिंदुस्तानी सरदारों के अपने अलग-अलग गुट थे। हिंदुस्तानी सरदारों में वे अफसर शामिल थे जो एक लंबे समय से

भारत में बसे हुए थे। इनमें से हर गुट ने अपना बोलबाला कायम करने और अपनी सत्ता स्थापित करने की कोशिशें कीं।

तुम पहले पढ़ चुके हो कि औरंगजेब के शासन-काल के अंत तक साम्राज्य में मंसबदारों की संख्या अकबर के शासन-काल की तुलना में कई गुना बढ़ गई थी। साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में विद्रोह के कारण राजस्व घट गया था किंतु मंसबदारों की संख्या बढ़ गई थी। इतना ही नहीं, हर मंसबदार ने पहले की अपेक्षा बड़ी जागीर की माँग की जिससे उसे पहले से अधिक आय हो सके। मंसबदारों ने एक जगह से दूसरी जगह अपने स्थानांतरण (तबादले) का प्रतिरोध किया। याद रहे कि पहले स्थानांतरण नियम के अनुकूल था। मंसबदारों ने जागीरों के ऊपर अपने अधिकार को स्थायी और पुश्तैनी बनाने के लिए प्रयास किए। जागीरों का वितरण वजीर के हाथों में था। इसीलिए अपने संबंधियों और अनुयायियों के हितों की सिद्धि के लिए सरदारों ने वजीर के ओहदे पर कब्जा करने के लिए संघर्ष किए।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद गद्दी की लड़ाई में बहादुरशाह विजयी हुआ। अपने अल्प शासन-काल (1707 ई० से 1712 ई०) के दौरान बहादुरशाह ने मराठों और राजपूतों को संतुष्ट कर मुगल साम्राज्य की साख फिर कायम करने की कोशिश की। शिवाजी के पोते साहू को औरंगजेब ने कैद किया था। बहादुरशाह ने उसे छोड़ दिया।

जहाँदार शाह 1712 ई० में जुल्फिकार खाँ की मदद से गद्दी पर बैठा। जुल्फिकार खाँ औरंगजेब का सबसे वरिष्ठ सेनापति था। जहाँदार शाह के शासन-काल में जजिया खतम कर दिया गया। किंतु एक साल से थोड़ा ही अधिक होने पर जहाँदार शाह को गद्दी से हटा दिया गया। सरदारों के एक गुट की मदद से फर्रुखसियर बादशाह बन गया। उस समय अब्दुल्ला खाँ और हुसैन अली खाँ सबसे अधिक शक्तिशाली सरदार थे। आमतौर पर उन्हें 'सैयद बंधु' कहा जाता है। जब बादशाह ने उनकी शक्ति को तोड़ने की कोशिश की तो उसे 1719 ई० में मौत के घाट उतार दिया गया। सैयदों ने तब बादशाह के रिश्ते के दो भाइयों को एक-एक कर गद्दी पर बैठाया और उनके बाद बादशाह के एक और चचेरे भाई मुहम्मदशाह को 1720 ई० में बादशाह बनाया। शीघ्र ही चिन किलिच खाँ के नेतृत्व में सरदारों के एक दल ने सैयद बंधुओं को उखाड़ फेंका। चिन किलिच खाँ औरंगजेब का एक मशहूर सेनापति रह चुका था।

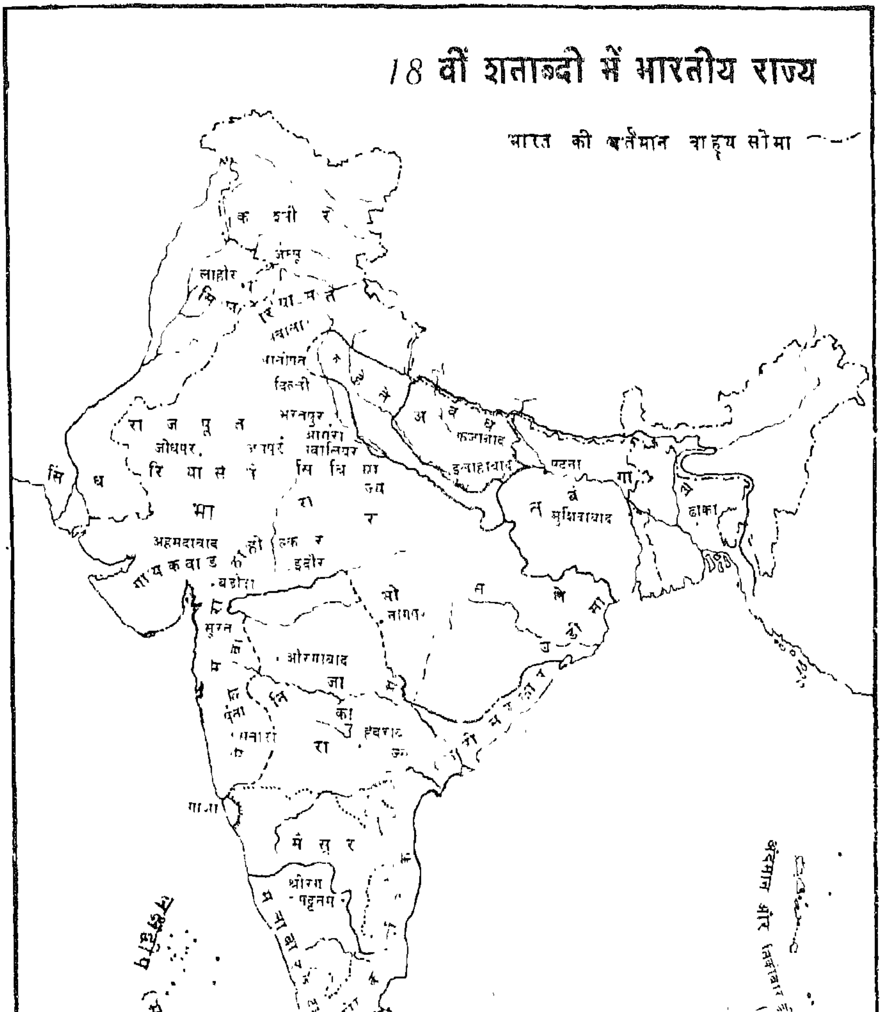
मुहम्मद शाह ने 1748 ई० तक 29 वर्ष शासन किया। मगर साम्राज्य का बिखरना जारी रहा। सरदारों के विभिन्न दलों के झगड़ों ने केंद्रीय सरकार की सत्ता कमजोर

कर दी थी। वास्तविक सत्ता सरदारों ने हथिया ली थी और उन्होंने विभिन्न इलाकों में अपनी सत्ता स्थापित करने की कोशिशें शुरू कर दी। वे बादशाह के प्रति औपचारिक निष्ठा दिखाते रहे किंतु अपना उल्लू सीधा करने के लिए उसे शतरंज के मोहरे की तरह इस्तेमाल करते रहे। धीरे-धीरे अनेक क्षेत्र साम्राज्य से अलग हो गए। बंगाल, अवध, हैदराबाद और रुहेल खंड में अर्ध स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ। 1739 ई० में ईरान के बादशाह नादिरशाह ने मुगल सेनाओं को करनाल में हरा दिया। उसके बाद दिल्ली में कत्ले आम हुआ और धन दौलत की लूट हुई। नादिरशाह के आक्रमण के बाद साम्राज्य का और अधिक विघटन हुआ। मुगल साम्राज्य की कहानी एक तरह से खतम हो चुकी थी। मुहम्मदशाह के उत्तराधिकारी—अहमद शाह (1748–1754), आलमगीर द्वितीय (1754–1759) और शाह आलम द्वितीय (1759–1806) कहने भर को ही बादशाह थे। वे साम्राज्य (जो अब नहीं रह गया था) की प्रभुसत्ता की सिर्फ याद बनाए रहे। इसी बीच एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में देश में मराठों का उदय हुआ।

स्वतंत्र राज्यों का उदय

बंगाल

मुर्शिद कुली खाँ औरंगजेब के मातहत बंगाल का दीवान था। फर्रुखसियर ने उसे बंगाल का दीवान बना दिया। वह शीघ्र वास्तविक स्वतंत्र शासक बन गया। उसने अपनी राजधानी मध्य बंगाल के एक शहर में बनाई। उस शहर का नाम उसने मुर्शिदाबाद रखा। मुर्शिद कुली खाँ और उसके उत्तराधिकारी नवाबों ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर स्वतंत्र शासकों की तरह शासन किया यद्यपि वे नियमित रूप से मुगल बादशाह को राजस्व भेजते रहे। उन्होंने सूबे के प्रशासन का पुनर्गठन किया और कृषि, व्यापार और उद्योग के विकास को प्रोत्साहित किया। उन्होंने अकुशल जागीरदारों को बर्खास्त कर दिया और बागी अफसरों की जागीरें छीन लीं। जमींदारों के एक नए समूह को जन्म दिया गया। उनमें अधिकांश हिंदू थे। वे नवाब के प्रति निष्ठावान थे। उन्होंने जंगलों और हाथियों से भरे इलाकों को साफ कर तथा भूमिधरों के नए परिवारों को बसा कर कृषि का विस्तार किया। राजस्व की वसूली नियमित रूप से और कड़ाई के साथ की जाती थी। गरीब खेतिहरों को कर्ज दिया जाता था किंतु राजस्व के परिमाण में कमी नहीं की गई। इस प्रकार प्रांत में राजस्व के संसाधनों को बढ़ाया गया यद्यपि किसानों को कुछ खास फायदा नहीं मिला।



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित ।

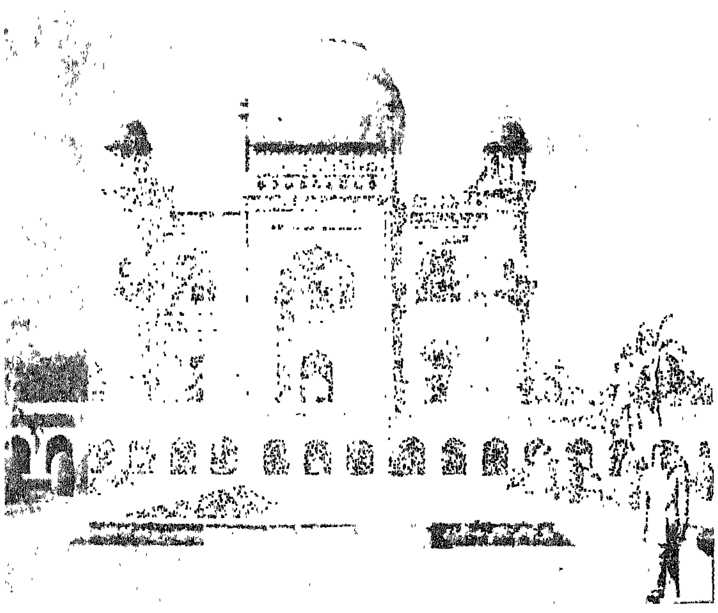
समुद्र में भारत का जल प्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक

हैदराबाद

चिन किलिच खाँ को निजाम-उल-मुल्क की पदवी दी गई और उसे दक्कन का सूबेदार बना दिया गया। 1722 ई० में उसे वजीर बनाया गया किंतु वह जल्द ही दक्कन लौटा और उसने उस क्षेत्र पर अपना अधिकार मजबूत किया। यद्यपि उसने कभी भी अपने को मुगल बादशाह से स्वतंत्र घोषित नहीं किया तथापि उसने दक्कन पर स्वतंत्र शासक के रूप में राज किया। उसने आसफजाही वंश की नींव डाली। उसके उत्तराधिकारी हैदराबाद के निजाम कहलाए।

अवध

सआदत खाँ एक छोटा मुगल अफसर था। वह मूलत: ईरानी था। उसने सैयद-बंधुओं को उखाड़ फेंकने में सहायता की थी। उसे 1722 ई० में अवध का सूबेदार बना दिया गया और बुरहान-उल-मुल्क की पदवी दी गई। उसका उत्तराधिकारी उसका दामाद सफदरजंग था। मुहम्मदशाह की मृत्यु के बाद सफदरजंग कुछ वर्षों तक साम्राज्य का वजीर रहा।



दिल्ली में बना, अवध के नवाब सफदरजंग का मकबरा।

(भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली के सौजन्य से।)

उसके वंश ने अवध के नायब-वजीर की पदवी ले ली। अवध के शासकों ने अव्यवस्था को खत्म करने, सूबे के वित्तीय संसाधनों को बढ़ाने तथा शांति और न्याय का शासन स्थापित करने की कोशिश की। उन्होंने एक शक्तिशाली सेना का संगठन किया। उसमें मुसलमानों और हिंदुओं के अतिरिक्त नागा संन्यासी भी थे। उनकी सेना में बहुत बड़ी संख्या में तोपची भी शामिल थे। अवध के शासकों की सत्ता का विस्तार रुहेल खंड तक था। रुहेल खंड का क्षेत्र दिल्ली के पूर्व मे था। इस क्षेत्र में भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा की पर्वत श्रेणियों (रूह) से अफगान लोग बड़ी संख्या में आकर बस गए थे। उन्हें रुहेला कहते थे। रुहेला सरदार इस इलाके मे अपना स्वतंत्र राज्य कायम करने की कोशिशें कर रहे थे।

पंजाब

दिल्ली के उत्तर में लाहौर और मुल्तान के क्षेत्रो पर मुगल सूबेदारों का शासन था। किंतु नादिरशाह और बाद में अब्दाली के आक्रमणों के फलस्वरूप, उनकी शक्ति नष्ट हो गई और सिक्ख सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति के रूप में सामने आने लगे।

इसी दौरान एक अन्य शक्ति का दिल्ली, आगरा और मथुरा के आसपास उदय हुआ। वह शक्ति जाटों की थी। जाटों ने भरतपुर में अपना राज्य कायम किया और लूट-पाट मचाने लगे। उन्होंने दिल्ली दरबार में चल रहे षड्यंत्रों में भी हिस्सा लिया।

आर्थिक और सामाजिक जीवन

देश के अन्य भागों में भी ऐसी ही प्रवृत्तियाँ काम कर रही थीं। स्थानीय सरदार हर जगह, यहाँ तक कि साम्राज्य के मध्य में भी, अपनी स्वायत्तता पर जोर देने लगे। उन्होंने केंद्रीय सत्ता को राजस्व देना बंद कर दिया और इस प्रकार उन्होंने साम्राज्य की शक्ति को कमजोर कर दिया। जो सूबे कमोबेश स्वतंत्र हो गए थे, उनमें स्थानीय सरदारों ने सूबे के शासकों की शक्ति का प्रतिरोध किया। सूबे के शासक स्थानीय सरदारों को कुचलना चाहते थे। इस प्रकार मुगल साम्राज्य के विघटन का यह काल सूबे के शासको और कतिपय महत्वाकांक्षी स्थानीय सरदारों के बीच संघर्ष का काल था। इसीलिए अपने राज्यों को सुदृढ़ आधार पर स्थापित करने के लिए सूबे के शासकों को अन्य शासकों के हमलो से अपनी सीमाओं तथा भीतरी विद्रोहियों से अपने राज्य की रक्षा करनी पड़ी। सबसे अधिक उत्पीड़ित किसान थे क्योंकि लड़ाई का खर्च मुख्य रूप से उन्हें ही उठाना पड़ता था। पहले की अपेक्षा उन्हें अपने उत्पादन के एक बड़े भाग से हाथ धोना पड़ता था।

राजनीतिक अराजकता और संघर्षों के इस काल में वाणिज्य-व्यवसाय निरंतर उन्नतिशील रहा। इस काल में वाणिज्य-व्यवसाय के कुछ मुख्य केंद्र थे—बंगाल में मुर्शिदाबाद और ढाका, दक्षिण में हैदराबाद और मछलीपट्टनम तथा अवध में फैजाबाद, बनारस, लखनऊ व गोरखपुर।

सूबे के शासको ने हिंदू व मुसलमान अफसरों तथा सरदारों का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की। कोई धार्मिक भेदभाव नही था। राज्य के विभिन्न पदों पर नियुक्ति के समय धर्म का ख्याल नहीं किया जाता था। तुम देख चुके हो कि अवध के नवाब की सेना में नागा संन्यासी भी थे। हिंदुओं और मुसलमानो के परस्पर निकट आने से एक मिली-जुली संस्कृति के विकास में सहायता मिली। भारतीय भाषाओं, जैसे बँगला, मराठी, तेलुगु और पंजाबी ने काफी प्रगति की तथा उनका साहित्य और अधिक समृद्ध हो गया। उर्दू का विकास पहले से हो रहा था। उसका इस्तेमाल आमतौर से, खासकर शहरों में, होने लगा। उसका अपना समृद्ध साहित्य, विशेषकर काव्य, विकसित होने लगा। शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र (जैसे खयाल और अर्ध शास्त्रीय गायन-शैली ठुमरी और गजल) में काफी प्रगति हुई। मुगल और राजपूत शैलियों के प्रभाव से देश के कई हिस्सों जैसे कुलू, काँगड़ा और चंबा में चित्रकला विकसित हुई। इस प्रकार संघर्षों और युद्धों के बावजूद सांस्कृतिक प्रगति लगातार होती रही।

अन्य भारतीय राज्य

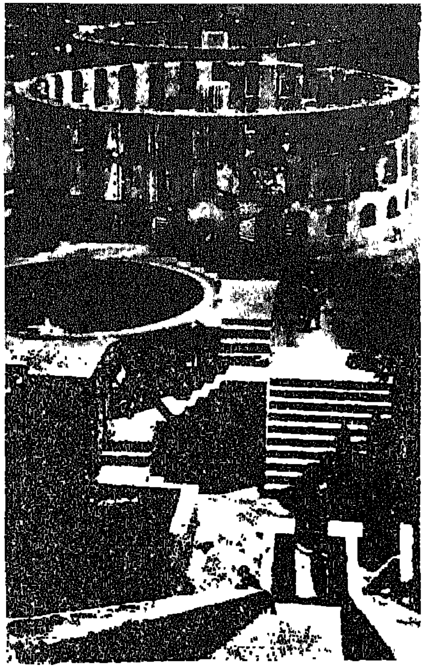
तुम ऊपर पढ़ चुके हो कि किस प्रकार मुगल साम्राज्य के अफसरों ने अपने स्वतंत्र राज्य बनाए। साथ ही, बहुतेरे राज्यों ने, जो मुगल साम्राज्य के अंग थे, अपनी स्वतंत्रता का दावा किया और अपना प्रभाव बढ़ाने की कोशिश की।

राजपूत

अकबर के समय से ही राजपूत सरदारों ने मुगल साम्राज्य को दृढ़ समर्थन दिया था। वैसे उनमें से बहुतेरो ने औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह किए थे। इसका कारण अपनी पैतृक भूमि प्राप्त करने के उनके विशेषाधिकार में औरंगजेब का हस्तक्षेप था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उन्होंने अपने को मुगल साम्राज्य के नियंत्रण से मुक्त करने की कोशिशें की। उन्होंने साम्राज्य के अन्य हिस्सों में अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयास किया। जोधपुर और आमेर के शासकों को क्रमशः गुजरात और मालवा का सूबेदार बनाया गया। कुछ समय तक लगा कि राजपूत साम्राज्य में अपना स्थान और प्रभाव फिर प्राप्त कर

सवाई राजा जयसिंह द्वारा दिल्ली में निर्मित वेधशाला जंतर-मंतर का एक भाग।

(भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली के सौजन्य से।)



रहे हैं और जाटों तथा मराठों के विरुद्ध साम्राज्य के मुख्य समर्थक बन रहे हैं।

इस काल में सबसे बड़ा राजपूत शासक आमेर का सवाई राजा जयसिंह (1681–1743 ई०) था। उसने जयपुर का सुंदर शहर बनवाया और दिल्ली, जयपुर, बनारस, उज्जैन तथा मथुरा में खगोलशास्त्र के अध्ययन के लिए वेधशालाओं का निर्माण किया।

किंतु राजपूत-प्रभाव बहुत दिनों तक नहीं रह सका। राजपूतों ने जिस समय अपना प्रभाव बढ़ाने की कोशिश की उस समय वे आपसी झगड़ों में फँसे थे। वे आपसी द्वंद्व में इतने फँस गए थे कि अपने प्रभाव-क्षेत्र के बाहर सत्ता की होड़ के लिए उनके पास न ताकत थी और न क्षमता ही। जाटों, मराठों और सूबाई शासकों की शक्ति के बढ़ने के साथ राजपूतों ने अपने राज्यों के बाहर अपनी जागीरें खो दीं और उनका प्रभाव घटने लगा।

राजपूतों के राजनीतिक प्रभाव के घटने के साथ ही देश की अर्थव्यवस्था में राजस्थानियों के एक समूह का असर बढ़ गया। वे सौदागर थे जो गुजरात और दिल्ली तथा आगरा के तत्कालीन महत्त्वपूर्ण केंद्रों के अंतर्क्षेत्रीय व्यापार में पहले से लगे हुए थे। साम्राज्य के पतन के साथ इन केंद्रों का व्यावसायिक महत्त्व भी घट गया। वे नए केंद्रों में गए और बंगाल, अवध और दक्कन में वाणिज्य-व्यवसाय पर अपना नियंत्रण रखने लगे।

सिक्ख

'मध्यकालीन भारत' पुस्तक के अध्ययन से तुम जानते हो कि दसवें और अंतिम गुरु—गुरु गोविंद सिंह—द्वारा लड़ाकू समूह में संगठित किए जाने के बावजूद औरंगजेब के शासन-काल में सिक्ख अपना राज्य स्थापित नहीं कर सके थे। गुरु की मृत्यु के बाद सिक्खों को बंदा बहादुर का योग्य नेतृत्व मिला। उसके नेतृत्व में सिक्खों ने मुगलों का वीरतापूर्वक प्रतिरोध किया। लाहौर तथा दिल्ली के बीच के सारे इलाके में वे छा गए किंतु उन्हें पराजित कर दिया गया और बंदा को मौत के घाट उतार दिया गया। कुछ समय बाद उन्होंने अपने को फिर संगठित कर लिया। नादिरशाह के आक्रमण के बाद पंजाब में मुगल सत्ता का पतन हो गया और अफगानों तथा उस क्षेत्र में नादिरशाह द्वारा नियुक्त किए गए अनुयायियों के बीच संघर्ष के फलस्वरूप गड़बड़ी की स्थिति आ गई। इस गड़बड़ी से फायदा उठाकर सिक्खों ने उस सूबे पर धीरे-धीरे कब्जा जमाना शुरू कर दिया। उन्होंने अपने को बारह छोटे समूहों में संगठित किया। उन समूहों को मिसल कहा जाता था। ये मिसलें व्यक्ति-विशेष के प्रति उत्तरदायी थी। यद्यपि मिसलें सिक्ख-एकता के विचार के प्रति निष्ठा रखती थीं, तथापि उन के नेताओं ने इलाकों को अपने बीच बाँट लिया। अहमदशाह अब्दाली भी मिसलों को खतम नहीं कर सका और उसके जाने के दो सालों के अंदर ही सरहिंद और लाहौर में उसके द्वारा नियुक्त सूबेदारों को निकाल बाहर किया गया। नाभा, पटियाला और कपूरथला जैसे छोटे राज्यों का उदय हुआ और पंजाब एकता विहीन रहा। 18 की शताब्दी के अंत में महाराजा रणजीत सिंह ने मिसलों को एक सूत्र में बाँधा और एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की।

कर्नाटक और मैसूर

18 वीं शताब्दी के दौरान भारत में अनेक नए राज्यों का उदय हुआ। उनमें से कुछ 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोपीय कंपनियों के साथ झगड़ों में फँसने के कारण महत्त्वपूर्ण हो गए। उनके बारे में तुम विस्तार के साथ अगले अध्यायों में पढ़ोगे।

कर्नाटक सूबा धीरे-धीरे दक्कन के सूबेदार के नियंत्रण से निकल गया। तुम्हें याद होगा कि इस अध्याय के शुरू में हमने कहा था कि दक्कन के सूबेदार ने अपने को मुगल शासन से स्वतंत्र कर लिया था और हैदराबाद के आसफजाही वंश की स्थापना की थी।

1761 ई० में हैदर अली ने मैसूर के शासक वंश को उखाड़ फेंका और उस राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। हैदर अली ने अपना जीवन एक मामूली सैनिक के रूप में शुरू

किया था। हैदर अली और उसका उत्तराधिकारी टीपू सुल्तान बड़े ही योग्य शासक थे। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण सुधार किए जिससे मैसूर भारत का एक अत्यंत शक्तिशाली राज्य बन गया। उदाहरण के लिए, उन्होंने सैनिक प्रशिक्षण और संगठन के आधुनिक तरीकों का प्रयोग किया और हथियार बनाने के लिए एक कारखाना बनवाया। उन्होंने कुछ नए उद्योगों को स्थापित करने की कोशिश की। धार्मिक मामलों में वे काफी प्रबुद्ध व उदार हृदय थे और इसीलिए उन्होंने अपनी सारी प्रजा की निष्ठा तथा समर्थन प्राप्त कर लिया। अनेक तत्कालीन भारतीय शासकों के विपरीत उन्होंने बाहरी दुनिया की घटनाओं तथा राज्य में नए परिवर्त्तनों को लागू करने की आवश्यकता से अपने को अवगत रखा। अंग्रेजों के साथ उनके संघर्ष के विषय में तुम चौथे अध्याय में पढ़ोगे।

मराठा शक्ति का विस्तार

तुम पढ़ चुके हो कि शिवाजी ने औरंगजेब के शासन-काल में मराठा राज्य स्थापित किया था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद शिवाजी का पोता साहू जेल से छोड़ दिया गया। इसी बीच राजाराम की विधवा पत्नी ताराबाई ने अपने पुत्र को कोल्हापुर में प्रतिद्वंद्वी राजा के रूप में गद्दी पर बैठा दिया जब कि साहू सतारा में शासन करने लगा। मराठा राज्य के दो प्रतिद्वंद्वी दावेदारों के समर्थकों के बीच गृह युद्ध छिड़ गया। गृह युद्ध कई वर्षों तक चला और आखिरकार साहू का आधिपत्य दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गया।

पेशवाओं का उदय

साहू की सफलता में बालाजी विश्वनाथ नामक ब्राह्मण का बड़ा हाथ था। उसने अपना जीवन एक मामूली कर्मचारी के रूप में शुरू किया था। वह बढ़कर पेशवा के पद पर पहुँच गया और उसके साथ ही मराठा राज्य के विस्तार का युग शुरू हुआ।

1713 ई० में पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने सैयद बंधुओं में से एक––हुसैन अली खाँ––से समझौता किया। हुसैन अली खाँ फर्रुखसियर को उखाड़ फेंकने के लिए षड्यंत्र कर रहा था। मराठे वार्षिक खिराज देने और साम्राज्य की सेवा के लिए घुड़सवार फौज रखने पर सहमत हो गए। बदले में उन्हें दक्कन के छः सूबों में चौथ और सरदेशमुखी लगाने के अधिकार के साथ ही शिवाजी के राज्य के सारे खोए हुए क्षेत्र वापस मिल गए। तुम पढ़ चुके हो कि मराठों ने अपनी मातृभूमि और देश के बाकी हिस्सों में भेदभाव किया। वे अपनी मातृभूमि को स्वराज्य कहते थे। स्वराज्य के बाहर के हिस्सों पर वे

धावा बोल देते थे तथा वहाँ लूट-पाट करते थे। उन्होंने स्वराज्य को छोड़कर शेष भागों मे चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार जताया। चौथ राजस्व का 25 प्रतिशत और सरदेशमुखी राजस्व का 10 प्रतिशत था। 1719 ई० में पेशवा के नेतृत्व में मराठा सेना हुसैन अली खाँ के साथ दिल्ली गई और उसने फर्रुखसियर को हटाने में उसकी मदद की। इस प्रकार मुगल दरबार के सरदारों के विभिन्न गुटों के आपसी झगड़ों से फायदा उठा कर मराठों ने अपना आधिपत्य जमाने के लिए आगे बढ़ना शुरू किया। आगे आने वाले चार दशकों तक वे भारतीय राजनीति में प्रमुख शक्ति बने रहे। पेशवा का पद सबसे शक्तिशाली पद बन गया और मराठा राजा की सत्ता को उसने निस्तेज कर दिया।



पेशवा बाजीराव प्रथम

बालाजी की जगह पर उसका लड़का बाजीराव प्रथम 1720 ई० में पेशवा बना। उसने निजाम के खिलाफ आक्रामक युद्ध किए तथा उत्तर में मराठा शक्ति के विस्तार की नीति अपनाई। उसने मालवा, दक्षिण गुजरात और बुंदेल खंड को जीत लिया तथा दिल्ली तक जा पहुँचा किंतु वह दिल्ली पर कब्जा नहीं कर सका क्योंकि तब भी मुगल बादशाह

की काफी इज्जत थी। मराठों के आक्रमणों से मुगल सूबों में आतंक छा गया और कुछ हद तक धनी शहरों का वाणिज्य-व्यवसाय छिन्न-भिन्न हो गया। आक्रमणों का उद्देश्य राज्य बढ़ाना नही था। जीते गए क्षेत्रों पर मराठों ने शासन नही किया। उनकी दिलचस्पी मुख्यत: उन इलाकों के भू राजस्व को हथियाने में थी।

बाजीराव के बाद बालाजी बाजीराव पेशवा बना। उसने अपने पिता की आगे बढ़ने की नीति का ही अनुसरण किया। उसके पेशवा काल मे मराठे पूरब में बिहार और उड़ीसा तथा उत्तर में पंजाब तक पहुँच गए। वह मराठों के अधिकतम विस्तार का काल था।

मराठों की राजनीतिक व्यवस्था की कमजोरियाँ

मराठा शक्ति के विस्तार की कतिपय बुनियादी कमजोरियाँ थी जिनके कारण उसका पतन हो गया। मराठे ऐसी राजनीतिक व्यवस्था विकसित करने में कभी समर्थ नही हुए, जो उन्हे विजय को दृढ़ करने तथा प्रशासन की स्थायी व्यवस्था करने मे सहायता दे सकती। वस्तुत: जिस नीति ने उन्हें अपनी सत्ता का विस्तार करने में मदद दी उसी ने उनको बर्बाद भी किया। जिन इलाकों पर मराठा सरदारो ने आक्रमण किया उन पर चौथ तथा सरदेशमुखी लगाने का अधिकार उन्हे दिया गया। उनसे प्राप्त रकम का एक निश्चित हिस्सा सतारा की केंद्रीय सरकार को भेजना पड़ता था। शेष भाग सरदार अपने पास रख लेते थे व अपनी अलग सेनाएँ रखने पर खर्च करते थे। सरदार औपचारिक तौर पर पेशवा के प्रतिनिधि थे किंतु उनमें से प्रत्येक ने अर्ध स्वतंत्र प्रदेशो में अपनी अलग सत्ता स्थापित कर ली थी। वे सारे सरदार सतारा की सरकार के प्रति अपनी निष्ठा को समाप्त कर देना चाहते थे। 18 वीं शताब्दी के मध्य तक अलग-अलग पाँच मराठा शक्तियों का उदय हुआ। वे थी, पूना में पेशवा, बड़ौदा में गायकवाड़, नागपुर में भोंसले, इंदौर मे होल्कर और ग्वालियर में सिंधिया। उनके बीच जो भी एकता थी वह अहमद शाह अब्दाली से लड़ने में खत्म हो गई।

अपनी राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति के कारण मराठों ने जनता की सहानुभूति खो दी। अन्य शासकों के इलाकों पर छापा मारने से उन इलाकों के शासक उनके शत्रु हो गए। उनके द्वारा कर-वसूली से आम जनता, विशेषकर किसानो और व्यापारियो का उत्पीड़न बढ़ गया। पानीपत की तीसरी लड़ाई ने उनकी आंतरिक कमजोरियों और अन्य जगहों से समर्थन के अभाव को उभारकर रख दिया।

पानीपत की तीसरी लड़ाई

नादिरशाह के बारे में तुम पहले पढ़ चुके हो। उसके सैनिकों ने ही उसे मार दिया था। उसकी मृत्यु के बाद उसके द्वारा जीते गए अफगानिस्तान के इलाके उसके एक सेनापति---अहमद शाह अब्दाली के हाथों में चले गए। उसके राजवंश को दुर्रानी वंश कहते है। 1748 ई० में मुगल सेना से पराजित होने के बाद भी पंजाब पर वह धावा करता रहा।

इसी बीच मराठो ने दिल्ली और पंजाब में अपना प्रभाव बढाना शुरू कर दिया। मराठों और अब्दाली के बीच लड़ाई अवश्यंभावी हो गई। मराठों के अतिरिक्त उत्तर में महत्वपूर्ण शक्तियाँ थी---अवध का नवाब, जाट और रुहेला। मुगल बादशाह की कोई पूछ नही थी। अब्दाली अवध के नवाब और रुहेलों का समर्थन प्राप्त करने में सफल हो गया। मराठों ने लगभग सबको अपने से अलग कर दिया था। जब 1761 ई० में पानीपत में निर्णायक लड़ाई हुई तब राजपूत, जाट, सिक्ख या कोई अन्य मराठों की मदद के लिए नहीं आया। मराठों की बुरी तरह हार हुई और उनके हजारों सैनिक मारे गए। यह लड़ाई इतिहास में पानीपत की तीसरी लड़ाई के नाम से मशहूर है। जैसा तुम जानते हो, पहली लड़ाई बाबर और इब्राहीम लोदी के बीच सन 1526 ई० में और दूसरी लड़ाई हेमू और अकबर की सेनाओं के बीच 1556 ई० में हुई थी।

अहमद शाह अब्दाली के साथ लड़ाई के नतीजे मराठों के लिए भयकर साबित हुए। देश के, खासकर उत्तरी इलाकों में मराठा आधिपत्य को बड़ा गहरा धक्का लगा। उनके बीच जो भी एकता थी वह लड़ाई के बाद खत्म हो गई। मराठा सैनिक एक दूसरे के खिलाफ लड़ने लगे और उन्होंने आंतरिक झगडो में अन्य शक्तियों की मदद ली। कुछ समय के लिए मराठों ने अपने कुछ खोए हुए इलाके फिर प्राप्त कर लिए किंतु वे कुछ समय तक ही रख पाए।

इस बीच देश के राजनीतिक मामलों में यूरोपीय व्यापारिक कंपनियो के हस्तक्षेप से देश के राजनीतिक जीवन में बहुत बड़े परिवर्त्तन हो रहे थे।

समाज और राजनीति की कुछ विशेषताएँ

ऊपर के अनुच्छेदों से तुम्हें स्पष्ट हो गया होगा कि 18 वीं शताब्दी के भारत में राजनीतिक एकता का अभाव था। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद कोई अन्य भारतीय राज्य शक्ति और प्रतिष्ठा की दृष्टि से उसका स्थान लेने तथा देश को एक केंद्रीय सत्ता

के अधीन एक सूत्र में बाँधने के योग्य नहीं बन सका। मराठे नए भारतीय राज्यों में उत्कर्ष की स्थिति में थे किंतु वे भी उस भूमिका को निभाने (या कमी को पूरा करने) में सक्षम सिद्ध नहीं हो सके। उनकी व्यवस्था और राजनीति में इतनी अधिक कमजोरियाँ थी कि वे स्थायित्व और एकता नही ला सकते थे। विस्तार के उनके तरीकों ने उन्हें अन्य शासको और जनता से विलग कर दिया। शासक श्रेणियाँ (बड़े अफसर) विभिन्न राज्यों में विरोधी गुटों में बँटी थी। उनकी परस्पर प्रतिद्वंद्विता ने उनके राज्यो को कमजोर बना दिया था।

भारतीय समाज भी एकता-विहीन था। जैसा तुम जानते हो, हिंदू ऊँच-नीच के भेद-भाव से ग्रसित और अगणित जातियों में विभाजित थे। ऐसा कोई समान उद्देश्य न था जो पृथक गुटो को एक साथ ला सकता। दिन-प्रतिदिन के जीवन में भी विभिन्न जातियो और उपजातियों के बीच सद्‌भाव का अभाव था। एक बड़ी जनसंख्या के साथ उच्च जातियाँ दुर्व्यवहार करती थीं और उसे "अछूत" समझा जाता था। मुसलमानों में भी विभाजन थे और कुछ सम्प्रदाय अपने को दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझते थे।

एकता के इस अभाव के कई कारण थे। तुम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हो कि किस प्रकार यूरोप के अनेक देशों में आर्थिक परिवर्त्तनों के फलस्वरूप राष्ट्रगत राज्यो का उदय हुआ। वाणिज्य-व्यवसाय और बाद में, उद्योगों के उदय ने जनता के लिए विभिन्न देशों में समान आर्थिक जीवन पद्धति के निर्माण में सहायता दी। उन परिवर्त्तनों ने देश के विभिन्न भागों को एक दूसरे पर निर्भर बना दिया और ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर दी कि किसी एक भाग में रहने वाले लोगों का हित दूसरे भाग की घटनाओं से प्रभावित होता था। तुम मध्य वर्ग के संबंध में पढ़ चुके हो। मध्य वर्ग ने अपने देश की एकता के मार्ग में रोड़ा अटकाने वाली सब प्रकार की बाधाओं को खत्म करने का प्रयास किया। जो देश अनेक स्वतंत्र राज्यों में बँटे थे उनकी जनता उन्हे एकता के सूत्र मे बाँधने के लिए संघर्ष कर रही थी। एकता के मार्ग में बाधा डालने वाले सरकार के पुराने रूपों को नष्ट करने के लिए भी वह लड़ रही थी। वे लोग राजनीतिक जीवन में जनतंत्र की स्थापना के लिए आगे बढ़ रहे थे। इसका अर्थ था एक देश के सब नागरिकों के लिए समान अधिकार और जनता की इच्छाओं के अनुकूल सरकार की स्थापना और संचालन। 17 वीं शताब्दी मे इग्लैंड में गृह युद्ध हुआ और राजा को प्राणदंड दे दिया गया। राजतत्र की पुनर्स्थापना हुई किन्तु वास्तविक सत्ता संसद के हाथों में चली गई। राजा धीरे-धीरे नाममात्र का प्रधान रह गया। 18 वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में उत्तर अमरीका की जनता ने

ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंका और संयुक्त राज्य अमरीका नामक गणतंत्र की स्थापना की और अपने लिए एक जनतांत्रिक संविधान बनाया। 1789 ई० में फ्रांस की जनता ने क्रांति की और सब मनुष्यों की समानता की घोषणा की।

उपर्युक्त कारणों में से अनेक 18 वीं शताब्दी के भारत में विद्यमान नहीं थे। बाहरी दुनिया के साथ और देश के अंदर होने वाले व्यापार की मात्रा काफी बड़ी थी किंतु उसने जनता के आर्थिक और सामाजिक जीवन को अधिक प्रभावित नहीं किया। हर गाँव अपनी आवश्यकता की चीजें स्वयं उत्पन्न कर लेता था और देश में अन्यत्र उत्पन्न चीजों के साथ उसका वास्ता बहुत कम था। इस प्रकार गाँव एक स्वतंत्र आर्थिक इकाई था। राज्य गाँव से बड़ी मात्रा में राजस्व प्राप्त करता था। गाँव के कुल उत्पादन का आधे से अधिक राजस्व के रूप में ले लिया जाता था। वह राजस्व बड़ी सेनाएँ रखने और सरदारों के विलासी जीवन पर खर्च किया जाता था। राज्य अपने राजस्व में से शायद ही कुछ भाग गाँव के लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए खर्च करता था। शासकों में परिवर्तन नए राज्यों का उदय और इसी प्रकार अन्य राजनीतिक परिवर्तन गाँवों के जीवन को प्रभावित नहीं करते थे। साथ ही, यूरोप में जिस प्रकार के मध्य वर्ग ने जन्म लिया था वैसा मध्य वर्ग हिंदुस्तान में नहीं था। निःसंदेह, कुछ ऐसे परिवार थे जो व्यापार के जरिए धनी हो गए। किंतु उन्होंने जो धन-संपत्ति इकट्ठी की थी उसका इस्तेमाल नए हुनर, वस्तुओं की नई उत्पादन-विधियों और नवीन प्राविधिक ज्ञान (टेक्नोलॉजी) को विकसित करने के बदले सरदारों को कर्ज देने तथा ब्याज कमाने के लिए किया गया। इसका अर्थ यह है कि भारतीय समाज में ऐसी शक्तियों ने या तो जन्म नहीं लिया था या वे इतनी महत्वपूर्ण नहीं हुई थीं कि अपने हित के लिए राजनीतिक अराजकता खत्म करने की उनमें ताकत, तीव्र आवश्यकता और इच्छा शक्ति होती। अतः राजनीतिक जीवन में राज्यों की परस्पर प्रतिस्पर्द्धा का बोलबाला रहा। हर राज्य अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाकर अपने राजस्व में वृद्धि करना चाहता था। हर राज्य के अंदर अफसरों का हर गुट अपना स्वार्थ साधना चाहता था।

भारत में राज्यों के शासक संसार की घटनाओं से बेखबर थे। भारत के राजनीतिक जीवन में एक नए तत्व ने प्रवेश किया था। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों ने भारत के राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करना और अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित करने का प्रयास शुरू कर दिया था। तुम मध्यकालीन भारत के इतिहास में उनकी शुरुआत के दिनों के बारे में पढ़ चुके हो। तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों ने यूरोपीय व्यापारिक

कंपनियों को भारत के राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप के लिए अवसर दिए। किंतु, भारतीय राज्यों के शासक अपने शासन के प्रति इस खतरे से अवगत नहीं थे। वास्तव में वे अपने प्रतिद्वंद्वियों के मुकाबले अपना स्वार्थ साधने की आशा में विदेशी व्यापारिक कंपनियों के हाथों की कठपुतली बनने के लिए बिल्कुल तैयार थे। पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों के हारने के पहले ही भारत में ब्रिटिश विजय शुरू हो गई थी। अहमद शाह अब्दाली की जीत अस्थायी थी और उसके द्वारा नियुक्त अफसरों को निकाल बाहर किया गया। जो ब्रिटिश विजय अभी शुरू ही हुई थी वह समय के साथ इतनी व्यापक हो गई कि वस्तुतः सारे भारत पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया।

अभ्यास

1. **पारिभाषिक शब्द जिनको तुम्हें जानना चाहिए :**

चौथ—मुगल साम्राज्य को दिए जाने वाले लगान का एक चौथाई भाग जिसको मराठे अतिरिक्त कर के रूप में उन लोगों से वसूल करते थे जो उनके राज्य के बाहर रहते थे। उसके बदले में मराठे उनको वचन देते थे कि वे उनके क्षेत्र में लूट-मार नहीं करेंगे तथा उनपर आक्रमण भी नहीं करेंगे।

सरदेशमुखी—कुल लगान का दसवाँ भाग जो मराठे सारे क्षेत्र से वसूल करते थे।

वजीर—मुगल साम्राज्य का मुख्य वित्त मंत्री।

स्वराज्य—महाराष्ट्र का वह हिस्सा जहाँ शिवाजी ने अपना राज्य स्थापित किया था। मराठों ने वहाँ अपना नियमित और स्थायी शासन कायम किया। स्वराज्य के बाहर के क्षेत्रों पर मराठे धावा करते तथा लूट-मार मचाते थे और कर लगाते थे।

मिसल—अठारहवीं शताब्दी में सिक्खों के बीच एकता आने लगी थी। उस समय सिक्खों ने अपने को बारह मिसलों या राजनीतिक इकाइयों में संगठित किया। हर मिसल अपने नेता के प्रति निष्ठावान थी।

2. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :**

(i) औरंगजेब की मृत्यु के बाद केंद्रीय सरकार की सत्ता का पतन क्यों हुआ ?

(ii) सूबाई राज्य सदा लड़ाई में क्यों लगे रहते थे ?

(iii) औरंगजेब की मृत्यु के बाद राजपूत सत्ता का पतन क्यों हो गया ?

(iv) अठारहवीं शताब्दी के भारत की राजनीतिक स्थिति की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं ?

(v) नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों का भारत की राजनीतिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(vi) स्थायी साम्राज्य स्थापित करने में मराठों की विफलता के क्या कारण थे ?
(vii) मराठों की विजय की क्या मुख्य विशेषताएँ थीं ?
(viii) अठारहवी शताब्दी में भारत की मुख्य सांस्कृतिक उपलब्धियाँ क्या थीं ?

3. **1707 ई. और 1761 ई. के बीच की घटनाओं के संबंध में कुछ कथन नीचे दिए गए हैं। सही कथनों के सामने (√) निशान और गलत कथनों के सामने (×) निशान लगाओ :**

(i) बहादुर शाह प्रथम के बाद कई शासक गद्दी पर बैठे जिन्होंने मुगल साम्राज्य की पुरानी सत्ता को फिर से स्थापित किया।
(ii) निजाम-उल-मुल्क को सैयद बंधुओं ने उखाड़ फेंका।
(iii) वस्तुत: स्वतंत्र हो जाने के बाद भी सूबेदार मुगल बादशाहों के प्रति औपचारिक निष्ठा प्रदर्शित करते रहे।
(iv) अहमदशाह अब्दाली ने जब भारत पर आक्रमण किया तब अधिकतर भारतीय शासकों ने उसका प्रतिरोध किया।
(v) मराठे आंतरिक कमजोरियों से विहीन एक सूत्रबद्ध शक्ति थे।
(vi) मराठों ने अपने विजय-अभियानों के कारण अन्य भारतीय शासकों की सहानुभूति खो दी।

4. **कालम 'क' में कुछ व्यक्तियों के नाम और कालम 'ख' में उनके संबंध में कथन दिए हुए हैं। कालम 'ख' में कथनों को इस प्रकार रखो कि वे कालम 'क' के नामों के अनुकूल हो जाएँ।**

'क'	'ख'
(i) सवाई राजा जयसिंह	(i) वह पेशवा के पद पर था।
(ii) चिन किलिच खाँ	(ii) वह बंगाल का शासक था।
(iii) मुर्शिद कुली खाँ	(iii) वह अवध का नवाब था।
(iv) हैदर अली	(iv) उसने मैसूर में एक नए राजवंश की नीव रखी।
(v) बाजी राव	(v) वह जयपुर का शासक था।
(vi) हुसैन अली खाँ	(vi) वह हैदराबाद का पहला निजाम था।
(vii) सफदरजंग	(vii) वह सैयद बंधुओं में से एक था।

5. **करने के लिए रुचिकर कार्य :**

(क) उन सूबाई राज्यों की सूची उनकी राजधानियों के साथ तैयार करो जिनका उदय 18वीं शताब्दी में हुआ। उन्हें भारत के मानचित्र पर दिखाओ।
(ख) अपने शहर के उन ऐतिहासिक स्थानों पर जाओ जो 18वीं शताब्दी के किसी-न-किसी भारतीय शासक से संबद्ध रहा है। अपने पर्यटन-स्थलों के संबंध में एक रिपोर्ट तैयार करो। रिपोर्ट में निम्नलिखित बातों में से कुछ पर प्रकाश डालो :

उस शासक का नाम जिससे स्थल विशेष संबद्ध रहा है, उसका शासनकाल तथा

उसके शासनकाल की मुख्य घटनाएँ; स्थान विशेष पर अवस्थित इमारत आदि (उदाहरण के लिए, वहाँ मस्जिद, मकबरा, किला आदि में से क्या है ?) और स्थान विशेष के बारे में जानने की अन्य दिलचस्प बातें।

(दिल्ली में रहने वाले विद्यार्थी, उदाहरण के लिए, जंतर-मंतर, तथा सफदर जंग का मकबरा देख सकते हैं।)

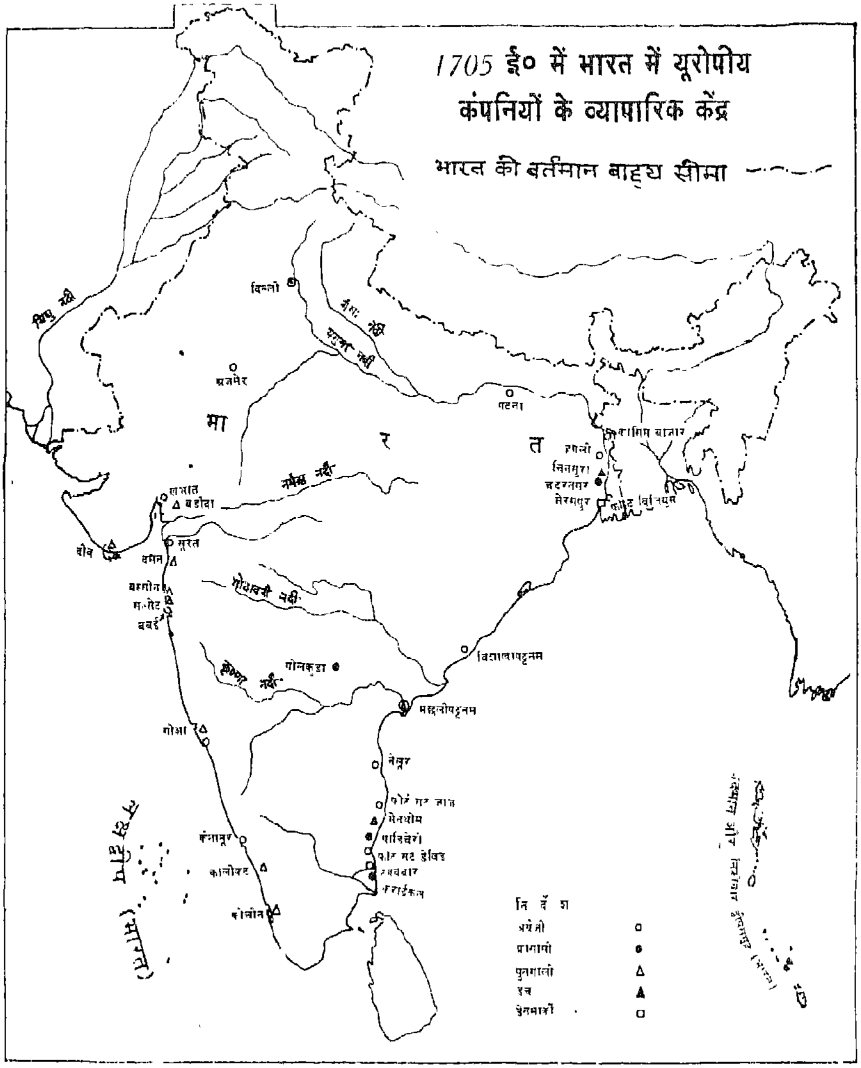
अध्याय 3

ब्रिटिश शासन का उदय

भारत में यूरोप की व्यापारिक कंपनियाँ

तुम पढ़ चुके हो कि यूरोप से भारत आने के समुद्री मार्ग का पता सबसे पहले वास्को डि गामा ने 1498 ई० में लगाया। तुम यह भी जानते हो कि भारत और एशिया के अन्य भागों से व्यापार करने के लिए यूरोप में कंपनियाँ स्थापित हुईं। हर कंपनी किसी देश विशेष के सौदागरों का एक समूह थी। हर सौदागर का कंपनी में हिस्सा उसके द्वारा लगाई गई पूँजी पर निर्भर होता था। कंपनी का कुल मुनाफा हिस्सेदारों के बीच बाँट दिया जाता था। मुनाफे का वितरण हिस्सेदारों की पूँजी के अनुपात में किया जाता था। जो हिस्सेदार जितनी अधिक पूँजी कंपनी में लगाता था उसे उतना ही अधिक मुनाफा मिलता था।

भारत के विभिन्न हिस्सों में कई देशों की कंपनियों ने अपने व्यापारिक केंद्र स्थापित किए थे। इन में पुर्तगाल, हालैंड, इंग्लैंड, फ्रांस और डेनमार्क की कंपनियाँ प्रमुख थीं। इनके व्यापारिक केंद्र मुख्यतः समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में थे। इन व्यापारिक केंद्रों को 'फैक्टरी' कहा जाता था। 'फैक्टरी' का अर्थ उस स्थान से था जहाँ 'फैक्टर्स' या कंपनी के अफसर माल की खरीद-बिक्री करते थे। कुछ 'फैक्टरियों' की किलाबंदी भी की गई थी। किला-बंदी का उद्देश्य प्रतिद्वंद्वियों के आक्रमण से 'फैक्टरियों' को बचाना था। वे कंपनियाँ भारत से मसाले, हाथ-करघे पर तैयार सूती कपड़े, नील, शोरा (पोटाशियम नाइट्रेट) आदि खरीदती थीं। नील का इस्तेमाल कपड़ा रँगने के लिए होता था। शोरा बारूद बनाने के काम आता था। इनमें से अधिकतर यूरोप में विलास की वस्तुएँ समझी जाती थीं। इनका यूरोप में अभाव था। व्यापारिक कंपनियाँ इन वस्तुओं को सस्ती दर पर

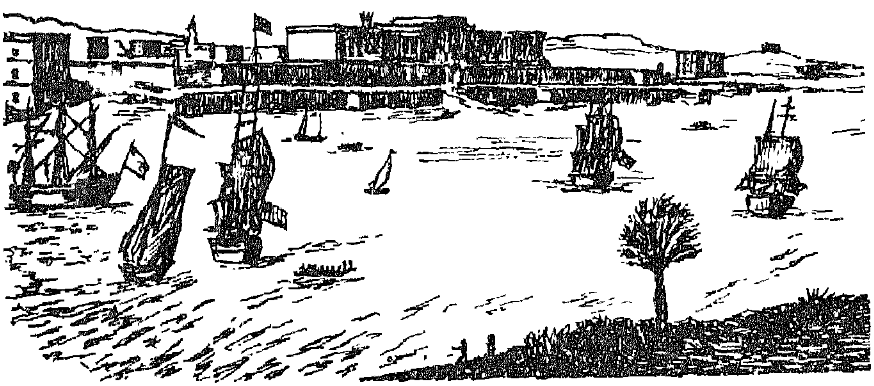


भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जल प्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

खरीद कर यूरोप और अमरीका में ऊँची कीमतों पर बेचती थीं। इस प्रकार वे भारी मुनाफा कमाती थीं। भारत में वे मुख्यत: सोना और चाँदी देकर वस्तुएँ खरीदती थीं। अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के लिए कंपनियों में होड़ लगी रहती थी। होड़ के कारण कंपनियों के बीच हिंसात्मक झगड़े होते थे। यूरोप की सरकारें झगड़ों और लड़ाइयों में अपने-अपने देश की कंपनियों का समर्थन करती थीं।

अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ तक अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने पुर्तगालियों, स्पेन-वासियों और डच लोगों को एशिया और यूरोप के परस्पर व्यापार में उनके महत्त्वपूर्ण स्थानों से अपदस्थ कर दिया। इंग्लैंड और फ्रांस की कंपनियों का भारत और यूरोप के पारस्परिक व्यापार पर प्रमुख अधिकार हो गया। इंग्लैंड और फ्रांस की कंपनियाँ ईस्ट इंडिया कंपनी के नाम से प्रसिद्ध थी। उनके बीच प्रतिद्वंद्वी के रूप में झगड़े होते रहते थे। अधिक मुनाफा कमाने की दृष्टि से हर कंपनी कम से कम कीमत पर भारतीय माल खरीदने की कोशिश करने लगी। इसलिए हर कंपनी बाजार पर अपना अधिकार जमाने और दूसरे का प्रभाव खत्म करने के लिए प्रयास करने लगी। इस प्रतिद्वंद्विता के कारण कंपनियों के बीच लड़ाइयाँ हुईं। कंपनियों ने भारत के राजनीतिक मामलों में भी हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। व्यापार पर नियंत्रण करने और प्रतिद्वंद्वियों को खत्म करने के उद्देश्य से अपनी राजनीतिक सत्ता की स्थापना के लिए वे योजनाएँ बनाने लगीं।



फोर्ट विलियम, कलकत्ता। यह ईस्ट इंडिया कंपनी का किलेबंद व्यापारिक केंद्र था।

फ्रांसीसियों का प्रधान कार्यालय भारत के दक्षिण-पूर्व समुद्र-तट पर पांडिचेरी में था। दक्षिण में अंग्रेज़ कंपनी का प्रधान कार्यालय फोर्ट सेंट जार्ज (मद्रास) में था। फोर्ट सेंट जार्ज (मद्रास) पांडिचेरी के उत्तर में था। फोर्ट विलियम नामक उनकी एक क़िलाबंद चौकी कलकत्ता में थी। अंग्रेजों को फर्रुखसियर से एक फरमान मिला था। उस फरमान के अनुसार अंग्रेजों को अनेक रियायतें मिली थी। भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं पर चुंगी के बदले उन्हें हर वर्ष एक छोटी रकम ही देनी पड़ती थी। धीरे-धीरे अंग्रेजों ने अपने व्यापार केंद्रों से बंगाल के निर्यात व्यापार पर नियंत्रण करना शुरू कर दिया था। उन्होंने जगत-सेठ-परिवार से व्यावसायिक संबंध स्थापित कर लिए थे। जगत-सेठ बंगाल के नवाब के बैंकर भी थे।

कर्नाटक युद्ध और उनके परिणाम (1744-1754)

सबसे पहले झगड़ा कर्नाटक में शुरू हुआ। कर्नाटक मुगल साम्राज्य का एक सूबा था। तुम पहले पढ़ चुके हो कि वह न्यूनाधिक स्वतंत्र हो गया था। कर्नाटक की राजधानी आर्काट में थी। आर्काट समुद्र से दूर मद्रास और पांडिचेरी के बीच है। भारत के पुराने अंग्रेज इतिहासकार ओर्म उस समय अंग्रेज कंपनी के एक अफसर थे। उन्होंने एक दिलचस्प कहानी लिखी है जिससे भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। 1743 ई० में निजाम आर्काट की ओर रवाना हुआ था। यात्रा के दौरान उसे एक दिन में 18 'नवाबों' से मिलाया गया। तब उसने आदेश दिया कि अब जो भी अपने को नवाब कहे उसे बदमाश मानकर कोड़े लगाए जाएँ। औरंगजेब के जमाने में निजाम ने 'ओहदे के बारे में कुछ धारणाएँ' अपने दिमाग में बनाई थीं। उस समय नवाब की पदवी उन्ही को दी जाती थी जो ऊँचे पदों पर होते थे। कहानी दिखलाती है कि उपर्युक्त धारणा और वास्तविकता में परस्पर कितना विरोध हो गया था। वास्तविकता यह थी कि प्रांतीय अफसरों ने बिना पद का ख्याल किए यह पदवी बेरोक-टोक बाँटनी शुरू कर दी थी। आर्काट जब भी अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता का स्थल बना वहाँ यही हालत थी।

पहला दौर

सन 1740–48 ई० के दौरान यूरोप में एक लड़ाई हुई। उस लड़ाई को आस्ट्रियन उत्तराधिकार का युद्ध कहा जाता है। उस लड़ाई में फ्रांसीसियों ने आस्ट्रिया और अंग्रेजों

ने प्रशा का पक्ष लिया। डूप्ले उस समय पांडिचेरी में फ्रांसीसी कंपनी का मुख्य अफसर था। डूप्ले की महत्त्वाकांक्षा कर्नाटक के व्यापार पर नियंत्रण करने की थी। यूरोप में इंग्लैंड और फ्रांस के बीच लड़ाई छिड़ जाने पर भारत में दोनों देशों की कंपनियों के नौ सैनिकों ने एक दूसरे के व्यापारिक जहाजों को लूटा। 1746 ई० में मारिशस (हिन्द महासागर में स्थित एक टापू) के फ्रांसीसी गवर्नर ने फोर्ट सेंट जार्ज को लूटा। डूप्ले ने आदेश दिया कि अंग्रेज कंपनी के सारे लोगों को वहाँ से निकाल बाहर किया जाए। अपने प्रांत में फ्रांसीसियों की बढ़ती हुई ताकत से सावधान होकर कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन खाँ ने उनके खिलाफ एक सेना भेजी। किंतु कर्नाटक की सेना मद्रास के निकट अड्यार नदी के किनारे हार गई। इस लड़ाई के परिणाम ने फ्रांसीसी तथा अंग्रेज कंपनियों को चौंका दिया। फ्रांसीसियों की छोटी फौज नवाब की बड़ी फौज के मुकाबले ताकतवर साबित हुई। इसका कारण यह था कि फ्रांसीसी फौज में सुदृढ़ अनुशासन, अच्छी बंदूकें और सैनिकों को नियमित रूप से वेतन देने की व्यवस्था थी। दूसरी ओर कर्नाटक के नवाब की सेना अनुशासनहीन थी। उसको साधनों का अभाव था। सैनिकों को नियमित रूप से वेतन नहीं मिलता था। राबर्ट क्लाइव उस समय अंग्रेज कंपनी में क्लर्क था। उसने मद्रास के पास एक अन्य व्यापारिक चौकी में शरण ली थी। क्लाइव ने उस लड़ाई के महत्त्व को समझा और शीघ्र ही आगे चलकर सैनिक संगठन तथा युद्ध-कला के नए अनुभवों का प्रयोग उसने अंग्रेज कंपनी के हित में किया।

सन 1748 ई० में यूरोप में शांति स्थापित हो गई। फलस्वरूप फ्रांसीसियों ने मद्रास अंग्रेज कंपनी को वापस कर दिया। उसी साल कर्नाटक का नवाब फ्रांसीसियों के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया। हैदराबाद के आसफजाही वंश का संस्थापक निजाम-उल-मुल्क भी मर गया। फ्रांसीसियों का प्रभाव लगातार बढ़ता जा रहा था। उन्होंने निजाम-उल-मुल्क के उत्तराधिकारी को गद्दी से उतार कर मुजफ्फर जंग को निजाम बना दिया। कर्नाटक में फ्रांसीसियों ने चाँद साहब को नवाब बना दिया। फ्रांसीसियों की शक्ति में वृद्धि की आशंका से अंग्रेजों ने अनवरुद्दीन के लड़के मुहम्मद अली को नवाब बना दिया। मुहम्मद अली को आर्काट में बिठाने के लिए 1751 ई० में क्लाइव को एक छोटी फौजी टुकड़ी के साथ भेजा गया।

दूसरा दौर

इस प्रकार कर्नाटक की गद्दी के प्रश्न को लेकर अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के झगड़े

का दूसरा दौर शुरू हुआ। दोनों कंपनियों ने कर्नाटक के नवाब-पद के परस्पर विरोधी दावेदारों का इस्तेमाल कर अपने हितों को साधने की कोशिशें की। अंग्रेजों को तंजौर के मराठा सरदार का समर्थन मिला, तंजौर का मराठा सरदार चाँद साहब का दुश्मन था। लड़ाई में फ्रांसीसियों की निर्णायक पराजय हुई और चाँद साहब का सिर काट लिया गया। डूप्ले को वापस फ्रांस बुला लिया गया और दोनों कंपनियों के बीच शांति-समझौता हो गया। निजाम ने मुहम्मद अली को कर्नाटक का नवाब मान लिया।

लड़ाई का नतीजा अंग्रेज कंपनी के हित में रहा। वह फ्रांसीसी कंपनी को हटाकर कर्नाटक का अधिराज बन गई। फ्रांसीसियों की हार के कई कारण थे। प्रभाव में आने पर डूप्ले सहित सब फ्रांसीसी अफसर अपने लिए धन कमाने में व्यस्त हो गए थे। इससे फ्रांसीसी कंपनी की वित्तीय स्थिति कमजोर हो गई। फ्रांसीसी कंपनी की तुलना में अंग्रेज कंपनी ने अपने सैनिकों के बीच कड़ा अनुशासन रखा था और उन्हें हथियार चलाने का उत्तम प्रशिक्षण दिया था। इसीलिए फ्रांसीसियों की अपेक्षा अंग्रेज भारतीय सैनिकों का अधिक अच्छा इस्तेमाल कर सके।

हारने पर भी भारत में फ्रांसीसियों का प्रभाव और शक्ति कायम रही। भारत छोड़ने के पहले डूप्ले ने बस्सी को नए निजाम का समर्थन करने के लिए हैदराबाद भेजा। बस्सी एक योग्य फ्रांसीसी फौजी अफसर था। दक्कन में काफी मजबूत सैनिक शक्ति के इस्तेमाल से वह स्थानीय प्रशासन पर अपना प्रभाव जमा बैठा। निजाम ने उसे अपनी फौज के खर्च के लिए राजस्व-वसूली का अधिकार दे दिया। इससे उसे निजाम के ऊपर अपना प्रभाव जमाने में सहायता मिली। इस प्रकार राजनीतिक नियंत्रण का एक नया तरीका सामने आया। इसके अंतर्गत भारतीय राज्यों से फौज का खर्च लिया जाता था और फिर फौज का प्रयोग उन्हीं के शासकों पर नियंत्रण रखने के लिए किया जाता था। इस तरीके को शीघ्र ही अंग्रेजों ने बंगाल में अपनाया। इसी बीच बंगाल झगड़े का क्षेत्र बन गया।

बंगाल पर अंग्रेजी कब्जा

अलीवर्दी खाँ 1740 ई० में बंगाल का नवाब बना। उसने जमींदारों और हिंदू तथा मुसलमान अफसरों की निष्ठा प्राप्त कर ली। उसने बंगाल में कुशल और ईमानदार प्रशासन कायम किया। उसके शासनकाल में मराठे कई वर्षों तक लगातार आक्रमण करते रहे। आखिरकार बंगाल सूबा का एक भाग—उड़ीसा—मराठों के हाथों में

चला गया। अपने पूरे शासन-काल में उसने यूरोप के सौदागरों को अपनी अधीनता में रखने की नीति अपनाई। उसके बारे में मशहूर है कि उसने अपने परिवार को अंग्रेज सौदागरों के साथ संपर्क नहीं बढ़ाने दिया था।



बंगाल का नवाब सिराजुद्दौला।

पलासी की लड़ाई

अलीवर्दी खाँ के बाद उसका नौजवान नाती सिराजुद्दौला नवाब बना। किंतु उसके नवाब बनने पर उसके परिवार के सदस्यों के बीच षड्यंत्र और झगड़े शुरू हो गए। गद्दी के लिए झगड़े और साजिशें आम बात हो गई थी। सिराजुद्दौला के विरुद्ध इन साजिशों ने अंग्रेज कंपनी को बंगाल की राजनीति में हस्तक्षेप का मौका दे दिया। अंग्रेजों ने कलकत्ता की किलाबंदी जोर-जोर से शुरू कर दी। नवाब के अनुसार ढाका के उसके ख़ज़ाने से गबन हुआ था। गबन की रकम, नवाब के अनुसार, अंग्रेजों के पास थी। नवाब ने गबन की गई रकम लौटाने के लिए अंग्रेजों से कहा। अंग्रेजों ने नवाब की माँग ठुकरा दी। नवाब संभवत: कर्नाटक की घटनाओं से अवगत था। उसने अनुभव किया कि अंग्रेज कंपनी उसकी सत्ता के लिए एक खतरा है। उसने इस खतरे को खत्म करने का निर्णय किया।

सन 1756 ई० में सिराजुद्दौला के सैनिकों ने कलकत्ता पर कब्जा कर लिया। नवाब के कुछ सैनिकों ने अंग्रेज सैनिकों के प्रति नृशंसता का व्यवहार किया। कई अंग्रेज सैनिक मारे गए। सुनते ही नवाब ने नृशंस कार्यों पर रोक लगा दी।

जब कलकत्ता की हार की खबर मद्रास पहुँची तो क्लाइव को एक नौ सैनिक बेड़े के साथ कलकत्ता पर दुबारा कब्जा करने के लिए भेजा गया। अंग्रेज सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यंत्र में शामिल हो गए। जगत-सेठ बंगाल के अधिकांश वित्तीय मामलों को नियंत्रित करते थे। उनका अंग्रेज कंपनी के साथ भी व्यावसायिक संबंध था। वे नवाब से असंतुष्ट थे। उन्होंने नवाब के रिश्तेदार मीरजाफर का समर्थन करना शुरू कर दिया। मीरजाफर का समर्थन अंग्रेज कंपनी भी कर रही थी। दोनों ने सोचा कि मीर-जाफर उनके हाथों की कठपुतली होगा।

उस समय यूरोप में इंग्लैंड और फ्रांस के बीच सातवर्षीय युद्ध छिड़ा हुआ था। बंगाल के चंदरनगर में एक फ्रांसीसी फैक्टरी थी। उस फैक्टरी ने सिराजुद्दौला का साथ दिया। किंतु क्लाइव ने चंदरनगर पर कब्जा कर लिया। उसने समृद्ध हुगली शहर को लूटा और जला दिया। उसके बाद वह मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ा। पलासी में 1757 ई० में लड़ाई हुई। नवाब की सेना के एक अंग का प्रधान मीरजाफर लड़ाई के समय निष्क्रिय रहा। तुम ऊपर देख चुके हो कि वह नवाब के खिलाफ साजिश में शामिल था। नवाब की सेना हार गई। नवाब को पकड़ लिया गया और बर्बरतापूर्वक मार दिया गया। मीरजाफर को नवाब बनाया गया। उसने क्लाइव तथा कंपनी के अन्य अफसरों को समर्थन के लिए इनाम के रूप में भारी धनराशि दी। इस लड़ाई से बंगाल और बिहार में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना की शुरुआत हुई।

कर्नाटक में भी अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को हरा दिया। हैदराबाद छोड़ने के बाद बस्सी अपने सैनिकों सहित फ्रांसीसी सेना में शामिल हो गया था। अंग्रेजों ने पांडिचेरी पर कब्जा कर उसे बर्बाद कर दिया। 1763 ई० में यूरोप में सातवर्षीय युद्ध खत्म हो गया और फ्रांसीसियों को पांडिचेरी वापस मिल गया। किंतु भारत में फ्रांसीसी शक्ति सदा के लिए खत्म हो गई।

कठपुतली नवाब और ईस्ट इंडिया कंपनी

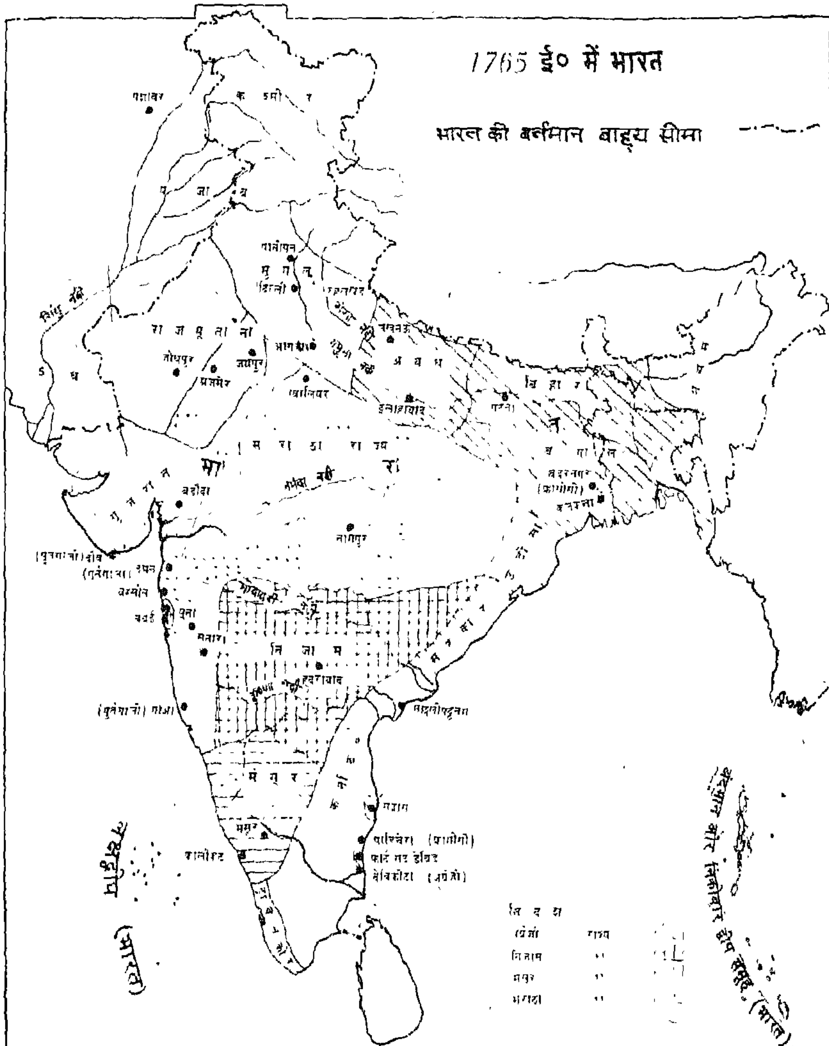
तुम ऊपर पढ़ चुके हो कि मीरजाफर अंग्रेज कंपनी की मदद से बंगाल का नवाब बना था। उसके नवाब बनने पर कंपनी हिन्दुस्तानी माल देशी व्यापारियों की अपेक्षा

काफी कम कीमतों पर खरीदने लगी। भारत के व्यापारिक शहरों में विजेता के रूप में अंग्रेजों का दबदबा था। उनके भारतीय एजेंटों को गुमास्ता या दलाल कहा जाता था। वे और उनके गुमास्ता या दलाल किसानों तथा दस्तकारों को अपना माल बाजार भाव से काफी सस्ता बेचने के लिए मजबूर करते थे। इस प्रकार वे भारी मुनाफा कमाते थे। बंगाल में कंपनी के अफसरों का रोब-दाब बढ़ गया था। नवाब से फायदा तथा तरक्की चाहने वाले उनके पास जाते थे। फायदा और तरक्की पाने के लिए कंपनी के अफसरों को घूस की मोटी रकम देनी पड़ती थी। इस लूटखसोट के कारण राज्य की वित्तीय स्थिति खराब हो गई। नवाब के पास धन का अभाव हो गया। वह अपने सैनिकों तथा कंपनी के सैनिकों का खर्च नहीं चला पा रहा था। याद रखो कि कंपनी की सेना उसकी गद्दी कायम रखने के लिए रखी गई थी। अफसरों की लूटखसोट के कारण कठपुतली नवाब भी कंपनी के खिलाफ होने लगा। किंतु उसे कंपनी के अफसरों ने जल्द ही हटाकर उसके दामाद मीरकासिम को बंगाल का नवाब बना दिया।

मीरकासिम और बक्सर की लड़ाई

मीरकासिम ने अंग्रेज कंपनी पर पूरी निर्भरता की स्थिति को समझा। उसने अपनी स्थिति मजबूत बनाने की कोशिश की। वह कंपनी की पकड़ से छुटकारा पाना चाहता था। स्वतंत्र होने की कोशिश करने वाला वह आखिरी नवाब था। वह अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए आगे बढ़ा। उसने कंपनी के नजदीक समझे जाने वाले मीर-जाफर के अफसरों को बरखास्त करना शुरू कर दिया। उसने अपने लिए एक ताकतवर सेना बनानी भी शुरू की। सैनिकों को युद्ध के नए तरीके सिखाने के लिए उसने यूरोपीय सैनिकों को नियुक्त किया। वित्तीय स्थिति सुधारने के लिए उसने बंगाल और बिहार के किसानों पर लगान बढ़ा दिया। उसने अनेक जमींदारों की जगह इजारेदारों को नियुक्त किया। इजारेदार मोटी रकम पेशगी देने के लिए तैयार थे। उसने ये कदम अपनी स्वतंत्र स्थिति को दृढ़ करने के लिए उठाए। किंतु उसने हटाए गए जमींदारों का समर्थन खो दिया। अधिक लगान तथा इजारेदारों के अत्याचारों के कारण किसानों की हालत बिगड़ गई।

मीरकासिम ने भारतीय सौदागरों का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की। वह उन्हें कंपनी के अत्याचार से बचाने के लिए आगे बढ़ा। उसने चुंगी की माँग खत्म कर दी। अब भारतीय सौदागर कंपनी के अफसरों की तरह ही व्यापार कर सकते



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जल प्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

थे। उसकी इन सब कार्रवाइयों के कारण अंग्रेज कंपनी के अफसर नाराज हो गए।

सन 1763 ई० की लड़ाई में नवाब की सेना हार गई। नवाब को बंगाल और बिहार से खदेड़ दिया गया। गुस्से में आकर उसने विश्वासघात करने वाले अपने कई अफसरों तथा जगत-सेठ परिवार के दो सदस्यों को मार डाला। जगत-सेठ परिवार के दोनों सदस्य अंग्रेजों से मिलकर षड्यंत्र कर रहे थे।

मीरकासिम ने शुजाउद्दौला के यहाँ शरण ली। शुजाउद्दौला सफदरजंग के बाद अवध का नवाब बना था। दिल्ली के बादशाह आलमगीर द्वितीय की हत्या के बाद उसका लड़का शाह आलम गद्दी पर बैठा। किंतु आलमगीर द्वितीय की हत्या करने वाला वजीर उसे दिल्ली में घुसने नहीं देता था। इसलिए शाह आलम ने भी अवध के नवाब की शरण ली थी। अवध के नवाब ने दोनों शरणार्थियों के साथ अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई की तैयारी की। पश्चिम बिहार के बक्सर नामक स्थान पर लड़ाई हुई। शाह आलम और मीरकासिम शुजाउद्दौला का साथ छोड़कर भाग गए। अंग्रेजों ने शुजाउद्दौला की सेना को हरा दिया।

बक्सर की लड़ाई निर्णायक सिद्ध हुई। भारत के इतिहास में एक भारी मोड़ आ गया। 1765 ई० में शुजाउद्दौला और शाह आलम ने इलाहाबाद में क्लाइव के साथ समझौतों पर हस्ताक्षर किए। क्लाइव उस समय तक कंपनी का गवर्नर बन गया था। समझौतों के अनुसार ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिल गई। इस तरह कंपनी को इन इलाकों से राजस्व-वसूली का अधिकार मिल गया। अवध के नवाब ने इलाहाबाद, कोरा और कड़ा मुगल-बादशाह को दिए। मुगल बादशाह ब्रिटिश सैनिकों के संरक्षण में कठपुतली बनकर इलाहाबाद में रहने लगा। अवध के नवाब के सैनिकों की संख्या सीमित कर दी गई। बाहरी हमलों से बचाव की जिम्मेदारी कंपनी ने ले ली। नवाब ने बचाव के लिए रखे गए सैनिकों का खर्च कंपनी को देने का वचन दिया। कंपनी मुगल बादशाह को हर साल 26 लाख रुपए देने पर सहमत हो गई। किंतु उसने तुरंत ही भुगतान करना बंद कर दिया। मीरजाफर को फिर बंगाल का नवाब बनाया गया। उसके मरने पर उसका बेटा नवाब बना। कंपनी के अफसरों ने नए नवाब से मोटी रकमें ऐंठ लीं।

इस प्रकार अंग्रेज समृद्ध बंगाल प्रांत के वास्तविक शासक हो गए। वैसे कहने को औपचारिक सत्ता नवाब के हाथों में ही रही। अंग्रेज पूर्वी भारत के अपने ठिकाने से 1765 ई० के बाद भारतीय शासकों के मुकाबले में आ गए। शुरू में मुकाबला बराबरी

का था किंतु बाद में उनकी ताकत भारतीय शासकों की अपेक्षा बढ़ गई। इस प्रकार भारत पर अंग्रेजी कब्जे की प्रक्रिया शुरू हुई।

अभ्यास

1. **पारिभाषिक शब्द जिनको तुम्हें जानना चाहिए :**

फैक्टरी—इसी नाम से भारत में यूरोप की कंपनियों के व्यापार-केंद्र जाने जाते थे। यह नाम अंग्रेजी शब्द "फैक्टरस" से निकला था जिसका अर्थ व्यापारिक कंपनियों के अफसरों से था। जिन स्थानो पर खरीद-बिक्री के लिए फैक्टरस रखे जाते थे उन्हें फैक्टरी कहा जाता था।

इजारेदार—किसी इलाके के जमींदार या जागीरदार से जब कोई व्यक्ति उसके इलाके के किसानों से लगान वसूल करने का अधिकार प्राप्त कर लेता था और बदले में एक निश्चित रकम देने का वादा करता था तो उस व्यक्ति को इजारेदार कहते थे। आमतौर से इजारेदारों के बीच लगान-वसूली का अधिकार लेने के लिए होड़ लगी रहती थी। सबसे बड़ी रकम देने वाला ही लगान-वसूली का अधिकार पाता था। इजारेदार स्वयं भारी मुनाफा कमाते थे। अठारहवीं शताब्दी के दौरान यह व्यवस्था काफी प्रचलित थी। इस व्यवस्था ने किसानों के उत्पीडन में वृद्धि की।

दीवानी—राजस्व वसूल करने वाला विभाग।

2. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :**
   (i) अठारहवीं शताब्दी के दौरान भारत मे अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच झगड़े के क्या कारण थे ?
   (ii) सिराजुद्दौला को अंग्रेजों ने कैसे आसानी से हरा दिया ?
   (iii) अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी और बंगाल के नवाबों के बीच झगड़ो में जगत-सेठ-परिवार की क्या भूमिका थी ?
   (iv) अंग्रेज कंपनी ने मीर कासिम को बंगाल का नवाब बनाया था किंतु बाद में कंपनी उसके खिलाफ क्यों हो गई ?
   (v) बक्सर की लडाई के क्या परिणाम हुए ?
3. **नीचे कुछ कथन दिए गए हैं। जो सही हों उनके आगे (✓) निशान और जो गलत हों उनके आगे (X) निशान लगाओ :**
   (i) यूरोप के व्यापारी भारत मे अपना माल बेचने और बदले में यहाँ से सोना-चाँदी लेने आए थे।
   (ii) अंग्रेज और फ्रांसीसी कंपनियाँ भारत में तभी लड़ती थीं जब यूरोप मे इंग्लैंड और फ्रांस के बीच लडाई होती थी।

(iii) यूरोप की कंपनियों ने अपना स्वार्थ साधने के लिए भारत के राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू किया।

(iv) मीर कासिम पलासी की लड़ाई के बाद बंगाल का नवाब बना।

(v) मुगल बादशाह और अवध तथा बंगाल के नवाबों ने इलाहाबाद में ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ संधि पर हस्ताक्षर किए।

(vi) अंग्रेज कंपनी चाहती थी कि उसे भारतीय सौदागरों के समान व्यापारिक अधिकार मिलें।

4. **निम्नलिखित घटनाओं को कालक्रम से रखो :**

अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल की दीवानी की प्राप्ति, पलासी की लड़ाई, यूरोप मे सातवर्षीय युद्ध, चंदरनगर पर कब्जा, अड्यार में अनवरुद्दीन की हार, डूप्ले को फ्रांस वापस बुलाया जाना, बक्सर की लड़ाई, सिराजुद्दौला की मृत्यु।

5. **करने के लिए रुचिकर कार्य :**

(क) भारत के नक्शे पर निम्नलिखित स्थानों को दिखाओ :
पांडिचेरी, हैदराबाद, मद्रास, आर्काट, कलकत्ता, बक्सर, पलासी, चंदरनगर।
यह भी दिखाओ कि किन शहरों में फोर्ट सेंट जार्ज और फोर्ट विलियम बने थे।

(ख) भारत के नक्शे पर उन इलाकों को दिखाओ जो अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रभाव में आए।

अध्याय 4

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना

तुम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हो कि कर्नाटक में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं। पलासी और बक्सर की लड़ाइयों के संबंध में भी तुम जान चुके हो। इन सब लड़ाइयों ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का मार्ग खोल दिया। शुरू में अंग्रेजों की दिलचस्पी सिर्फ तीन इलाकों में थी। वे तीन इलाके थे—कलकत्ता के पास का उत्तर-पूर्वी समुद्र तट का इलाका, बंबई के पास का पश्चिमी समुद्र तट का इलाका और मद्रास के पास का दक्षिण-पूर्वी समुद्र तट का इलाका। 1765 ई० तक अंग्रेज बंगाल, बिहार, और उड़ीसा के वास्तविक शासक बन चुके थे। अवध का नवाब उन पर निर्भर हो चुका था। कर्नाटक के नवाब का अस्तित्व अंग्रेजों के ऊपर निर्भर था। किंतु पानीपत की लड़ाई के बाद मराठे अपनी खोई शक्ति प्राप्त करने में सफल हो गए थे। वे उत्तर की ओर बढ़ने लगे थे। मराठे ही उस समय प्रमुख भारतीय शक्ति थे। अंग्रेजों को उनसे अगले चार दशकों से भी अधिक समय तक मुकाबला करना पड़ा। दक्षिण भारत में मराठों के अतिरिक्त हैदराबाद तथा मैसूर राज्य भी काफी शक्तिशाली थे।

ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र का विस्तार (1765–1785 ई०)

तुम पहले पढ़ चुके हो कि बादशाह शाह आलम ने ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी दी थी। दीवानी मिलने के बाद अंग्रेजों ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में अपना शासन सुदृढ़ करना शुरू कर दिया। 1772 ई० में वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का गवर्नर बनाया गया। उसी वर्ष से कलकत्ता बंगाल की वास्तविक

राजधानी बन गया। 1773 ई० में वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बना। उसी काल में अंग्रेजों ने भारतीय राज्यों के झगड़ों में उलझना शुरू कर दिया।

सन 1772 ई० में अंग्रेजों ने अवध के नवाब के साथ एक संधि पर हस्ताक्षर किए। उस समय अवध के नवाब का रुहेलों के साथ संबंध बिगड़ चुका था। अंग्रेजों ने नवाब को रुहेलों के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया। बनारस को पहले ही स्वायत्त बना दिया गया था। राजा चेतसिंह के अधीन उसकी स्वायत्तता की पुष्टि भी कर दी गई थी। 1774 ई० में अवध के नवाब और अंग्रेजों के सैनिकों ने रुहेलों को हरा दिया किंतु तुरंत बाद एक रुहेला सरदार को रामपुर के छोटे इलाके के नवाब के रूप में मान लिया गया।

मराठों से लड़ाई

सन 1775 से 1782 ई० तक अंग्रेज मराठों से लड़ते रहे। लड़ाई के लिए अंग्रेजों को धन की जरूरत थी। हेस्टिंग्स ने बनारस के राजा चेतसिंह से हद से ज्यादा पैसे माँगे। चेतसिंह ने उतनी बड़ी धनराशि देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। हेस्टिंग्स ने नाराज होकर बनारस पर चढ़ाई कर दी। चेतसिंह हार गया। चेतसिंह की जगह दूसरे व्यक्ति को गद्दी पर बैठाया गया। उसने ब्रिटिश स्वार्थ की पूर्ति के लिए सब कुछ करने का वचन



ईस्ट इंडिया कंपनी के सिपाही।

दिया। हेस्टिंग्स ने पैसे के लिए ही अवध के नए नवाब की मदद से अवध की बेगमों के सारे व्यक्तिगत खजाने जबर्दस्ती हथिया लिए।

मराठो के साथ अंग्रेजों की पहली लड़ाई (प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध) तब शुरू हुई जब अंग्रेजों ने पेशवा-पद के लिए रघुनाथ राव के दावे का समर्थन किया। किंतु अत्यंत शक्तिशाली महादजी सिंधिया समेत अधिकतर मराठा सरदार तथा मराठा नेता नाना फड़नवीस युवा पेशवा—बाजीराव द्वितीय—के साथ थे। लड़ाई हार-जीत का फैसला हुए बिना ही 1782 ई० में खत्म हो गई।

मैसूर की लड़ाइयाँ

उसी समय अंग्रेज मैसूर राज्य के साथ लड़ाई मे उलझ गए थे। हैदर अली के अधीन मैसूर एक शक्तिशाली राज्य बन गया था। 1769 ई० में ब्रिटिश सैनिकों की हार के साथ मैसूर की पहली लड़ाई खत्म हो गई। दोनों पक्षों के बीच शांति-समझौता हो गया। दोनों पक्षों ने किसी तीसरी शक्ति के आक्रमण करने पर एक दूसरे की सहायता का वचन दिया। किंतु मैसूर पर मराठों के आक्रमण के समय अंग्रेजों ने मैसूर की कोई सहायता नही की। इस कारण मैसूर राज्य के साथ अंग्रेजों का संबंध बिगड़ गया। अगले तीस सालों तक मैसूर के शासक हैदर अली और उसका बेटा टीपू सुल्तान अंग्रेजों के

टीपू सुलतान की फौज का एक सिपाही।



दुश्मन बने रहे। कई बार अंग्रेजों के साथ उनकी लड़ाई भी हुई।

उसी समय अमरीकी स्वतंत्रता की लड़ाई शुरू हो गई थी। फ्रांस अमरीकी उपनिवेशों को उनकी स्वतंत्रता की लड़ाई में मदद कर रहा था। इस तरह ब्रिटेन और फ्रांस के बीच दुश्मनी थी. इसी कारण फ्रांस ने मराठों की सहायता की। नाराज होकर अंग्रेजों ने फ्रांसीसी बंदरगाह माहे पर कब्जा कर लिया। माहे बंदरगाह होकर ही यूरोप के साथ मैसूर का व्यापार होता था। इसीलिए 1780 ई० में हैदर अली ने अंग्रेजों पर हमला कर दिया। बस्सी के अधीन कुछ फ्रांसीसी सैनिकों ने हैदर अली की सहायता की। 1782 ई० में मराठों के साथ अंग्रेजों की लड़ाई खत्म हो गई। दूसरे साल ब्रिटेन और फ्रांस के बीच शांति-समझौता हो गया। समझौते के कारण फ्रांसीसियों ने मैसूर की सहायता करनी बंद कर दी। 1782 ई० में हैदर अली मर गया। किंतु उसके लड़के टीपू सुल्तान ने लड़ाई जारी रखी। द्वितीय अंग्रेज-मैसूर युद्ध 1784 ई० में खत्म हो गया और लड़ाई से पहले की स्थिति फिर से कायम कर दी गई।

इस तरह 1765 से 1785 ई० तक अंग्रेज भारत में अपना राज्य नही बढ़ा सके। किंतु वे अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाने में समर्थ हो गए। मराठों के विरुद्ध लड़ाई के दौरान नागपुर के भोंसले को तटस्थ रहने के लिए तैयार कर लिया गया था। उनके आग्रह पर मराठों और मैसूर के साथ लड़ाई के दौरान निजाम ने किसी का भी पक्ष नहीं लिया। निजाम और मैसूर राज्य अंग्रेजों को हराने में सफल हो सकते थे किंतु अंग्रेजों ने उन्हें एक नहीं होने दिया। अंग्रेजों मे भारतीय शासकों के आपसी झगड़ों को बढ़ाने के लिए भरपूर कोशिश की। अंग्रेज पश्चिम में यमुना तथा हैदराबाद और दक्षिण में काफी दूर तक अपना प्रभाव बढ़ाने में सफल हो गए।

हस्तक्षेप न करने की नीति (1785–1797 ई०)

अमरीकी स्वतंत्रता की लड़ाई में अंग्रेजों की हार के बाद ब्रिटेन में ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियों का कड़ा विरोध हुआ। ब्रिटिश सरकार ने तय किया कि कंपनी को भारतीय शासकों के पारस्परिक झगड़ों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। ब्रिटिश संसद (पार्ल्यामेंट) ने एक कानून बना कर भारत के ब्रिटिश इलाकों की शासन-प्रणाली की रूपरेखा रखी। वारेन हेस्टिंग्स ने बड़ी भारी व्यक्तिगत संपत्ति जमा कर ली थी। इंग्लैंड वापस लौटने पर उस पर संसद ने एक मुकद्दमा चलाया। वह मुकद्दमा 'महाभियोग' के नाम मे प्रसिद्ध है। उस पर भारतीयो के विरुद्ध नृशंस व्यवहार करने और भारतीय

शासकों से घूस लेने के अभियोग थे। अंत में उसे अभियोगों से मुक्त कर दिया गया किंतु उसके उत्तराधिकारियो ने बहुत दिनों तक उसकी नीतियो और काम के ढंग को नहीं अपनाया।

सन 1786 ई० में कार्नवालिस गवर्नर जनरल बना। वह अमरीकी स्वतंत्रता की लड़ाई में इंग्लैंड की ओर से लड़ चुका था। उसने हस्तक्षेप न करने की नीति अपनाई। उसी समय रुहेलों ने मुगल बादशाह शाह आलम पर आक्रमण किया और उसे अंधा बना दिया। बाद में उस पर मराठा सरदार महादजी सिंधिया का नियंत्रण हो गया। नाना फड़नवीस पेशवा का मंत्री था। उसके नेतृत्व में मराठों ने निजाम के ऊपर हमला किया। उधर नेपाल में गुरखे शक्तिशाली हो गए थे और बर्मी राज्य ने भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाया। पंजाब में अफगान आक्रमण का खतरा था। तो भी कार्नवालिस ने हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया।

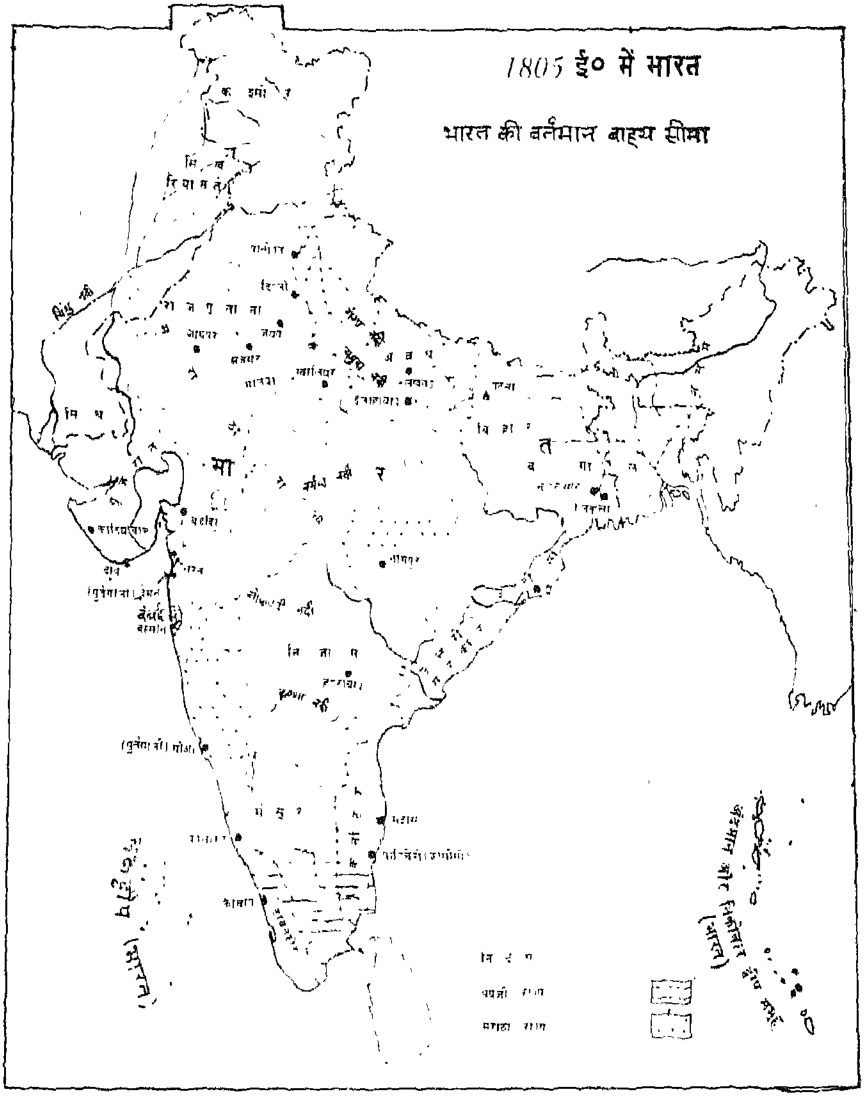
तृतीय मैसूर युद्ध

किंतु मैसूर के संबंध में हस्तक्षेप न करने की नीति नहीं अपनाई गई। टीपू सुल्तान ने कुर्ग और त्रावणकोर राज्यों पर हमले किए। अंग्रेज टीपू सुल्तान को दक्षिण भारत में अपनी शक्ति के विस्तार के मार्ग में सबसे बड़ा खतरा समझते थे। टीपू सुल्तान के प्रति अंग्रेजों की पुरानी शत्रुता के कारण मैसूर की तीसरी लड़ाई हुई। टीपू हार गया और उसे अपने काफी इलाके अंग्रेजों को देने पड़े।

इससे साफ हो गया कि ब्रिटिश हितों के अनुकूल न होने पर अंग्रेजों ने हस्तक्षेप न करने की नीति छोड़ दी। कार्नवालिस का उत्तराधिकारी भी इसी रास्ते पर चला। इसी प्रकार जब मराठों ने निजाम को हरा कर उसके इलाकों पर चौथ लगाया तब अंग्रेजों ने अपने वादे के अनुसार निजाम की सहायता नही की। किंतु जब 1797 ई० में उनके द्वारा मनोनीत अवध के नवाब का विरोध हुआ तो उन्होंने विरोधियों को कुचल दिया। इस काल के दौरान अंग्रेजों ने जीते गए इलाकों पर अपना कब्जा मजबूत किया। इस प्रकार अंग्रेजों ने विस्तार के नए दौर के लिए पूरी तैयारी कर ली।

1798 से 1809 ई० तक ब्रिटिश राज्य का विस्तार

वेल्सली 1798 ई० में गवर्नर जनरल बना और ब्रिटिश राज्य के विस्तार की एक नई लहर आई। तुम पहले अध्याय मे पढ़ चुके हो कि 1789 में फ्रांस में महान क्रांति हुई।


1805 ई० में भारत
भारत की वर्तमान बाह्य सीमा
सिंधु नदी
नर्मदा नदी
गोदावरी नदी
कृष्णा नदी
बड़ौदा
काठियावाड़
बंबई
मद्रास
(भारत)

फ्रांस की क्रांति के घोषित उद्देश्य थे—सब नागरिकों और राष्ट्रों की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। क्रांति के बाद यूरोप के अन्य देश फ्रांस के खिलाफ हो गए। 1792 ई० से ब्रिटेन और क्रांतिकारी फ्रांस के बीच लड़ाई शुरू हो गई। नेपोलियन बोनापार्ट के नेतृत्व में फ्रांस की सेना के मिस्र की ओर रवाना होने पर अंग्रेजों को भारत मे खतरे की आशंका हो गई। उस समय फ्रांसीसी निजाम को अपने प्रभाव मे लाने की कोशिश कर रहे थे। टीपू सुल्तान ने खुले आम फ्रांसीसी क्रांति के प्रति सहानुभूति प्रकट की। वह अंग्रेजों को भारत से निकालने के लिए फ्रांसीसी सहायता प्राप्त करने की कोशिश कर रहा था। किंतु दोनों महत्त्वपूर्ण भारतीय शक्तियाँ कमजोर हो गई थी। तीसरी लड़ाई के बाद मैसूर कमजोर हो गया था। आपसी झगड़ो और षड्यंत्रों के कारण मराठों की शक्ति भी घट गई थी।

सहायक व्यवस्था

नए इलाकों पर कब्जा करने के अतिरिक्त वेल्सली ने एक भारतीय शासक को दूसरे के विरुद्ध सैनिक सहायता देकर अपना प्रभाव बढ़ाने की वारेन हेस्टिंग्स की पुरानी नीति अपनाई। उसने पुरानी नीति का विकास किया जिससे ब्रिटिश प्रभाव अधिक स्थायी हो सके। कई भारतीय शासको ने 'सहायक संधि' स्वीकार की। उन्हें अपने क्षेत्र मे ब्रिटिश फौज रखनी पड़ती थी और उसका खर्च देना पड़ता था। खर्च के भुगतान के लिए कभी-कभी राज्य का एक भाग ही अंग्रेजो को दे देना पडता था। आमतौर से भारतीय शासक को अपने दरबार में एक ब्रिटिश अफसर रखना पड़ता था। उस ब्रिटिश अफसर को रेजिडेंट कहा जाता था। सतही तौर पर इस व्यवस्था ने भारतीय शासकों को सुरक्षा प्रदान की किंतु वस्तुत: उन्होंने अपनी स्वतंत्रता खो दी।

पहली सहायक संधि निजाम के साथ हुई। दूसरी संधि अवध के नवाब के साथ हुई। दोनो शासकों ने अपने राज्य के हिस्से अंग्रेजों को दे दिए।

टीपू सुल्तान की हार

सन 1799 ई० मे टीपू सुल्तान हार गया। अंग्रेजों को डर था कि शायद फ्रांसीसी सैनिक टीपू की सहायता के लिए आ जाएँ। किंतु ऐसा नही हुआ। टीपू सुल्तान लड़ता हुआ मारा गया। इस प्रकार ब्रिटिश शक्ति का उसका जीवन पर्यंत प्रतिरोध खत्म हो गया। जिस राजा को हटाकर हैदर अली ने मैसूर पर कब्जा कर लिया था उसी राजा के एक वंशज को मैसूर की गद्दी पर बैठाया गया। इसने अंग्रेजों के साथ एक संधि की।

संधि के अनुसार उसे अंग्रेजों के ऊपर पूरी तरह निर्भर बना दिया गया। कर्नाटक को भी अंग्रेजों ने अपने हाथों में ले लिया और नवाब को पेंशन दे दी गई।

मराठों के साथ संबंध

मैसूर और कर्नाटक के बाद वेल्सली ने मराठों की ओर ध्यान दिया। मराठों के आपसी झगड़ों की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। वे झगड़े कभी खत्म नहीं हुए। महादजी सिंधिया और नाना फड़नवीस योग्य नेता थे। पारस्परिक झगड़ों के बावजूद वे मराठा शक्ति को बनाए रख सके। किंतु उनके मरने के बाद स्थिति तेजी से बिगड़ गई। 1801–1802 ई० में होल्कर और सिंधिया के बीच लड़ाई हुई। नौजवान पेशवा बाजी राव द्वितीय ने अंग्रेजों से संरक्षण माँगा। उसने उनके साथ सहायक संधि की। बेसीन की संधि के अनुसार 1803 में अंग्रेज सैनिकों ने पेशवा की राजधानी पूना को होल्कर के कब्जे से छीन लिया। होल्कर को अंग्रेजों ने पूना से भगा दिया। अब सिंधिया और भोंसले एकजुट होकर आगे बढ़े किंतु तब तक काफी विलब हो चुका था। मराठों की सेनाएँ उत्तर और दक्षिण दोनों जगहों में हार गईं। दिल्ली को अंग्रेजों ने सिंधिया के नियंत्रण से अपने हाथों में ले लिया। अंधा बादशाह शाह आलम अंत में उनकी हिरासत में आ गया। भोंसले और सिंधिया ने अंग्रेजों के साथ संधि कर ली और अपने राज्य के काफी इलाके अंग्रेजों को दे दिए। उन्होंने सहायक संधि की शर्तों को मान लिया। शर्तों के अनुसार उनके दरबारों में रेजिडेंट नियुक्त किए गए। मराठों के विभिन्न गुटों के झगड़े चलते रहे। ब्रिटिश रेजिडेंट झगड़ों को बढ़ाने में सहायता करते रहे। इस प्रकार हर मराठा राज्य पर अंग्रेजों ने अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू कर दिया और मराठा राज्य टूटने लगे।

जब वेल्सली को इंग्लैंड वापस बुलाया गया तब तक होल्कर डटा रहा। लंदन में कंपनी के मालिक युद्ध और विस्तार पर होने वाले भारी खर्च के पक्ष में नही थे। खर्च के कारण उनका मुनाफा कम हो जाता था। उनके दृष्टिकोण को देखते हुए होल्कर के साथ शांति-समझौता कर लिया गया। इन सारी लड़ाइयों के दौरान रणजीत सिंह का राज्य स्वतंत्र रहा और मजबूत बनता गया। वेल्सली के जाने के बाद कुछ वर्षों तक अंग्रेजों ने अपना विस्तार रोक दिया। वे अपने साम्राज्य को दृढ़ बनाने में लग गए। किंतु जल्द ही विस्तार का दूसरा दौर शुरू हो गया।

1809 से 1848 ई० तक ब्रिटिश राज्य का विस्तार

तुम ऊपर पढ़ चुके हो कि फ्रांस की क्रांति के बाद इंग्लैंड और फ्रांस के बीच लड़ाई

शुरू हुई थी। वह लड़ाई चल ही रही थी कि मिंटो को गवर्नर जनरल बनाकर भारत भेजा गया। उसे उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व भारत में ब्रिटिश राज्य की रक्षा करने के लिए कहा गया। इस आदेश के कारण भारत और पड़ोसी देशों में ब्रिटिश शक्ति का विस्तार हुआ। जावा और सुमात्रा को अंग्रेजों ने जीत लिया। उस समय जावा और सुमात्रा हालैंड वासियों के कब्जे में थे। 1815 ई० में फ्रांस की हार के बाद इन टापुओं को हालैंड वालों को फिर दे दिया गया। किंतु अंग्रेजों ने सिंगापुर पर कब्जा कर लिया और वे सारवाक (वर्तमान मलेशिया का एक भाग) में घुस गए। अंग्रेजी राज्य के इस विस्तार से उन्हें काफी लाभ हुआ। उन्हें दक्षिण-पूर्व एशिया के व्यापार पर नियंत्रण करने में सहायता मिली। उस क्षेत्र में ब्रिटेन नौसैनिक दृष्टि से प्रमुख हो गया।

अंग्रेजों ने अफगानिस्तान, ईरान और भारत के उत्तर-पश्चिमी हिस्सों में अपना प्रभाव बढ़ाने की कोशिश की। वे सतलज नदी तक अपनी शक्ति बढ़ाने में सफल हो गए। उन्होंने नदी के पूर्व की ओर रणजीत सिंह का विस्तार रोक दिया।

मिंटो के बाद लार्ड हेस्टिंग्स (वारेन हेस्टिंग्स से भिन्न व्यक्ति) गवर्नर जनरल बना। उसने नेपाल के गुरखों से लड़ाई की। नेपाली हार गए और उन्हें अपने राज्य के इलाके अंग्रेजों को देने पड़े। नेपाल की राजधानी काठमांडू में एक ब्रिटिश रेजिडेंट भी रहने लगा।

19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में पिंडारी लुटेरे सामने आए। वे देश के कई हिस्सों में लूट-मार कर रहे थे। अंग्रेजों के साथ सहायक संधि के बाद भारतीय शासकों ने अपने अनेक सैनिकों को बरखास्त कर दिया। बरखास्त सैनिक पिंडारियों के गिरोहों में शामिल हो गए। अंग्रेजों ने मराठा सेनाओं का इस्तेमाल पिंडारियों के खिलाफ करने का निर्णय किया। किंतु ऐसा नहीं हो सका। कई मराठा नेता पिंडारियों को सहायता देने के पक्ष में थे। इसलिए जल्द ही पिंडारियों के खिलाफ लड़ाई तृतीय अंग्रेज-मराठा-युद्ध बन गई। पिंडारी हार गए। एक पिंडारी को पूर्वी राजस्थान के एक छोटे राज्य टोंक का नवाब बना दिया गया। तृतीय अंग्रेज-मराठा-युद्ध का नतीजा मराठों के लिए काफी बुरा हुआ। पेशवा को पेंशन देकर उत्तर भारत में निर्वासित कर दिया गया। उसकी मृत्यु के बाद उसका लड़का नाना साहब पेशवा के विशेषधिकारों के लिए दावा करता रहा। कुछ ही वर्षों में पेशवा के इलाके बंबई प्रेसिडेंसी के अंतर्गत आ गए। इस प्रकार वे ब्रिटिश राज्य के अंग बन गए। अन्य मराठा सरदारों ने भी अपने अधिकांश इलाके खो दिए। उनकी सेनाएँ विघटित कर दी गईं। वे सब सरदार ब्रिटिश रेजिडेंटों की अधीनता

मे आ गए। तुरंत ही राजपूत राज्य भी ब्रिटिश प्रभाव मे आ गए। वे सब सहायक संधि मे शामिल हो गए।

बर्मा अफगानिस्तान और सिंध

सन 1824 से 1826 ई० तक अंग्रेजो ने बर्मी साम्राज्य के खिलाफ लड़ाई की। बर्मी लोग असम मे अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे। उनकी हार के बाद असम अंग्रेजो के नियंत्रण मे आ गया। बर्मा को अपना द्वार ब्रिटिश व्यापार के लिए खोल देना पड़ा। बर्मा में ब्रिटिश रेजिडेंट रहने लगा।

अफगानिस्तान पर भी अंग्रेजो ने चढ़ाई की किन्तु वे उसे जीत न सके। अंग्रेजों को ईरान और अफगानिस्तान होकर रूसी आक्रमण का खतरा था। उन्हे अपने भारतीय इलाको को बचाने की चिंता थी। उन्होंने अफगानिस्तान के शासक दोस्त मुहम्मद को हटाने के लिए फौज भेजी। इसमें वे बुरी तरह असफल रहे। अफगान अपनी स्वतंत्रता कायम रखने में सफल रहे। दोस्त मुहम्मद का घराना 1929 ई० तक वहां सत्तारूढ़ रहा।

अंग्रेजो ने सिंध मे अपना प्रभाव जमा लिया था। सिंध के अमीरों ने उनसे सहायक संधि कर ली थी। किन्तु 1843 ई० में सिंध जीत लिया गया। उसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिला दिया गया।

रणजीत सिंह के अधीन पंजाब

उस समय तक सिर्फ एक ही प्रमुख भारतीय शक्ति स्वतंत्र थी। वह शक्ति थी—रणजीत सिंह के अधीन पंजाब। तुम पढ़ चुके हो कि बंदा की मृत्यु के बाद सिक्खों का संगठन मिसलों मे हुआ और पंजाब में वास्तविक सत्ता इन मिसलों के ही पास थी। रणजीत सिंह एक छोटे सरदार के रूप में 1792 ई० में सत्तारूढ़ हुआ था। उसने 1798 ई० मे सतलज नदी के पश्चिम में सिक्ख मिसलों की एकता स्थापित की। अफगान शासक जमान शाह का उसने सफलतापूर्वक मुकाबला किया। इस सफलता ने उसे एक शक्तिशाली शासक बना दिया। सतलज नदी के पश्चिम के सारे मिसलों को उसने अपने अधीन कर लिया। 1801 ई० मे इन मिसलों ने उसे पंजाब का महाराजा मान लिया। उसने शीघ्र ही अपनी सत्ता का विस्तार पेशावर, मुल्तान, कश्मीर, काँगड़ा और अन्य पहाड़ी राज्यों समेत बहुत बड़े क्षेत्र मे किया। उसने एक बहुत शक्तिशाली सेना बनाई। उसने अपनी सेना को आधुनिक ढंग से संगठित और सुसज्जित करने के लिए यूरोपीय लोगों को रखा। उसने

पंजाब में कुशल प्रशासन स्थापित करने का प्रयास किया। उसे अपने हिंदू, मुसलमान और सिक्ख अफसरों की पूरी निष्ठा और सहायता प्राप्त थी। उसके यहाँ अफसरों की नियुक्ति में कोई धार्मिक भेदभाव नहीं होता था। शक्तिशाली होने के कारण ही उसे अंग्रेज प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते थे। अंग्रेजों ने उसके साथ 1809 ई० में एक मित्रतापूर्ण संधि की। किंतु 1839 ई० में महाराजा रणजीत सिंह के मरने पर स्थिति तुरंत बदल गई।

पंजाब का ब्रिटिश साम्राज्य में विलयन

रणजीत सिंह के शासन के दौरान ही उसके राज्य के विस्तार को अंग्रेजों ने रोक दिया था। सतलज नदी के पूर्व के सिक्ख राज्य ब्रिटिश प्रभाव में आ गए थे। अंग्रेजों ने सिंध पर अपना नियंत्रण करना भी शुरू कर दिया था। उन्होंने 1843 ई० में सिंध को अपने साम्राज्य में मिला दिया। अफगानिस्तान में अंग्रेजों की दिलचस्पी बढ़ गई थी। इसलिए अंग्रेजों और पंजाब के शक्तिशाली राज्य के बीच संघर्ष अवश्यंभावी हो गया।

रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पंजाब में राजनीतिक अस्थिरता आ गई। सेना में सिक्खों की प्रधानता हो गई। उन्हें खालसा कहा जाता था। खालसा ने राज्य के मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। वह गद्दी के अधिकारी का भी फैसला करने लगा। अंग्रेजों ने पंजाब की सीमाओं पर सेना को जमा करना शुरू कर दिया। रणजीत सिंह के बाद उसका बेटा दलीप सिंह गद्दी पर बैठा था। किंतु उसकी माँ रानी जिंदन अपने कृपापात्र अफसरों की सहायता से राजकाज करती थी। उन अफसरों ने एक तरफ अंग्रेजों के साथ षड्यंत्र किया और दूसरी ओर खालसा को अंग्रेजों पर आक्रमण के लिए उकसाया। 1845 ई० में पहला अंग्रेज-सिक्ख युद्ध शुरू हुआ। लड़ाई में खालसा की हार हुई। पंजाब ब्रिटिश संरक्षण में आ गया किंतु दलीप सिंह गद्दी पर बना रहा। अंग्रेजों ने गुलाब सिंह को जम्मू और कश्मीर का महाराजा बना दिया। उन्होंने पंजाब के प्रशासन के लिए सिक्ख और अंग्रेज अफसरों की नियुक्ति की।

सन 1848 ई० में पंजाब में अंग्रेजों के खिलाफ कई विद्रोह हुए। उसके बाद द्वितीय अंग्रेज-सिक्ख युद्ध हुआ। पंजाब की सेनाएँ बहादुरी से लड़ी किंतु हार गई। पंजाब को अंग्रेजों ने अपने राज्य में मिला दिया। इस तरह रणजीत सिंह द्वारा स्थापित शक्तिशाली राज्य खत्म हो गया।

ब्रिटिश प्रभुसत्ता की स्थापना (1848–1856 ई०)

पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने के समय डलहौजी गवर्नर जनरल था।

उसने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ करने तथा बढ़ाने के लिए प्रयास किया। पंजाब को अड्डा बनाकर अंग्रेजों ने अपना नियंत्रण पेशावर और उत्तर-पश्चिम में पठान कबीलों के इलाकों तक बढ़ाया। डलहौजी के उत्तराधिकारी कैनिंग के शासन-काल में अंग्रेजों ने ईरान के साथ लड़ाई की। उनका उद्देश्य अफगानिस्तान की मित्रता प्राप्त करने के साथ ही ईरान की खाड़ी के क्षेत्र पर नियंत्रण करना था। किंतु 1857 ई० के विद्रोह ने ईरान की अखंडता की रक्षा की।

डलहौजी ने बर्मा का एक बहुत बड़ा भाग ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया था।

इस तरह लगभग 1856 ई० तक भारत पर अंग्रेजों ने पूरी तरह कब्जा कर लिया था। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य पूरी तरह स्थापित हो चुका था। देश का अधिकांश भाग प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन में था। कई क्षेत्र कहने भर को ही भारतीय शासकों के अधीन थे। वे शासक पूरी तरह अंग्रेजों के आश्रित थे। वे पूरी तरह उनकी दया पर निर्भर थे। पुरानी राजनीतिक व्यवस्था नष्ट कर दी गई और साथ ही भारतीय शासकों के पुराने आपसी झगड़े और संघर्ष खत्म हो गए। तुम देख चुके हो कि अठारहवीं शताब्दी के दौरान भारतीय शासक प्रतिद्वंद्विता और झगड़ों में उलझे रहते थे।

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज सर्वोच्च शक्ति बन गए।

सहायक व्यवस्था और लय-नीति

ब्रिटिश प्रभुत्व की स्थापना दो तरीकों से हुई। वे दो तरीके थे---प्रत्यक्ष रूप से साम्राज्य में मिलाना, और भारतीय राज्यों को सहायक व्यवस्था के अंतर्गत लाना। सहायक व्यवस्था के द्वारा राज्यों को बाद में साम्राज्य में मिला लिया जाता था। मैसूर और सिंध को सीधे तौर पर राज्य में मिला लिया गया। किंतु बहुधा सहायक व्यवस्था को ही काम में लाया गया। उसके अनेक फायदे थे। भारतीय शासक ब्रिटिश सैनिकों का खर्च देते थे। अंग्रेजों के ऊपर उन राज्यों के प्रशासन या कानून और व्यवस्था की कोई जिम्मेदारी नही थी। उस व्यवस्था के अंतर्गत निर्भर राज्यों की जनता को काफी कष्ट थे। जब तक भारतीय शासक खर्च देते थे तब तक उनको ब्रिटिश सैनिक-समर्थन मिलता था। ब्रिटिश सैनिक-समर्थन पाकर भारतीय शासक प्रशासन की ओर कोई ध्यान नही देते थे। ब्रिटिश सेना का खर्च देने के लिए भारतीय शासकों ने किसानों पर कर बढ़ा दिए। स्थानीय अफसरों और जमींदारों ने लूटखसोट कर काफी संपत्ति जमा कर ली। फलस्वरूप कई राज्यो में वित्तीय संकट आ गया। कानून और व्यवस्था खत्म हो गई। जिस किसी

राज्य में ऐसा हुआ उसे अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार सहायक व्यवस्था ने राज्यों को आगे चलकर ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाए जाने की स्थिति पैदा कर दी।

भारतीय राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने के लिए अन्य बहाने भी ढूँढ़ निकाले गए। उन्ही के अनुकूल नीतियाँ बनाई गई। इनमें एक नीति थी 'लय-नीति'। डलहौजी के शासन-काल (1848–1856 ई०) मे यह सिद्धांत बार-बार अपनाया गया। पुरानी भारतीय रीति के अनुसार अगर किसी व्यक्ति का अपना स्वाभाविक उत्तराधिकारी—पुत्र—नही होता था, तो वह अपने किसी निकट संबंधी को पुत्र के रूप मे गोद ले लेता था। वही उसका उत्तराधिकारी होता था। जब भारतीय शासक अंग्रेजों के ऊपर निर्भर हो गए तब अंग्रेजों ने गोद लेने की अनुमति देने का अधिकार अपने हाथों में ले लिया। जो भारतीय शासक पुत्र न होने पर किसी रिश्तेदार को गोद लेना चाहता था उसे अंग्रेजों से अनुमति लेनी पड़ती थी। अनुमति न मिलने पर शासक की मृत्यु के बाद उसका राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला लिया जाता था। इस तरह डलहौजी के गर्वनर बनने के पहले भी कई भारतीय राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया था।

डलहौजी के शासन-काल में कई भारतीय शासक बिना पुत्र मर गए। तब इस सिद्धात को कड़ाई से लागू किया गया और उनके राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। ऐसे राज्यों में झाँसी, नागपुर और सतना शामिल थे। पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब को पेंशन देने से इंकार कर दिया गया। तुम पहले पढ चुके हो कि पेशवा को अंग्रेजों ने पेंशन देकर उत्तर भारत में निर्वासित कर दिया था। इसी तरह कर्नाटक के नवाब की मृत्यु के बाद उसके रिश्तेदार को अंग्रेजों से पेंशन मिलती थी। लय-नीति ने एक ओर भारतीय राज्यों में भारतीय शासकों और अंग्रेजों की दुहरी सत्ता समाप्त कर दी, दूसरी ओर उसने भारतीय शासकों में यह डर पैदा कर दिया कि पुत्रहीन मरने पर अनेक राज घराने समाप्त हो जाएँगे।

सन 1856 ई० में अवध के आखिरी नवाब वाजिद अली शाह को गद्दी से हटा दिए जाने के कारण भारतीय शासकों का डर और भी बढ़ गया। वाजिद अली शाह को गद्दी छोड़ने के लिए बाध्य किया गया था। बाद में उसे कलकत्ता में रखा गया। उसके राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। अवध के किसानों पर भारी कर लगाए गए। ब्रिटिश अफसरों ने अवध के सरदारों के जमीन संबंधी अधिकारों की जाँच-पड़ताल शुरू कर दी। इससे असंतोष और अधिक बढ़ गया।

इस प्रकार ब्रिटिश शक्ति को भारत में चुनौती देने वाली मुकाबले की कोई शक्ति नहीं रह गई, किंतु साथ ही उसके प्रति लोगों का असंतोष भी काफी बढ़ गया। असंतोष के फलस्वरूप 1857 ई० में बड़ा भारी विद्रोह हो गया। इसी बीच अंग्रेजों ने एक नई प्रशासन-व्यवस्था स्थापित की। ब्रिटिश शासन के फलस्वरूप भारतीय अर्थ-व्यवस्था, समाज और संस्कृति में अनेक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों का अध्ययन हम आगे चलकर करेंगे। अभी हम यह देखेंगे कि भारत में पुरानी राजनीतिक व्यवस्था का पतन क्यों हुआ।

भारतीय राज्यों की हार के कारण

तुम पहले देख चुके हो कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेजों ने जिन भारतीय राज्यों को खत्म कर दिया उनका उदय मुगल साम्राज्य के विघटन के साथ हुआ। वस्तुतः स्वतंत्र होने पर भी ये राज्य मुगल साम्राज्य की प्रभुसत्ता को नाम के लिए मानते रहे। अंग्रेजों के दिल्ली पर कब्जा कर लेने के बाद यह प्रभुसत्ता कहने के लिए भी नहीं रह गई। जिन राज्यों का उदय हुआ था उनके बीच कोई समान बात नहीं थी। हर राज्य दूसरों को हानि पहुँचा कर अपना विस्तार करना चाहता था। एकता के अभाव में भारतीय राज्य आसानी से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की विस्तारवादी नीति के शिकार हो गए। कंपनी के अफसरों में लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एकता थी। अंग्रेजों की दूरवाली चौकियाँ भी संयुक्त नेतृत्व में थीं। उद्देश्य की दृष्टि से एकता ने अंग्रेजों को 1757 ई० से देश के राजनीतिक मामलों में एक केंद्रीय शक्ति बना दिया, किंतु यह केंद्रीय शक्ति किसी भारतीय राज्य के मुकाबले तभी विजयी हुई जब उसकी आंतरिक कमजोरियाँ काबू से बाहर हो गईं। इस प्रकार किसी भारतीय राज्य की स्वतंत्रता खत्म होने का प्रमुख कारण आंतरिक एकता का अभाव था। किसी भारतीय राज्य की आंतरिक एकता खत्म करने में अंग्रेजों का कम हाथ नहीं था। तुम पिछले अध्याय में देख चुके हो कि एकता का अभाव होने से बंगाल में क्या हुआ। संक्षेप में अंग्रेजों की नीति थी, "फूट डालो और शासन करो"। ब्रिटिश अफसरों ने इस नीति का बड़ी कुशलता और सफलता के साथ पालन किया।

फूट डालने और शासन करने की नीति भारतीय राज्यों के पतन का एक महत्त्वपूर्ण और तात्कालिक कारण थी। किंतु यह मूल कारण नहीं थी। वास्तविक कारण था— स्थिर और कुशल राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने में भारतीय शासकों की असमर्थता।

ऐसी व्यवस्था के द्वारा ही वे प्रजा की निष्ठा प्राप्त कर सकते थे। इसीलिए भारतीय राज्य ढहते हुए मुगल साम्राज्य का स्थान नहीं ले सके। मराठों के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है। पानीपत की तीसरी लड़ाई में मुँह की खाने के बाद भी मराठों ने अपनी शक्ति फिर प्राप्त कर ली थी। अठारहवीं सदी के आठवें दशक के दौरान भारत में उन्हें अंग्रेजों का एकमात्र शत्रु समझा जाता था। किंतु मराठा फौजों के नेता लगातार एक दूसरे के साथ झगड़ों में उलझे रहे। आपसी झगड़ों के कारण अंग्रेज उन्हें एक-एक कर हराने में सफल हो गए। पंजाब में रणजीत सिंह ने एक शक्तिशाली राज्य बनाया। उसने हिंदुओं, मुसलमानों और सिक्खों को एकता के सूत्र में बाँधा। किंतु वह ऐसी राजनीतिक व्यवस्था कायम न कर सका जो उसके बाद भी उसके राज्य को बनाए रख सकती। उसकी मृत्यु के बाद उसका राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और फूट डालने और शासन करने की ब्रिटिश नीति सफल हो गई। आंतरिक कमजोरियों तथा अधिक शक्तिशाली पड़ोसियों के आक्रमण के भय के कारण कई राज्य अंग्रेजों के संरक्षण में चले गए। अंग्रेजों ने सहायक व्यवस्था के अंतर्गत संरक्षण दिया। हैदराबाद का उदाहरण तुम्हारे सामने है।

भारतीय राज्यों की कमजोरियों को अर्थव्यवस्था और प्राविधिक ज्ञान के क्षेत्र के पिछड़ेपन ने और अधिक उभार दिया। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति होने के बाद यह पिछड़ापन दिन-प्रति-दिन भारतीय राज्यों की कमजोरी का अत्यंत महत्त्वपूर्ण कारण बनता गया। वारेन हेस्टिंग्स के समय में मैसूर राज्य की फौज या मराठा सेना कंपनी की सेना के साथ ताकत में बराबर थी। किंतु अठारहवीं शताब्दी के अंत तक ब्रिटिश सेना में अधिक अनुशासन आ गया था। उसके पास अच्छा तोपखाना भी हो गया था। औद्योगिक क्रांति ने अंग्रेजों की ताकत बढ़ा दी। औद्योगिक क्रांति के कारण व्यापार और उद्योग का विकास हुआ। यांत्रिक शक्ति का विकास और प्रयोग संभव हो गया। इतना ही नहीं, ब्रिटेन की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था बदल गई। ब्रिटेन की शक्ति संसार में काफी बढ़ गई। ब्रिटेन की बढ़ती हुई शक्ति को देखते हुए भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार को रोकना आसान नहीं था। किंतु आपसी झगड़ों और आंतरिक कमजोरियों के कारण भारतीय राज्यों ने अंग्रेजों का काम आसान कर दिया। और 1856 ई० तक भारत पूरी तरह गुलाम बन गया।

अभ्यास

1. पारिभाषिक शब्द जिनको तुम्हें जानना चाहिए :

सहायक व्यवस्था—ब्रिटिश गवर्नर जनरल वेल्सली द्वारा लागू की गई संधि-व्यवस्था जिसके अन्तर्गत अंग्रेज भारतीय राज्यों से समझौता कर उनके मामलों में दखल देने लगे। उन राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल न करके भी उन्हें अपनी अधीनता में रखने में अंग्रेज सफल हो गए।

लय-नीति—इस सिद्धान्त के जरिए ब्रिटिश सरकार ने उन भारतीय शासकों के इलाकों को हड़प लिया जिनकी मृत्यु के बाद कोई स्वाभाविक उत्तराधिकारी नहीं रहा।

2. नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर दो :

(i) 1772 ई० में वारेन हेस्टिंग्स के गवर्नर बनने के समय भारत की राजनीतिक स्थिति कैसी थी ?

(ii) भारत में हस्तक्षेप न करने की ब्रिटिश नीति का क्या मतलब था ? अंग्रेजों ने जब-तब यह नीति क्यों अपनाई ?

(iii) क्यों और किन परिस्थितियों में भारतीय शासक अंग्रेजों के साथ सहायक संधियों में शामिल हो गए ?

(iv) अंग्रेजों और मैसूर के राजाओं के बीच हुए झगड़ों पर प्रकाश डालो।

(v) मराठों के इलाकों को अंग्रेजों ने कैसे जीत लिया ?

(vi) अठारहवीं शताब्दी के अंत से लेकर 1849 ई. तक पंजाब के राजनीतिक इतिहास में क्या मुख्य परिवर्तन हुए ?

(vii) उन विभिन्न तरीकों के संबंध में समझाओ जिनके द्वारा अंग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना की और उसका विस्तार किया।

3. 1765 और 1856 ई० के बीच की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के संबंध में कुछ कथन नीचे दिए गए हैं। प्रत्येक कथन के आगे वारेन हेस्टिंग्स, वेल्सली, कार्नवालिस, लार्ड हेस्टिंग्स और डलहौजी में से उसका नाम लिखो जिसके शासन-काल में घटना घटी हो।

—तीसरा अंग्रेज-मैसूर युद्ध।

—पहला अंग्रेज-मैसूर युद्ध।

—टीपू सुल्तान की हार और मृत्यु।

—पिंडारियों के खिलाफ लड़ाई।

—बसीन की संधि।

—रुहेलों के खिलाफ लड़ाई।

—दूसरा अंग्रेज-सिक्ख युद्ध।

—अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल करना।

करने के लिए रुचिकर कार्य :

अंग्रेजों ने अपने भारतीय साम्राज्य में कतिपय इलाकों को मिला लिया। भारतीय राज्यों के साथ सहायक संधि के द्वारा कतिपय अन्य इलाकों पर उनका नियंत्रण हो गया। 1818 ई. में सीधे तौर पर और अप्रत्यक्ष रूप में अंग्रेजों के नियंत्रण में जो इलाके थे उनकी सूची बनाओ। उन्हें भारत के मानचित्र पर दो भिन्न रंगों में दिखाओ।

अध्याय 5

प्रशासनिक ढाँचा

तुम देख चुके हो कि सारे भारत पर अधिकार करने में अंग्रेजों को सौ वर्षों से भी कम का समय लगा। 1857 ई० में बंगाल में अपने पैर जमाने के बाद उन्होंने अपने राज्य का निरंतर विस्तार जारी रखा। 1849 ई० में पंजाब पर अधिकार करने के बाद अंग्रेज हमारे देश की सबसे बड़ी शक्ति बन गए। अंग्रेजी राज के विस्तार में ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने प्रमुख भूमिका अदा की और सेना ने भारत पर ब्रिटिश प्रभुत्व को बनाए रखने में बड़ी सहायता की।

कंपनी की सेना में भारतीय सिपाही बहुमत में थे। अंग्रेजी राज के विस्तार के साथ सेना का आकार भी बढ़ता गया। भारत पर अंग्रेजों का अधिकार होने के समय तक सिपाहियों की संख्या लगभग 3 लाख हो गई थी। एक अनुशासित और स्वामिभक्त सेना संगठित करने में कंपनी को कोई कठिनाई नहीं हुई। सेना के सिपाहियों को नियमित वेतन देने की व्यवस्था की गई। सेना को नवीनतम हथियारों के प्रयोग की पूरी शिक्षा दी गई। भारतीय शासकों के सिपाहियों को ये सुविधाएँ नहीं मिली थी। युद्ध में लगातार सफलता ने कंपनी की सेना की प्रतिष्ठा बढ़ा दी थी जिससे उसकी फौज में भर्ती होने के लिए नए लोग आने लगे। किंतु कंपनी की सेना के सारे अफसर यूरोपीय थे। ब्रिटेन की शाही रेजिमेंट का एक हिस्सा भी भारत में रहता था।

कंपनी के भारतीय सैनिकों की कुशलता की तारीफ होने लगी। किंतु तब भी वास्तव में वे भाड़े के सैनिक मात्र थे। किसी राष्ट्रीय सेना के सैनिकों के समान उनको कोई प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त थी। न ही उनमें निष्ठा और स्वाभिमान था। उनके लिए सेना में उन्नति के मार्ग भी नहीं खुले थे। इन कारणों से कई बार उन्हें पेशेवर निष्ठा भुलाकर विद्रोह करने

के लिए बढ़ावा दिया। इस प्रकार का सबसे बड़ा विद्रोह 1857 ई० में हुआ जिसके संबंध में तुम सातवें अध्याय में पढ़ोगे।

यहाँ तुम एक प्रश्न पूछ सकते हो। जिन इलाकों को ब्रिटिश सेना ने जीता उन पर अंग्रेजों ने किस प्रकार शासन किया? कंपनी के अफसरों ने प्रशासन की नई व्यवस्थाएँ स्थापित की। इसके लिए लंदन की ब्रिटिश सरकार से बहुधा निर्देश मिलने लगे।

कंपनी के अधिकारियों का कुशासन

कंपनी के वाणिज्य अधिकारी ही शुरू में ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी थे। शुरू में उनका काम राजस्व की वसूली था। साथ ही वे कुछ अन्य असैनिक कार्य भी करते थे। कंपनी ने इन जिम्मेदारियों को बक्सर की लड़ाई के बाद अपने ऊपर ले लिया था। तुम्हें याद होगा कि बक्सर की लड़ाई के बाद मुगल बादशाह शाह आलम ने कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी दी थी। इस प्रकार कंपनी को राजस्व-वसूली तथा उससे संबंधित मामलों की देख-रेख के अधिकार मिले थे। बदले में कंपनी ने बादशाह को 26 लाख रुपए प्रति वर्ष देने का वचन दिया था। दुर्भाग्यवश कंपनी के अफसर दीवानी का प्रबंध ठीक तरह से करने में असफल हो गए। उन्हें भारतीय प्रशासन की समस्याएँ और तरीकों की जानकारी नहीं थी। इससे भी खतरनाक बात थी, पैसे के लिए उनका लालच। कंपनी को समृद्ध बनाने और अपने लिए धन बटोरने के लिए उन्होंने बंगाल को खूब लूटा-खसोटा। बंगाल लगभग बर्बाद हो गया। किसानों और जमींदारों से उन्होंने उनकी क्षमता से अधिक राजस्व की माँग की। कंपनी के सौदागर के रूप में वे स्थानीय छोटे व्यापारियों और दस्तकारों को अपना माल कम कीमतों पर बेचने के लिए बाध्य करने लगे। इन कारणों से देहात के लोग राजस्व वसूल करने वाले नए अधिकारियों के भय से काँपने लगे।

अपनी स्थिति का फायदा उठाकर कंपनी के अफसरों ने निजी धन जमा कर लिया। नौकरी से अवकाश लेकर इंग्लैंड जाने पर वे विलास की वस्तुओं पर दिल खोलकर खर्च करने लगे। इस कारण इंग्लैंड के लोग उन्हें "नवाब" कह कर पुकारने लगे। दूसरी ओर भारत में आम लोगों की हालत अधिक बिगड़ गई। संकट के समय के लिए वे कोई बचत नहीं कर पाते थे। 1770-71 ई० में वर्षा न होने के कारण भारी अकाल पड़ा। उस समय आम लोगों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई। बंगाल की एक तिहाई जनसंख्या मर गई। किन्तु प्रशासन और व्यवसाय के कार्यों में कंपनी के कुछ भारतीय एजेंट थे। वे भारतीय

धनी हो गए। कलकत्ता और मुर्शिदाबाद के सेठों ने कंपनी के अफसरों को पैसे उधार दिए थे। सेठों ने कंपनी के अधिकारियों की कृपा से काफी धन बटोरा। कंपनी को राजस्व-वसूली में सहायता देने वाले भारतीय भी निजी धन जमा करने में सफल हो गए।

रेगुलेटिंग ऐक्ट

बंगाल में कुशासन के कारण अव्यवस्था हो गई थी। ब्रिटेन में लोग इस अव्यवस्था के कारण चिंतित हो गए। उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के मामलों की जाँच के लिए ब्रिटिश संसद को मजबूर किया। जाँच से कंपनी के बड़े अधिकारियों की काली करतूतें सामने आईं। कंपनी के बड़े अधिकारियों ने भारतीय जनता के हितों का ध्यान नहीं रखा था। उस समय कंपनी वित्तीय संकट में थी। उसने ब्रिटिश सरकार से 10 लाख पौंड का कर्ज माँगा। ब्रिटिश सरकार ने भारत में कंपनी के कार्यों पर नजर रखना आवश्यक समझा। इसी उद्देश्य से 1773 ई० का रेगुलेटिंग ऐक्ट बना। भारत के मामलों में ब्रिटिश सरकार का यह पहला सीधा हस्तक्षेप था। ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य कंपनी के हाथों से राजनीतिक सत्ता लेने की दिशा में कदम उठाना था। कंपनी के निदेशकों (डायरेक्टरों) से कहा गया कि वे कंपनी के असैनिक, सैनिक और राजस्व संबंधी कागज-पत्र ब्रिटिश सरकार के सामने रखा करें।

ऐक्ट ने नए प्रशासनिक ढाँचे के लिए विशेष व्यवस्थाएँ कीं। कंपनी की कलकत्ता फैक्टरी का अध्यक्ष बंगाल का गवर्नर होता था। उसे कंपनी के संपूर्ण भारतीय क्षेत्र का गवर्नर-जनरल बनाया गया। उसकी एक परिषद् (काउंसिल) भी बनी। परिषद् में चार सदस्य थे। चार में से तीन सदस्यों का कंपनी से कोई संबंध नहीं होता था। कंपनी के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए न्याय-व्यवस्था की गई। 1774 ई० में कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) की स्थापना हुई। कंपनी के अधिकारी अतिरिक्त धनराशि न कमाएँ इसके लिए ऐक्ट के अनुसार कर्मचारियों के इंग्लैंड वापस लौटने पर मालिकों को अपनी संपत्ति का विवरण देना पड़ता था। यह भी बतलाना पड़ता था कि संपत्ति कैसे प्राप्त हुई है।

रेगुलेटिंग ऐक्ट की त्रुटियाँ जल्द ही मालूम हो गईं। पहले गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स और उसकी परिषद् के सदस्यों के बीच लगातार झगड़े होते रहे। इसका प्रशासन पर बुरा प्रभाव पड़ा। सर्वोच्च न्यायालय अपना काम ठीक तरह नहीं कर सका क्योंकि उसके कार्यक्षेत्र, परिषद् के साथ संबंध आदि स्पष्ट रूप से नहीं बतलाए गए थे। यह भी

नहीं कहा गया था कि न्यायालय भारतीय या अंग्रेजी कानून में से किसका अनुसरण करे। न्यायालय ने मुर्शिदाबाद के भूतपूर्व दीवान महाराजा नंद कुमार को जालसाजी के अभियोग में फाँसी की सजा दे दी। उस समय के ब्रिटिश कानून के अनुसार जालसाजी के लिए मृत्युदंड दिया जा सकता था। किंतु भारत में किसी ब्राह्मण को इस अपराध के लिए मृत्यु दंड नहीं दिया जा सकता था। इस तरह ब्रिटिश कानून और भारतीय रीति-रिवाज में विरोध प्रकट होने लगा। इसको लेकर बंगाल में सनसनी फैल गई। इसके अतिरिक्त कंपनी के ऊपर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण पूरी तरह नहीं हो सका था।

पिट का इंडिया ऐक्ट

कंपनी के भारतीय क्षेत्र के प्रशासन को कुशल तथा जिम्मेदार बनाने की आवश्यकता अनुभव की गई। अगले दशक के दौरान काफी जाँच-पड़ताल हुई और ब्रिटिश संसद द्वारा कई उपाय किए गए। इन उपायों में सबसे महत्त्वपूर्ण था पिट का इंडिया ऐक्ट। यह कानून 1784 ई० में बना। उस समय छोटा पिट ब्रिटेन का प्रधान मंत्री था। इस कानून के अनुसार ब्रिटेन में एक नियंत्रण परिषद् (बोर्ड आफ कंट्रोल) बनी। परिषद् के द्वारा ब्रिटिश सरकार कंपनी के असैनिक, सैनिक और राजस्व संबंधी मामलों पर पूरी तरह नियंत्रण रख सकती थी। किंतु व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार ज्यों का त्यों बना रहा। कंपनी अपने अधिकारियों की नियुक्ति और बरखास्तगी अपनी इच्छानुसार कर सकती थी। इस प्रकार ब्रिटिश भारत पर दुहरे शासन की व्यवस्था आ गई। ब्रिटिश सरकार और कंपनी दोनों 1858 ई० तक एक साथ शासन करती रहीं। इस कानून और इसके बाद के कानूनों ने गवर्नर-जनरल के हाथों को काफी मजबूत कर दिया। उसे महत्त्वपूर्ण मामलों में अपनी परिषद् की सलाह न मानने का अधिकार दिया गया। बंबई प्रेसिडेंसी और मद्रास प्रेसिडेंसी को उसके अधीन कर दिया गया। उसे भारत स्थित सारी ब्रिटिश सेना का सबसे बड़ा सेनापति बना दिया गया।

1784 ई० के ऐक्ट में रखे गए सिद्धांत भारत में ब्रिटिश प्रशासन के आधार बने। उस समय से गवर्नर-जनरल भारत का वास्तविक शासक बन गया। उसके ऊपर ब्रिटिश संसद का नियंत्रण होता था। गवर्नर-जनरल सेना, पुलिस, असैनिक सेवा और न्याय-पालिका के द्वारा कार्य करने लगा। उन संगठनों का काम भारत में अंग्रेजी राज की रक्षा और विस्तार करना, आंतरिक कानून और व्यवस्था बनाए रखना, राजस्व वसूली, सामान्य प्रशासन और न्याय की व्यवस्था करना था।

पुलिस

पिट के इंडिया ऐक्ट की एक धारा में कहा गया था कि अंग्रेज अब इलाका जीतने की नीति नहीं अपनाएँगे। किंतु अंग्रेजों ने इस धारा को गंभीरतापूर्वक नहीं लिया। ब्रिटेन के आर्थिक हितों की दृष्टि से नए इलाकों को जीतना जरूरी हो गया। इंग्लैंड के कारखानों में बनने वाले माल के लिए बाजार की जरूरत थी। कारखानों के लिए कच्चे माल के नए स्रोत भी आवश्यक थे। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जीते गए इलाकों में अंग्रेज कानून और व्यवस्था कायम करने के लिए तत्पर हो गए। सेना के संगठन के संबंध में हम पहले चर्चा कर चुके हैं। सेना के बाद पुलिस का स्थान था। कार्नवालिस के शासनकाल में इसको सुसंगठित रूप दिया गया। 1791 ई० में कलकत्ता के लिए पुलिस सुपरिंटेंडेंट की नियुक्ति हुई। जल्द ही अन्य शहरों में पुलिस अधिकारी के रूप में कोतवाल नियुक्त किए गए। जिलों को थानों में विभाजित किया गया। हर थाने को एक दारोगा के अधीन रखा गया। परंपरागत ग्राम-रक्षक को चौकीदार कहा गया। बाद में पुलिस के जिला सुपरिंटेंडेंट का पद बना। पुलिस ने कानून और व्यवस्था बनाए रखने और हत्या तथा चोरी-डकैती खत्म करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। किंतु पुलिस कभी लोकप्रिय नहीं हो सकी। सख्त व्यवहार और आम लोगों को तंग करने की आदत के कारण पुलिस बदनाम हो गई। पुलिस देश भर में सरकारी सत्ता का प्रतीक बन गई, किंतु तो भी उसके छोटे कर्मचारियों को बहुत कम पैसे मिलते थे। पुलिस में भी सिर्फ यूरोपवासी ऊँची जगहों पर जा सकते थे।

सिविल सर्विस का संगठन

ब्रिटिश प्रशासन के मजबूत चौखटे का काम सिविल सर्विस ने किया। अपने भ्रष्ट कार्यों के कारण कंपनी के वाणिज्य अधिकारी प्रशासनिक कामों में असफल रहे। इसको देखते हुए क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स को सुधार के लिए कुछ कदम उठाने पड़े। कार्नवालिस ही भारत में ब्रिटिश सिविल सर्विस का वास्तविक संस्थापक हुआ। उसने प्रशासन की वाणिज्य और राजस्व शाखाओं को अलग किया, प्रशासनिक कर्मचारियों द्वारा उपहार लेना बंद करवा दिया और उन्हें अच्छा वेतन देने की व्यवस्था की। कालक्रम से सिविल सर्विस के सदस्य संसार में ऊँची तनख्वाह पाने वालों में हो गए।

प्रभावशाली पद और ऊँची तनख्वाह के कारण ब्रिटिश सामंतों के परिवारों के युवक सिविल सर्विस की ओर आकर्षित हुए। एक लंबे समय तक कंपनी के डायरेक्टर

ही सिविल सर्विस के नए सदस्यों का मनोनयन करते रहे। जिन ब्रिटिश परिवारों के कंपनी के डायरेक्टरों से अच्छे संबंध थे उनके सदस्य सिविल सर्विस में घुस गए। मनोनयन की व्यवस्था 1833ई० तक रही। 1833ई० के बाद परीक्षा के द्वारा खुली प्रतियोगिता की व्यवस्था हुई।

कार्नवालिस या उसके बाद आने वाले किसी भी गवर्नर-जनरल ने भारतीयों को सिविल सर्विस में नही घुसने दिया। 1793ई० में एक नियम बना था जिसके अनुसार 500 पौंड या उससे अधिक वेतन पाने वाले स्थानों पर किसी भारतीय की नियुक्ति नहीं हो सकती थी। उस समय तक न सिर्फ ईस्ट इंडिया कंपनी बल्कि ब्रिटिश समाज की मागी प्रभावशाली श्रेणियाँ भारत से फायदा उठाने को उत्सुक हो गई थी। वे हिंदुस्तानियों को प्रतिद्वंद्वी के रूप में पसद नही करती थीं। इसके अतिरिक्त भारतीयों की योग्यता के बारे में ब्रिटिश प्रशासकों का ख्याल अच्छा नहीं था।

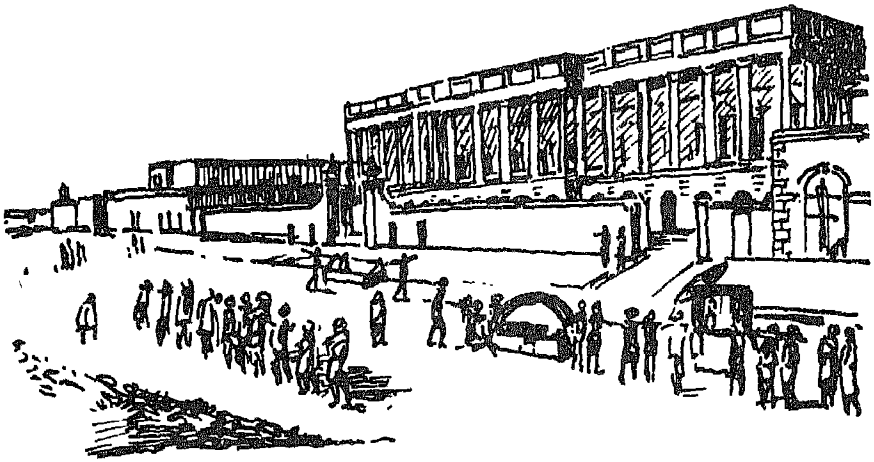
प्रशासन के कार्यों के बढ़ने के साथ सिविल सर्विस में ऐसे लोगों की आवश्यकता हुई जिन्हें भारतीय मामलों में विशेष प्रशिक्षण मिला हो। दूसरे शब्दों में, उन लोगो की आवश्यकता हुई जो भारत में प्रचलित शासन-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, भाषाओं तथा परंपराओं से विशेष रूप में परिचित हों। सिविल सर्विस के नए सदस्यों को प्रशिक्षण देने के लिए 1801 ई० में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज शुरू हुआ। बाद में इसी उद्देश्य से इंग्लैंड के हेलीबरी मे ईस्ट इंडिया कालेज स्थापित हुआ।

ब्रिटिश भारत को पहले जमाने की सरकारों की तरह ही जिलों में बाँटा गया। हर जिले में राजस्व वसूली के लिए कलक्टर, कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए मैजिस्ट्रेट तथा न्याय-व्यवस्था के लिए जज थे। सामान्यत: कलक्टर जिले का प्रधान होता था। सिविल सर्विस के सदस्य इन सब पदों पर नियुक्त किए जाते थे। वे प्रशासन में सारे ऊँचे पदों पर भी नियुक्त किए जाते थे। उनको काफी अधिकार थे और धीरे-धीरे उन्होंने कठिन श्रम की परंपरा कायम की। किंतु वे आम भारतीय समाज के नजदीक कभी नहीं आए। वे अपने अधीन काम करने वाले भारतीय कर्मचारियों को ही जानते थे। सिविल सर्विस के सदस्यों का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश हितों की रक्षा करना था।

न्याय-व्यवस्था

हर देश में शासन तथा सरकार का आधार ऐसे नियम होते हैं जिनका पालन करना सबके लिए आवश्यक होता है। सरकार ध्यान रखती है कि नियमों का कोई उल्लंघन

न करे। वह न्यायालयों की स्थापना करती है। न्यायालय नियम तोड़ने वालों को उचित दंड देते हैं। अंग्रेजों ने भारत का शासन अपने हाथों में लेने पर कुछ दिनों तक तत्कालीन भारतीय कानून ही चलाए। भारतीय परंपरा के अनुसार ब्याह, उत्तराधिकार, धर्म, जाति आदि से संबंधित वैयक्तिक कानून रीति-रिवाजों और धार्मिक ग्रंथों पर आधारित थे। राजस्व और अन्य मुकद्दमों का फैसला राजा या उसके द्वारा नियुक्त जज करते थे। अंग्रेजों ने इस व्यवस्था में दखल देना ठीक नहीं समझा। तुम ऊपर देख चुके हो कि 1774 ई० में कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायालय बना। उसके अंग्रेज जजों ने कुछ समय तक अंग्रेजी



1774 ई० में कलकत्ता में स्थापित सर्वोच्च न्यायालय का भवन।

कानून लागू किए। वे कोई अन्य कानून नहीं जानते थे। किंतु इसे कंपनी की सरकार और भारतीय जनता में से किसी ने भी पसंद नहीं किया। 1781 ई० में एक कानून पास कर अंग्रेजी कानून का प्रयोग सिर्फ अंग्रेजों तक सीमित कर दिया गया। किंतु बदली हुई स्थितियों में भारतीय प्रजा के लिए भी निश्चित कानूनों की आवश्यकता अनुभव की गई।

1793 ई० में बंगाल रेगुलेशन ऐक्ट बना। इसके अनुसार ही न्यायालयों में निर्णय होने लगे। बहुत हद तक इसमें हिंदुओं और मुसलमानों के पुराने कानूनों को स्थान दिया गया था और उन्हें स्पष्ट शब्दों में रखा गया था। अन्य समुदायों के सदस्यों के ऊपर भी यह लागू हो सके इसका पूरा ध्यान रखा गया था। इसका उद्देश्य था कि हर व्यक्ति

अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों को जाने। इसीलिए इसे अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं में प्रकाशित किया गया। इस तरह अस्पष्ट रीति-रिवाजों तथा राजा की इच्छा के बदले लिखित कानूनों और नियमों के आधार पर देश के शासन की नींव रखी गई। ब्रिटिश भारत के अन्य क्षेत्रों ने कुछ ही वर्षों में इसी तरह के कानून बनाए। कानून और न्याय की भारतीय प्रणाली को सुव्यवस्थित रूप काफी दिनों बाद 1833 ई० में प्रदान किया गया। सरकार ने भारतीय विधि आयोग की नियुक्ति 1833 ई० में इसी काम के लिए की।

निष्पक्ष न्याय-व्यवस्था के लिए सरकार ने न्यायालयों का पुनर्संगठन किया। जिला मुख्यालयों और प्रातीय शहरों में अपील के लिए कई प्रकार के न्यायालय बनाए गए।

कानून और न्याय-व्यवस्था द्वारा भारतीय जनता को यह विश्वास दिलाने का प्रयास हुआ कि कंपनी के राज्य में "विधि-शासन" स्थापित हो रहा है। भारत के लिए यह नया अनुभव था। नया शासक जिसे भारतीय 'कंपनी बहादुर' कहते थे हाड़-मास का बना नहीं था। उसके कानूनों को वे लोग बनाते और लागू करते थे जो अपने पदों पर सदा के लिए नहीं रह सकते थे। आम जनता उन लोगों की आलोचना कर सकती थी। उनके विरुद्ध कानूनी जाँच भी हो सकती थी। कालक्रम में इन कानूनों और न्यायालयों ने लोगों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न कर दी।

किसी क्षेत्र में विधि-शासन का अर्थ यह है कि उस इलाके के कानून की दृष्टि में हर आदमी समान है। ब्रिटिश भारत में अंग्रेजों और भारतीयों के पारस्परिक संबंधों में यह बात सही नहीं थी। अंग्रेजों के ऊपर वे ही कानून लागू नहीं होते थे जो भारतीयों के ऊपर लागू होते थे। अंग्रेजों के लिए अलग न्यायालय थे। ब्रिटिश राजा की आज्ञा से भारत में रहने वाले अंग्रेजों के लिए विशेष न्यायालय बने थे जहाँ ब्रिटिश कानून लागू होते थे।

कंपनी की स्थिति में गिरावट

हम पहले कह चुके हैं कि पिट के इंडिया ऐक्ट ने भारत के लिए दो मालिक नियुक्त किए थे। वे थे :—कंपनी और ब्रिटिश सरकार। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में धीरे-धीरे कंपनी का प्रभाव कम हो गया। 1813 ई० में भारत के साथ अकेले व्यापार करने का कंपनी का विशेषाधिकार खत्म हो गया। ब्रिटिश संसद के एक कानून के अनुसार भारतीय व्यापार सब अंग्रेजों के लिए खोल दिया गया। सिर्फ चाय के संबंध में कंपनी

का एकाधिकार रहने दिया गया। बीस वर्षों बाद वह एकाधिकार भी एक और कानून चार्टर ऐक्ट द्वारा छीन लिया गया और कंपनी को भारत मे अपना वाणिज्य बंद करने को कहा गया। यह एक सही कदम था। बहुत दिनों से लोग यह अनुभव करते आ रहे थे कि जो कंपनी व्यापार करती है, उसी को देश में शासन नहीं करना चाहिए। इस कानून में भारत के प्रशासन मे सुधार लाने की भी बातें थीं।

केंद्रीयकरण का विकास

उस समय तक भारत में कंपनी-शासित क्षेत्र काफी बड़ा हो गया था। प्रशासन कठिन और जटिल हो गया था। ब्रिटिश सरकार ने सोचा कि सिर्फ शासन के केंद्रीयकरण और एकरूपता के द्वारा ही प्रशासन अच्छा हो सकता है। इस तरह भारत पर ब्रिटिश कब्जा भी मजबूत हो सकेगा। 1833 ई० के चार्टर ऐक्ट ने इसी दिशा में कदम उठाया। गवर्नर-जनरल और उसकी परिषद् को कंपनी के भारतीय क्षेत्र के सारे असैनिक और सैनिक मामलों में पूर्ण अधिकार दिए गए। उन्हें वित्तीय अधिकार भी दे दिए गए। इस केंद्रीय व्यवस्था के द्वारा गवर्नर-जनरल और उसकी परिषद् का सारे ब्रिटिश भारत के प्रशासन पर पूर्ण अधिकार हो गया। 1947 ई० में भारत के स्वतंत्र होने तक ब्रिटिश शासन की यह प्रमुख विशेषता रही।

भारतीयों को अलग रखने की नीति

नई प्रशासनिक व्यवस्था में भारत के लोगों के लिए कोई विशेष स्थान नहीं था। कुछ ब्रिटिश प्रशासकों ने स्वयं स्वीकार किया कि ऐसा पहले किसी भी जगह संसार में नहीं हुआ। फौज में भारतीय सूबेदार तक ही हो सकते थे। न्यायपालिका और राजस्व विभागों में भारतीय छोटे पदों पर ही नियुक्त हो सकते थे। इन प्रतिबंधों का भारत के लोगों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। इस कमी को दूर करने के लिए 1833 ई० के चार्टर ऐक्ट में कहा गया कि भारतीयों को कंपनी के अंतर्गत हर पद पर नियुक्त किया जा सकता है। किंतु व्यवहार में कुछ नहीं हुआ।

अभ्यास

1. **पारिभाषिक शब्द जिनको तुम्हें जानना चाहिए :**

अंग्रेज नवाब—अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय सामतों का रहन-सहन अपनाने वाले अंग्रेजों को नवाब कहा जाने लगा।

चार्टर ऐक्ट—रानी एलिजाबेथ द्वारा दिए गए एक प्रपत्र (चार्टर) के अंतर्गत ईस्ट इंडिया कंपनी स्थापित की गई। इस प्रपत्र का नवीकरण हर बीसवें वर्ष किया गया। इन प्रपत्रों के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने कंपनी के अधिकारों और स्थिति को स्पष्ट किया। इसके लिए जो कानून बने उन्हें चार्टर ऐक्ट कहते हैं। आखिरी चार्टर ऐक्ट 1853 ई० में बना।

वैयक्तिक कानून—ब्याह, तलाक, संपत्ति का उत्तराधिकार आदि से संबंधित कानून वैयक्तिक कानून के अंतर्गत आते हैं। ये कानून आमतौर से रीति-रिवाजों, परंपराओं और धार्मिक ग्रंथों पर आधारित होते हैं।

2. **नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर दो :**

(i) किन परिस्थितियों में 1773 ई० का रेगुलेटिंग ऐक्ट पास हुआ।
(ii) रेगुलेटिंग ऐक्ट में प्रशासन में कौन-से सुधार करने की बात थी ?
(iii) 1773 ई० के रेगुलेटिंग ऐक्ट में क्या त्रुटियाँ थीं जिन्हें पिट के इंडिया ऐक्ट ने दूर करने की कोशिश की ?
(iv) किस प्रकार जिला-स्तर के प्रशासन का संगठन किया गया ?
(v) 1774 से 1856 ई० तक न्याय-व्यवस्था के विकास पर प्रकाश डालो।
(vi) 1833 ई० के चार्टर ऐक्ट की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं ?
(vii) 1856 ई० तक भारत में ब्रिटिश सरकार की सैनिक और असैनिक सेवाओं में भारतीयों की क्या स्थिति थी ?
(viii) ब्रिटिश प्रशासन की उन मुख्य विशेषताओं का वर्णन करो जो भारत के लिए नहीं थीं।

3. **नीचे 1765 से 1856 तक की प्रशासनिक व्यवस्था के संबंध में कुछ कथन दिए गए हैं। सही कथनों के आगे (✓) निशान और गलत कथनों के आगे (×) निशान लगाओ :**

(i) ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इंडिया कंपनी के मामलों में पहली बार 1773 ई० में सीधे हस्तक्षेप किया।
(ii) 1773 ई० के ऐक्ट ने गवर्नर-जनरल को सबसे अधिक शक्तिशाली बना दिया।
(iii) भारत में अंग्रेजों द्वारा कब्जा किए गए क्षेत्रों पर प्रशासन के संबंध में पिट के इंडिया ऐक्ट ने अधिक अधिकार दिए।
(iv) भारत में नए इलाके जीतने के बारे में अंग्रेजों ने पिट के इंडिया ऐक्ट का पूरी तरह अनुसरण किया।

(v) 'विधि-शासन' की स्थापना भारत में ब्रिटिश प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण योगदान थी।

(vi) भारत मे ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य भारतीय जनता का कल्याण करना था।

(vii) सेना, और असैनिक सेवाओ मे काम करने वाले भारतीयों को अंग्रेजो के बराबर अधिकार थे।

(viii) 1833 ई० के चार्टर ऐक्ट के बाद भारत मे ब्रिटिश प्रशासन का केंद्रीयकरण हो गया।

4. करने के लिए रुचिकर कार्य :

(i) भारत मे अंग्रेजो द्वारा स्थापित न्याय-व्यवस्था का एक प्रवाह-चार्ट बनाओ।

(ii) एक काल-रेखा खींचो और उस पर निम्नलिखित कानूनों के बनने का समय दिखलाओ

(क) 1773 ई० का रेगुलेटिंग ऐक्ट।

(ख) पिट का 1784 ई० का इंडिया ऐक्ट।

(ग) 1793 ई० का बंगाल रेगुलेशन ऐक्ट।

(घ) 1813 ई० का चार्टर ऐक्ट।

(ङ) 1833 ई० का चार्टर ऐक्ट।

अध्याय 6

भारतीय अर्थ-व्यवस्था और समाज में परिवर्त्तन

(1765-1856)

भारत के नए शासकों ने भूमि और कृषि, व्यापार और उद्योग तथा शिक्षा और समाज-सुधार के क्षेत्रों में कई परिवर्त्तन किए। उन परिवर्त्तनों के फलस्वरूप उत्पादन के नए रूपों, नए सामाजिक वर्गों तथा सांस्कृतिक आंदोलनों का उदय हुआ। भारत में ब्रिटिश नीतियाँ अंग्रेजों के आर्थिक हितों के अनुकूल थीं। वे भारत पर अपना आधिपत्य मजबूत करना चाहते थे। किंतु उनकी नीतियों के फलस्वरूप भारतीय जनजीवन में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए। रहन-सहन के कई पुराने तौर-तरीके खत्म हो गए। परंपरागत ग्राम्य जीवन समाप्त हो गया।

खण्ड—अ

ग्रामीण समाज का बिखरना

नब्बे प्रतिशत भारतीय गाँवों में रहते थे। गाँव पुराने जमाने से ही स्वावलंबी थे। वे अपनी जरूरत की लगभग सारी चीजें स्वयं उत्पन्न कर लेते थे। बाहरी दुनिया से उनका संबंध कहुत कम था। वे खाने-पीने की सारी चीजें स्वयं उत्पन्न कर लेते थे। वे अपने औजार तथा बर्तन भी स्वयं बना लेते थे। पुरोहित गाँवों के शिक्षक भी होते थे। वे गाँवों में ही रहते थे। दस्तकार, नाई, धोबी तथा आवश्यक सेवाएँ प्रदान करने वाले अन्य लोग भी गाँवों में होते थे।

गाँव के लोगों में आपसी झगड़े भी होते थे। झगड़ों का निबटारा गाँव की सामूहिक पंचायत या जाति पंचायतें करती थीं। थोड़ी-सी चीजों के लिए ही गाँव बाहरी दुनिया पर निर्भर होता था। नमक, बढ़िया कपड़े, धातु से बने औजार, सोना और चाँदी बाहर से

मँगाई जाती थी। सारे भारत में लगभग यही व्यवस्था थी। कहीं कहीं मामूली अंतर थे।

किसान परिवार खेती करते थे। वे उपज का एक भाग राजस्व के रूप में शासक को देते थे। जमीन के ऊपर उन्हें कुछ विशेषाधिकार मिले थे। उन्हें जमीन से बेदखल नहीं किया जा सकता था। राजस्व की वसूली राज्य आमतौर से गाँव के मुखिया या प्रधान के जरिए करता था।

अंग्रेजों ने अपना शासन स्थापित करने के बाद भी इस पुरानी व्यवस्था को कुछ दिनों के लिए ज्यों का त्यों छोड़ दिया। देखभाल के लिए अफसरों की नियुक्ति हुई। कंपनी के अफसरों और एजेंटों ने किसानों और जमीदारों को काफी सताया। इससे किसान और जमीदार कंपनी से असंतुष्ट हो गए। कुछ समय बाद कंपनी के अफसरों, राजस्व अधिकारियों, पुलिस और न्यायिक अधिकारियों ने ग्रामीण समुदाय के मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। ग्राम पंचायतों की सत्ता खत्म हो गई। राजस्व मुद्रा के रूप में निश्चित कर दिया गया। उत्पादन में परिवर्तन का उस पर अब कोई प्रभाव नहीं रहा। नकद राजस्व अदा करने के लिए किसानों को उन फसलों के उगाने पर जोर देना पड़ा जिन्हें आसानी से बाजार में बेचा जा सकता था। कपड़ा और कारखानों में बना अन्य तैयार माल इंग्लैंड से धड़ल्ले के साथ भारत पहुँचने लगा। यह माल देशी माल की तुलना में सस्ता था। उसकी प्रतियोगिता में भारतीय माल नहीं टिक सका। नतीजा यह हुआ कि गाँव के दस्तकार बेरोजगार हो गए। उनके माल की माँग तेजी से घटने लगी। अब गाँव स्वावलंबी नहीं रह गए। वे शहरों पर निर्भर हो गए।

नई भूमि-व्यवस्था

तुम पढ़ चुके हो कि बक्सर की लड़ाई के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी को राजस्व-वसूली का अधिकार मिला था। ब्रिटिश राज्य के विस्तार के साथ भू-राजस्व की राशि भी बढ़ी। भू-राजस्व कंपनी की आय का सबसे बड़ा स्रोत हो गया। उसका एक बड़ा भाग कंपनी को इंग्लैंड की सरकार को देना पड़ता था। 1767 ई० में ब्रिटिश संसद ने एक कानून बना कर कंपनी को हर साल ब्रिटिश सरकार के खजाने में 4 लाख पौंड देने का आदेश दिया। कंपनी राजस्व का एक भाग भारत में व्यापारिक वस्तुएँ खरीदने के लिए खर्च करती थी। वे वस्तुएँ इंग्लैंड तथा संसार के अन्य देशों को निर्यात की जाती थीं। कंपनी ने नई भूमि-व्यवस्था स्थापित की जिसका उद्देश्य नियमित रूप से अधिकाधिक राजस्व प्राप्त करना था।

ंन हेस्टिंग्स के समय मे कंपनी ने बंगाल और बिहार में राजस्व-वसूली के अधिकार भी शुरू की। कंपनी को सबसे अधिक रकम देने वाले को हर इलाके मे राजस्व-ा अधिकार दिया गया। इस तरह इजारादारी व्यवस्था का जन्म हुआ। नई किसी के लिए भी लाभदायक सिद्ध नही हुई। कंपनी को पूरी रकम देने में र सफल नही हुए। उन्होंने किसानों को सताना और उनसे अधिक से अधिक ा करना शुरू कर दिया।

ंदोबस्त

ारेदारी व्यवस्था की असफलता के बाद कंपनी ने कई नई योजनाएँ लागू कीं भी सफल न हो सकीं। अंत में कंपनी ने बंगाल और बिहार में भू-राजस्व स्थायी निश्चित करने का निर्णय किया। 1793 ई० में कार्नवालिस ने स्थायी बंदोबस्त या। इसके अंतर्गत राजस्व वसूल करने वाले अधिकारी को जमींदारी का मालिक या गया। नए जमींदार से एक निश्चित रकम सरकार को निश्चित समय पर लए कहा गया। बाकी रकम छोड़ दी गई। उसे जमींदारी पर वंशगत अधिकार या। वह अपनी इच्छानुसार जमींदारी को बेच या रेहन रख सकता था। तुम्हें ा कि मुगल साम्राज्य के जागीरदारों का अपनी जागीर पर स्वामित्व नही होता ा समय राज्य जागीर हस्तांतरित कर सकता था। जागीरदारों से उनकी जागीरें ा सकती थी। जागीरदार जागीर बेच नहीं सकते थे। वे किसानों को भी बेदखल र सकते थे।

ाशा की जाती थी कि स्थायी बंदोबस्त से कंपनी की आय नियमित हो जाएगी। जमींदारों का एक नया समूह जन्म लेगा जो कंपनी के प्रति निष्ठावान रहेगा। श बड़े नए जमींदार गाँवों से दूर शहरों में ही अधिकतर रहने लगे। वे किसानों क से अधिक पैसे लगान के रूप में ऐंठने लगे। 1799 ई० में उन्हें अधिकार दिया गया गान न देने वाले किसानों को जमीन से बेदखल कर सकते हैं और उनकी संपत्ति र सकते हैं। फसल न होने पर किसान लगान नहीं दे पाते थे। उस समय काफी ख्या में किसानों को बेदखल कर दिया जाता था। बेदखली के कारण किसान न खेतिहर मजदूर हो गए। आगे चलकर स्थायी बंदोबस्त से सरकार की अपेक्षा रों को अधिक फायदा हुआ। जनसंख्या बढ़ने के कारण अनाज तथा अन्य खाद्य यों की माँग बढ़ी। फलस्वरूप खेती का विस्तार हुआ। खेती के लिए नई भूमि

की माँग बढ़ी। इस कारण जमींदारों ने लगान बढ़ा दिया। जमींदारों की आय बढ़ती गई किंतु सरकार को भू-राजस्व मे प्राप्त होने वाली आय ज्यों की त्यों रही।

रैयतवारी और महालवारी व्यवस्था

उड़ीसा और आंध्र प्रदेश के तटीय जिलों और बनारस में स्थायी बंदोबस्त लागू किया गया। 1799 और 1801 ई० के बीच कंपनी का मैसूर और कर्नाटक पर कब्जा हो गया। वे मद्रास प्रांत के अंग थे। मद्रास प्रांत में नई भूमि-व्यवस्था लागू करने की आवश्यकता अनुभव की गई। वहाँ के पुराने जमींदार लंबी लड़ाई के चलते अपनी आर्थिक शक्ति खो बैठे थे। इस कारण वहाँ स्थायी बंदोबस्त लागू नहीं किया जा सकता था। मद्रास प्रांत के गवर्नर टॉमस मुनरो के जोर देने के कारण नई व्यवस्था लागू की गई। यह रैयतवारी व्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध हुई। सरकार ने जमीन सीधे रैयतों को बंदोबस्त की। जमीन के उपजाऊपन और फसल की किस्म को देखते हुए भू-राजस्व निश्चित किया गया। भू-राजस्व का निर्धारण 30 साल तक के लिए ही होता था। पैदावार का आधा सरकार को मिलता था। इस व्यवस्था के अंतर्गत किसान की स्थिति स्थायी बंदोबस्त की अपेक्षा मजबूत हो गई। किंतु कड़ाई के साथ लगान वसूल करने से किसान महाजनों के चंगुल मे फँस गए। सरकार सबसे बड़े जमींदार के रूप में सामने आई और किसान उसके अफसरों की दया पर छोड़ दिए गए।

उत्तरी भारत में भूमि-व्यवस्था स्थानीय रीति-रिवाजों के अनुकूल बनी। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ग्राम समुदायों या महालों को जमीन बंदोबस्त की गई। ग्राम समुदायों का जमीन पर सामूहिक स्वामित्व था। इस सामूहिक स्वामित्व को भाईचारा कहा जाता था। महाल के अंतर्गत कई गाँव थे। वे गाँव पुराने जमींदारों के अधीन थे। उन पुराने जमींदारों को तालुकेदार कहा जाता था। इसे महालवारी व्यवस्था कहा गया। पंजाब और दिल्ली में यही भूमि-व्यवस्था लागू की गई।

पश्चिमी भारत में मराठों द्वारा स्थापित भूमि-व्यवस्था ही रहने दी गई। समय-समय पर उसमें रैयतवारी व्यवस्था के अनुकूल सुधार किए गए। गाँव के प्रधान——देसाई और पटेल——ब्रिटिश जिलाधिकारियों के मातहत हो गए। आगे चलकर अफसरों ने उनके अधिकारों और कार्यों को अपने हाथों में ले लिया।

अंग्रेजों द्वारा लागू किए गए जमीन संबंधी नए कानूनों ने भारतीय समाज को काफी प्रभावित किया। जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व स्थापित हो जाने के बाद जमीन खरीद-

बिक्री की वस्तु हो गई। निश्चित समय के अंदर सरकार को भू-राजस्व अदा करने के कानून के कारण अनेक छोटे भू-स्वामी अपनी संपत्ति को गिरवी रखने या उससे हाथ धोने पर मजबूर हो गए। नई भूमि-व्यवस्थाओं के कारण जमीन का वितरण असमान हो गया। गाँवों में गरीबी बढ़ गई।

नई भूमि-व्यवस्थाओं ने कृषि क्षेत्र में मुद्रा का प्रचलन और प्रभाव बढ़ाया। बाजार की शक्तियाँ खेती के उत्पादन को प्रभावित करने लगीं। देशी और विदेशी बाजारों में खाद्यान्न और नकदी फसलें व्यापार की वस्तुएँ बन गईं। ब्रिटिश व्यापारी चोरी-छिपे अफीम चीन ले जाने लगे उन्होंने भारत में अफीम की पैदावार बढ़ाने के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया। दक्कन में कपास की खेती बढ़ी। जूट, चाय और कहवा का निर्यात काफी मुनाफा देने लगा। ब्रिटिश व्यापारिक प्रतिष्ठानों और उनके भारतीय गुमास्तों ने व्यापार मे लाभ उठाया। भारतीय किसानों को कोई फायदा नहीं पहुँचा।

उद्योग और व्यापार

उत्पादन के आधुनिक तरीकों के व्यवहार में आने के पहले भारत की औद्योगिक जनसंख्या दो प्रकार की थी। उसमें गाँवों के दस्तकार तथा विभिन्न प्रकार के विशेषीकृत शिल्प में लगे लोग आते थे। अंतिम प्रकार के लोग अधिकतर शहरों में रहते थे। गाँवों के साधारण दस्तकारों में मोटे कपड़ों के बुनने वाले जुलाहे, औजार बनाने वाले बढ़ई और लोहार, तथा घरेलू बर्तन बनाने वाले कुम्हार थे। वे अपने पैतृक पेशे में लगे थे। वे खेती भी करते थे। स्वावलंबी ग्राम समुदायों को इन स्थानीय दस्तकारों की सेवा की आवश्यकता थी।

दूसरे प्रकार के दस्तकार अनेक प्रकार की चीजें बनाते थे। उनमें उपयोगी और विलास की चीजें होती थी। वे देशी और विदेशी बाजारों में बिकती थी।

सूती कपड़े उनमें मुख्य थे। सूती कपड़े का उत्पादन देश के अनेक भागों में होता था। उत्पादन के महत्त्वपूर्ण केंद्र थे : ढाका, कृष्णनगर, बनारस, लखनऊ, आगरा, मुल्तान, बुरहानपुर, सूरत, भड़ौंच, अहमदाबाद और मदुराई। विलास की दृष्टि से सादा सूती कपड़े और मलमल मुख्य थे। ऊनी और रेशमी कपड़े भी कम विख्यात नहीं थे। लोहा और इस्पात, ताँबा और पीतल, सोना और चाँदी की वस्तुएँ भी बड़ी विख्यात थीं।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में जहाज-निर्माण के क्षेत्र में भारत का बड़ा नाम था। जहाज-निर्माण के मुख्य केंद्र थे : गोआ, बस्सीन, सूरत, मछलीपट्टनम, सतगाँव,

ढाका और चटगाँव। एक विद्वान के अनुसार "जहाज-निर्माण में उन्होंने (भारतीयों ने) शायद अंग्रेजों से जितना सीखा उससे कहीं अधिक उन्हें सिखाया।"

शहरों मे उद्योग सुसंगठित थे। शिल्पकारी पैतृक पेशा थी। शिल्पकार एक विशेष उपजाति के सदस्य होते थे। सिर्फ गुजरात में वे शिल्पसंघो के सदस्य थे। वहाँ शिल्पसंघ उत्पादन की किस्म तथा सदस्यों के कल्याण का ध्यान रखते थे। आमतौर से उत्पादन स्वतंत्र दस्तकारों द्वारा होता था। वे ग्राहकों के आदेश तथा उनके द्वारा दी गई सामग्रियों के अनुसार उत्पादन करते थे। व्यापारी दस्तकारों को पेशगी धन देते थे। राजाओं और सरदारों का उन्हें निरंतर संरक्षण था। वे लोग आमतौर से विलास की वस्तुएँ चाहते थे।

भारतीय उद्योगों का पतन

उन्नीसवीं सदी के शुरू तक इन शिल्पों और उद्योगों का भारतीय अर्थ-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान था। किंतु उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इनका तेजी से पतन हुआ। तुम पतन के कारण पूछ सकते हो।

ब्रिटिश भारत मे राज-रजवाड़ों के धीरे-धीरे खत्म होने के कारण बढ़िया किस्म की वस्तुओं की माँग घट गई। कई राजाओं और सरदारों ने कुशल दस्तकारों को नियमित वेतन देकर अपने पास रखा था। उनके बाद ब्रिटिश अफसरों ने यह व्यवस्था उसी तरह जारी नहीं रखी। यही नहीं, उनकी रुचियाँ और पसंद भिन्न थी। उन्होंने दस्तकारों से यूरोपीय डिजायन और किस्में अपनाने को कहा। भारतीय दस्तकारों ने उन्हें नहीं अपनाया। जिन क्षेत्रों में भारतीय राज-रजवाड़े बने रहे सिर्फ उन्हीं क्षेत्रों में कुछ पुराने शिल्प जीवित रह सके। उदाहरण के लिए कश्मीर, राजस्थान के कुछ राज्यों, काठियावाड़ और हैदराबाद के नाम लिए जा सकते हैं। भारतीय उद्योगों के पतन के मुख्य कारण कुछ और भी थे।

भारत का भाग्य इंग्लैंड के व्यापारियों और उद्योगपतियों के हाथों में था। उनका ब्रिटिश सरकार और उसके द्वारा कंपनी पर काफी प्रभाव था। तुम्हें याद होगा कि भारत आने वाले यूरोपीय व्यापारियों का मुख्य उद्देश्य भारत के साथ व्यापार द्वारा मुनाफा कमाना था। अंग्रेज सबसे अधिक मुनाफा कमाने की स्थिति में थे क्योंकि भारत पर उनका कब्जा होता जा रहा था। इसे समझने के लिए सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के भारतीय वाणिज्य व्यवसाय को देखना होगा।

भारत का अधिकांश कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन घरेलू आवश्यकताओं की पूर्त्ति

में ही खप जाता था, किन्तु उसकी विदेशी बाजार में काफी माँग थी। विश्व-व्यापार में बढ़िया सूती और रेशमी कपड़े, मसाले, नील, चीनी, औषधि, कीमती हीरे-जवाहरात और विभिन्न शिल्प-वस्तुओं की दृष्टि से भारत का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

सत्रहवी शताब्दी के अंत तक इंग्लैंड मे भारतीय सूती कपड़ों की माँग इतनी बढ़ गई कि वहाँ का घरेलू कपड़ा-उद्योग बुरी तरह प्रभावित हुआ। अंग्रेज बुनकर बेरोजगार हो गए। इसीलिए 1700 और 1720 ई० में कानून बनाकर भारतीय सूती कपड़ों की कई किस्मों के इंग्लैंड में प्रवेश पर रोक लगा दी गई। इसी तरह के निषेधात्मक कानून यूरोप के अन्य देशों मे भी बने। इन कानूनों का भारतीय कपड़ा उद्योग पर बुरा प्रभाव पड़ा। किंतु सूती और रेशमी कपड़ों तथा अन्य वस्तुओं का निर्यात जारी रहा। इसी बीच इंग्लैंड में सूती कपड़ा उद्योग विकसित हुआ। उसने भारतीय उद्योग से मुकाबला करने की जी-तोड़ कोशिश की। उदाहरण के लिए लखनऊ में बनी छींट अंग्रेज महिलाओं द्वारा काफी पसंद की जाती थी। 1754 ई० में अंग्रेज रँगरेजों ने दावा किया कि वे भारतीय दस्तकारों की तुलना में कपड़े की अच्छी छपाई करने लगे हैं। इसी समय इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति हुई और सूती कपड़ा उद्योग मे मशीनों का इस्तेमाल होने लगा। इंग्लैंड का सूती कपड़ा उद्योग तेजी से आगे बढ़ने लगा। भारतीय सूती कपड़े के व्यापारियों को विदेशी बाजार में कड़ा मुकाबला करना पड़ा। उनके सामने कई कठिनाइयाँ आने लगीं। उस समय तक भारत पर कंपनी का शासन शुरू हो गया था। यहाँ और इंग्लैंड में ब्रिटिश व्यापारियो और उत्पादकों के हितों की रक्षा के लिए कई कदम उठाए गए। उन कदमों से भारतीय उद्योगो को धक्का लगा।

कंपनी का मुनाफा बढ़ाने के लिए उसके एजेंटों ने सूती कपड़ा तथा अन्य वस्तुओं के उत्पादकों को बाजार भाव से 20 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तक कम कीमतें लेने पर मजबूर किया। ढाका में जब मलमल बनाने वालों ने कम कीमत लेने से इंकार कर दिया तब उनके विरुद्ध शक्ति का प्रयोग किया गया। अनेक बुनकरों के नाम कंपनी की बही में लिख लिए गए और उन्हें अन्य किसी के लिए काम करने की मनाही कर दी गई। कंपनी के अधिकारी कच्चे माल की कीमतों में फेर-बदल करते रहते थे। इससे भारतीय बुनकरों को नुकसान पहुँचता था। बंगाल में बढ़िया किस्म का कपास दक्कन से आता था। कंपनी के अधिकारी दक्कन का कपास थोक खरीद लेते थे। वे उसे बंगाल में 28 रुपए से 30 रुपए प्रति मन के भाव से बेचते थे। वे उसे स्वयं 16 रुपए से 18 रुपए प्रति मन के भाव से खरीदते थे। इन सबके कारण बुनकर समुदाय दरिद्र हो गया और सूती कपड़ा

उद्योग बर्बाद हो गया। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक समृद्ध बंगाल प्रांत लगभग बर्बाद हो गया।

मशीन से बने सूती कपड़े के आने से भारतीय कपड़ा उद्योग को सबसे बड़ा धक्का लगा। मशीन से बने कपड़े सस्ते होते थे। यही नहीं, इंग्लैंड से भारत आने वाले सामान पर चुंगी नहीं लगती थी। दूसरी ओर भारत से इंग्लैंड जाने वाले सामानों पर ऊँची चुंगी लगती थी।

इंग्लैंड ने स्वतंत्र व्यापार की नीति अपनाई थी। इस नीति से भारत को काफी हानि उठानी पड़ी। भारत में विदेशी माल की बाढ़ आ गई। विचित्र बात यह हुई कि सूती कपड़ा काफी बड़ी मात्रा में बाहर से भारत आने लगा। भारत ने विदेशी बाजार खो दिए। इतना ही नहीं, घरेलू बाजार बाहर की वस्तुओं से भर गया। आगे चलकर इंग्लैंड से भारत में बर्तन से लेकर हथियार तक आने लगे।

उद्योग और व्यापार के पतन के आंतरिक कारण भी थे। भारत में उद्योग और व्यापार के विकास के लिए शिल्प संघों या उद्योग संगठनों जैसी कोई संगठित संस्थाएँ नहीं थीं। विदेशी बाजारों में माल पहुँचाने-लाने के लिए जहाजों का भी उपयुक्त प्रबंध नहीं था। इस कारण भारत का विदेश व्यापार बाहरी लोगों के हाथों में चला गया। व्यापारिक क्षेत्र में पश्चिमी देशों का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए भारत में राष्ट्रीय वाणिज्य नीति की आवश्यकता थी। किंतु तब तक भारत में राष्ट्रीयता की भावना नहीं आई थी।

भारत में एक नए वर्ग का उदय

जमीन संबंधी कानूनों में परिवर्त्तन और उद्योग तथा व्यापार के पुराने तरीकों के खत्म होने पर भारत में एक नई समाज-व्यवस्था का प्रारंभ हुआ। संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार, पहल और मौद्रिक अर्थ-व्यवस्था ने धीरे-धीरे स्वावलंबी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का स्थान लेना शुरू कर दिया। कलकत्ता, मद्रास और बंबई जैसे शहरों में वाणिज्य उद्योग केंद्रित हो गए। सरकारी कामकाज की दृष्टि से ये शहर काफी महत्त्वपूर्ण थे। जल्द ही ये शहर शिक्षा और अध्ययन के केंद्र बन गए। कई तरह के प्रगतिशील सामाजिक आंदोलन भी इन्हीं जगहों से शुरू हुए।

जमींदार, महाजन, सरकारी कर्मचारी और व्यापारी भारतीय समाज में प्रमुख हो गए। वे विदेशी शासकों के प्रति निष्ठावान थे। उनका जन्म ब्रिटिश सरकार की

प्रशासनिक और आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप हुआ था। वे भारतीय मध्यम वर्ग की रीढ़ बने। उनका विश्वास था कि भारतीय जनता की स्थिति को पाश्चात्य विचारों को अपनाकर ही अच्छा बनाया जा सकता है।

भारत के परंपरागत शिक्षित समुदाय के साथ इस नए वर्ग ने सबसे पहले पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को अपनाया। वे जानते थे कि उनकी मुख्य सहायक ब्रिटिश सरकार थी। इसीलिए उन्होंने 1857 ई० में अपने को विद्रोह से अलग रखा।

हम आगे चलकर देखेंगे कि भारत का नया मध्यम वर्ग काफी दिनों तक अंग्रेजों का सहयोगी न रह सका। वह व्यापार, उद्योग और प्रशासन में उन्नति के अवसर चाहता था। अंग्रेज ऐसे अवसर उन्हें नहीं देना चाहते थे। वे भारतीयों को अपने मुकाबले में नहीं आने देना चाहते थे। स्वार्थों की इस टक्कर ने भारतीय मध्यम वर्ग को अंग्रेजो के खिलाफ कर दिया। वह समझ गया कि बिना देश आजाद हुए उसकी उन्नति के मार्ग नहीं खुल सकते।

1833 ई० मे भारत में प्रशासन का केंद्रीकरण शुरू हो गया। शिक्षा का विकास हुआ। इनके कारण भारत के मध्यम वर्ग में क्षेत्रीय भेदभाव को भुलाकर एकता की भावना आ गई। एकता की यही भावना जल्द ही राष्ट्रीयता के रूप में व्यक्त हुई जिसमे महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन आए।

अभ्यास

1. **पारिभाषिक शब्द जिनको तुम्हें जानना चाहिए :**

1. **स्थायी बंदोबस्त**––यह भू-राजस्व की एक विशेष व्यवस्था थी। इसे कार्नवालिस ने 1793ई० मे बंगाल और बिहार में लागू किया। इस व्यवस्था में जमीदारों को जमीन पर स्थायी और वंशगत स्वामित्व मिल गया। शर्त यह रही कि जमीदार एक निश्चित राशि निर्धारित समय पर सरकारी खजाने मे जमा करे। इस व्यवस्था मे सरकार का किसानो से कोई सीधा संबंध नही रहा।

2. **रैयतवारी व्यवस्था**––यह भू-राजस्व की एक भिन्न व्यवस्था थी जिसे अंग्रेजों ने तत्कालीन मद्रास और बबई प्रानो में लागू किया।

इस व्यवस्था के अनर्गत सरकार किसानों के साथ एक निश्चित अवधि (30 वर्ष) के लिए बदोबस्त करती थी। किसान अपनी 50 प्रतिशत पैदावार लगान के रूप मे सरकार का देते थे। बदोबस्ती की अवधि समाप्त होने के बाद लगान का फिर निर्धारण होता था।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :

1. अंग्रेजी राज की स्थापना के पहले भारतीय गाँव किस प्रकार स्वावलंबी थे ?
2. कंपनी के शासन की स्थापना के बाद भारतीय गाँवों के चरित्र में क्या परिवर्तन हुआ ?
3. शाह आलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिलने के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने वहाँ भू-राजस्व की क्या व्यवस्था की ?
4. सन 1793 ई० में कार्नवालिस द्वारा लागू किए गए स्थायी बंदोबस्त की क्या मुख्य विशेषताएँ थी ?
5. स्थायी बंदोबस्त से किसानों की अपेक्षा जमींदारों को अधिक फायदा कैसे पहुँचा ?
6. रैयतवारी और महालवारी व्यवस्थाओं की मुख्य विशेषताएँ क्या थी ?
7. अंग्रेजों द्वारा लागू की गई नई भू-राजस्व व्यवस्थाओं का किसानों पर क्या प्रभाव पड़ा ?
8. यूरोपवासी जिस समय आए उस समय भारत में किस प्रकार के उद्योग थे ?
9. भारतीय उद्योग ब्रिटिश सरकार की नीतियों से कैसे प्रभावित हुए ?
10. ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय उद्योगों के पतन के कौन-से आंतरिक कारण थे ?
11. देश में आर्थिक और प्रशासनिक परिवर्तनों के कारण किस सामाजिक वर्ग का उदय हुआ ?
12. आर्थिक और प्रशासनिक परिवर्तनों के कारण जिस नए सामाजिक वर्ग का उदय हुआ वह शुरू में ब्रिटिश शासन के प्रति निष्ठावान क्यों था और आगे चलकर उसके खिलाफ क्यों हो गया ?

3. नीचे अंग्रेजों द्वारा लागू की गई भू-राजस्व व्यवस्थाओं के संबंध में कुछ कथन दिए गए हैं। अगर कथन स्थायी बंदोबस्त से संबद्ध है तो "क", रैयतवारी व्यवस्था से संबद्ध है तो "ख", और महालवारी व्यवस्था से संबद्ध है तो "ग" उसके सामने लिखें।

1. सरकार और किसान के बीच कोई बिचौलिया न रहा।——
2. गाँवों के समूह पुराने जमींदारों के अधीन रहे।——
3. जमींदारों को जमीन पर वंशगत अधिकार दिए गए।——
4. सरकार का हिस्सा सदा के लिए निश्चित कर दिया गया।——

4. करने के लिए रुचिकर कार्य :

भारत में अंग्रेजों द्वारा लागू की गई भू-राजस्व व्यवस्थाओं और अंग्रेजी राज के पहले की व्यवस्था का एक तुलनात्मक चार्ट बनाकर जमींदार, रैयत तथा सरकार की स्थिति पर प्रकाश डालो।

खण्ड—ब

शिक्षा और समाज-सुधार

तुम पहले पढ़ चुके हो कि स्वावलंबी गाँव अठारहवीं शताब्दी तक भारतीय समाज की एक मुख्य विशेषता थे। समाज का जाति पर आधारित होना उसकी दूसरी विशेषता थी। समाज के सदस्य विभिन्न जातियों और उपजातियों में विभाजित थे।

तुम अपनी पुस्तकों "प्राचीन भारत" और "मध्यकालीन भारत" में जाति प्रथा के उदय और उसमें हुए परिवर्तनों के संबंध में पढ़ चुके हो। जाति प्रथा नए व्यवसाय और पेशों के उदय, राजनीतिक परिवर्तनों, नए धर्मों और क्षेत्रीय विशेषताओं से प्रभावित हुई। आगे चलकर जन्म, पेशा और वैवाहिक संबंध के आधार पर जाति भेद होने लगा। धीरे-धीरे जातियाँ और उपजातियाँ एक दूसरे से बिल्कुल अलग सामाजिक समूहों में बदल गईं। उनके अपने रीति-रिवाज और नियम बन गए। उनके रीति-रिवाजों और नियमों को उनकी जाति पंचायतें लागू कराती थीं। देश के शासक आमतौर से जाति-नियमों में हस्तक्षेप नहीं करते थे। जाति प्रथा मूलतः हिंदू समाज की विशेषता थी किंतु उसका प्रभाव भारतीय मुसलमानों और ईसाइयों पर भी पड़ा।

जाति प्रथा ने भारतीय समाज को विभाजित कर दिया। वह उसकी एकता में बाधक बनी। लोग राज्य, देश या संपूर्ण समाज के बदले अपनी जाति के प्रति निष्ठावान हो गए। इस प्रकार देश एक दूसरे से भिन्न छोटे-छोटे समूहों में बँट गया। धर्म, शिक्षा और अन्य सामाजिक मामलों में अंध-विश्वास ने घर कर लिया। लोग परंपरागत रीति-रिवाजों का अंधानुकरण करने लगे। किंतु ब्रिटिश शासन भारतीय जन-जीवन के लिए एक चुनौती था। उसने उसे कई तरह से प्रभावित किया। तुम पहले देख चुके हो कि किस प्रकार भूमि और व्यापार संबंधी ब्रिटिश नीतियों ने भारत के आर्थिक जीवन को प्रभावित किया। नई शिक्षा प्रणाली तथा धार्मिक और सामाजिक सुधार उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आए। उन्होंने भारतीय समाज में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए।

पश्चिमी देशों से प्रारंभिक संपर्क

व्यापारियों के अतिरिक्त यूरोप में अन्य लोग भी थे जो भारत के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहते थे। उनमें ईसाई धर्म प्रचारक और भारत में दिलचस्पी रखने वाले विद्वान थे।

भारत में ईसाई धर्म प्रचारक 1542 ई० से ही आ रहे थे। उनका उद्देश्य भारतीय लोगों को ईसाई बनाना था। यूरोपीय व्यापारियों में पुर्तगाली सबसे पहले भारत आए।

वे कहा करते थे कि उनके भारत आने के दो उद्देश्य थे, लोगो को ईसाई बनाना और मसाले प्राप्त करना। लोगों को ईसाई बनाने के प्रति उत्साह ने भारतीय जनता के मन में संदेह उत्पन्न कर दिया। इसीलिए अपने शासन के प्रारंभिक दिनों में ईस्ट इंडिया कंपनी ने ईसाई धर्म प्रचारकों के बिना अनुमति भारतीय इलाकों में आने पर रोक लगा दी थी।

ईसाई धर्म के उपदेश के साथ-साथ धर्म प्रचारकों ने भारतीय जनता को अच्छी तरह समझने की कोशिश की। इसीलिए उन्होंने भारतीय भाषाओं तथा धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों का अध्ययन किया। धर्म प्रचारकों के अतिरिक्त व्यापारी और भारतीय शासकों के दरबारों में आने वाले दूत भी इस दिशा में आगे बढ़े। उनके अथक प्रयासों से भारत के प्राचीन धर्मों, संस्कृति और विद्या के संबंध में यूरोपवासी जान सके। शुरू के ब्रिटिश शासको ने भी पुरानी भारतीय शासन प्रणालियों के संबंध में जानने की आवश्यकता समझी थी। उस समय कुछ प्रतिभाशाली विद्वान कंपनी की सेवा में थे। उन्होंने भारतीय ज्ञान-विज्ञान की बिभिन्न शाखाओं का अध्ययन किया।

उन विद्वानों में विलियम जोन्स का नाम उल्लेखनीय है। उसने संस्कृत का गंभीरता पूर्वक अध्ययन किया। उसने पाया कि संस्कृत का ग्रीक और लैटिन से निकट संबंध है। उसने कालिदास के नाटक "शकुंतला" का अंग्रेजी में अनुवाद किया। उसने भारतीय कानून की एक संहिता भी तैयार की। उसने 1784 ई० में कलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की। इस संस्था के विद्वानों ने अपने अध्ययन के द्वारा पाया कि भारत की प्राचीन सभ्यता काफी उन्नत थी। इस सोसायटी ने प्राचीन और मध्यकालीन भारत के संबंध में अध्ययन को हमारे देश और पूरे यूरोप में प्रोत्साहित किया। जोन्स और अन्य विद्वानों की इच्छा थी कि भारत एक बार फिर उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़े।

भारत के पुनर्निर्माण के संबंध में ईसाई धर्म प्रचारकों के विचार भिन्न थे। उन्होंने भारतीय धर्मो को कुरीतियों से भरा पाया। मूर्त्ति पूजा हर जगह प्रचलित थी। उनके अनुसार ईसाई धर्म अपनाने और पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण करने से ही भारत का कल्याण हो सकता था। उन्होंने स्वतंत्रतापूर्वक भारत आने के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला। 1813 ई० के चार्टर ऐक्ट के अनुसार उनकी बात मान ली गई। उसके बाद अंग्रेज और अमरीकी ईसाई धर्म प्रचारक देश के कोने-कोने में फैल गए। धर्म प्रचार के अतिरिक्त उन्होंने समाज सेवा के काम भी किए। उन्होने अस्पताल खोले और शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। उनकी शिक्षा संस्थाओं ने भारत के शहरी समाज पर गहरा प्रभाव डाला।

भारत में दिलचस्पी रखने वाला एक और समूह इंग्लैंड में था। इसके सदस्य पूर्व के देशों की पुरानी सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान की प्रतिष्ठा करते थे। किंतु उनका यह भी विचार था कि वे अब समय के अनुकूल नहीं हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में इसी विचार वाले ब्रिटिश सरकार में ऊँचे पदों पर थे। उन्होंने भारतीयों पर आधुनिक यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान ग्रहण करने के लिए जोर दिया। उनका विचार था कि इसी से भारत फिर उन्नति कर सकता है।

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में भारत में विभिन्न विचार विभिन्न दिशाओं से आए। काफी लंबे समय तक ब्रिटिश प्रशासक और भारतीय नेता इस बात पर बहस करते रहे कि देश में किस प्रकार की शिक्षा पद्धति लागू की जाए।

नई शिक्षा पद्धति

कंपनी का शासन शुरू होने के समय देश में शिक्षा के लिए पाठशाला, मकतब, टोल और मदरसा थे। प्रारंभिक स्तर पर छात्रों को स्थानीय भाषाओं में लिखे धार्मिक पुस्तकों के उद्धरण, पत्र-लेखन और पहाड़े पढ़ाए जाते थे। इस शिक्षा से वे सिर्फ साक्षर हो जाते थे। वे सिर्फ पारिवारिक धंधे का हिसाब-किताब रख पाते थे। उच्च शिक्षा मुख्यत: ब्राह्मण और उच्च वर्गीय मुसलमान ही प्राप्त करते थे। वे व्याकरण, संस्कृत, अरबी और फारसी भाषा तथा साहित्य, कानून, तर्कशास्त्र, चिकित्सा विज्ञान तथा खगोल शास्त्र का विशेष अध्ययन करते थे। उनकी पढ़ाई के आधार पुराने ग्रंथ और उन पर लिखे गए भाष्य थे। कंठस्थ करना पढ़ाई का एकमात्र तरीका था। शिक्षा पद्धति काफी पिछड़ी हुई थी। उस समय यूरोप में पर्यवेक्षण, प्रयोग और आलोचना के तरीकों के आधार पर विज्ञान ने काफी प्रगति की थी। किंतु भारतीय लोगों को उसके बारे में कुछ मालूम नहीं था।

काफी समय तक कंपनी के क्षेत्र में पुरानी शिक्षा पद्धति बनी रही। कंपनी की सरकार ने काफी समय तक शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया। पुरानी शिक्षा पद्धति भी बुरी हालत में पहुँच गई। विद्वानों तथा शिक्षा संस्थाओं को पुराने भारतीय शासकों ने जमीन दी थी। वह जमीन अंग्रेजों ने छीन ली। जब कंपनी सिर्फ व्यापारिक कार्य करती थी तभी अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने के लिए पहले मद्रास और फिर बंगाल तथा बंबई में कुछ स्कूल खुले थे। उनका संचालन ईसाई धर्म प्रचारक करते थे। भारतीय राजे और धनी लोग उन्हें आर्थिक सहायता देते थे। उन स्कूलों में कंपनी के

भारतीय कर्मचारियों के घर के बच्चे पढ़ते थे। भारतीयों को यह समझने देर नहीं लगी कि नौकरी और व्यवसाय के लिए अंग्रेजों से संपर्क स्थापित करने में अंग्रेजी भाषा सहायक होगी।

कंपनी की सरकार की सहायता से कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना क्रमश. 1781 और 1791 ई० में हुई। उनकी स्थापना का उद्देश्य भारतीयों को प्रशिक्षित करना था जिससे वे प्रशासन के कार्यों में अंग्रेज अफसरों की सहायता कर सकें। उनके पाठ्यक्रम पुराने ढंग के थे। 1801 ई० में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज बना। अंग्रेज प्रिंसिपल के साथ कुछ भारतीय विद्वान वहाँ काम करने लगे। उनका उद्देश्य अंग्रेजों को भारतीय भाषाओं, इतिहास, कानून और रीति-रिवाजों से परिचित कराना था। उन्होंने बँगला की पहली प्रवेशिका, उर्दू का एक शब्दकोश और हिंदी का एक व्याकरण बनाया। 1813 ई० में कानून द्वारा कंपनी को भारत में शिक्षा के विकास पर एक लाख रुपए खर्च करने को कहा गया। किंतु 1835 ई० तक कंपनी ने भारत में शिक्षा के विकास के लिए कुछ खास काम नहीं किया।



मैकाले

उस समय बंगाल में एक बड़े विद्वान और चिंतक थे। उनका नाम राममोहन राय था। उन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का गहरा अध्ययन किया था। उनका विचार था कि भारत की उन्नति पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के द्वारा ही हो सकती है। राममोहन राय और उनके सहयोगी अपने प्रयासों से कंपनी की सरकार को यह विश्वास दिला सके कि भारत के लिए पाश्चात्य शिक्षा की बड़ी उपयोगिता है। उस समय विलियम बैंटिक भारत का गवर्नर-जनरल था। लॉर्ड मैकाले उसका एक महत्त्वपूर्ण सलाहकार था। मैकाले राममोहन राय के विचारों से सहमत था। गवर्नर-जनरल ने उसकी सलाह पर 1835 ई० में भारतीयों को पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने का निर्णय किया।

नई शिक्षा पद्धति के अनुसार प्रारंभिक स्कूलों में भारतीय भाषाओं की जगह अंग्रेजी ने नहीं ली। किंतु उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में संस्कृत और अरबी की जगह अंग्रेजी का प्रयोग होने लगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजी शिक्षा की माँग बढ़ी। 1844 ई० में सरकार ने घोषणा की कि अंग्रेजी जानने वाले भारतीयों को नौकरियों में प्राथमिकता दी जाएगी। इससे अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार अधिक हुआ।

अंग्रेजी शिक्षा पाकर भारतीय आधुनिक विचारों और वैज्ञानिक चिंतन के तरीकों के बारे में जान सके। वे स्वतंत्रता और जनतंत्र के विचारों से भी परिचित हो गए। किंतु थोड़े से लोग ही अंग्रेजी शिक्षा पा सके। नई शिक्षा पद्धति ने कई आंदोलनों को जन्म दिया।

आधुनिक भारत के अग्रदूत

अधिकतर आधुनिक आंदोलन बंगाल में शुरू हुए। सबसे पहले ब्रिटिश शासन बंगाल में कायम हुआ था। इस प्रकार यह प्रांत अन्य प्रांतों की अपेक्षा पाश्चात्य शिक्षा, संस्कृति और विचारों के प्रभाव में पहले आया।

राममोहन राय

सिर्फ पाश्चात्य संपर्क के कारण ही भारत आधुनिक युग में नहीं आ सका। इस परिवर्तन में उसके पुराने ज्ञान-विज्ञान के संबंध में नए सिरे से पूरी जानकारी ने भारी भूमिका अदा की। पुराने ज्ञान-विज्ञान की पूरी जानकारी, कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी और अन्य विद्वानों के कार्यों से प्राप्त हुई। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि प्राचीन ज्ञान-



राजा राममोहन राय

विज्ञान की जानकारी न होने के कारण ही देश मे जड़ता और तर्कहीनता आई है। राम-मोहन राय इस क्षेत्र में नेता थे। उन्होंने समाज सुधार के लिए कई आंदोलन चलाए। उन्होंने भारत के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान और पश्चिमी देशों के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से प्रेरणा तथा प्रकाश पाया।

राममोहन राय का जन्म 1774 ई० मे एक रूढ़िवादी ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। उन्होंने बनारस मे संस्कृत और पटना में अरबी फारसी का अध्ययन किया। एक अंग्रेज के अधीन नौकरी करते हुए उन्होंने अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन किया। सिर्फ सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र में उन्होंने मूर्ति पूजा की आलोचना करते हुए एक लेख प्रकाशित किया। उन्हें घर से निकाल दिया गया। वे अपने अध्ययन से इस नतीजे पर पहुँचे कि लोग व्यर्थ ही धर्ममतों, पूजा के रूपों और धार्मिक कृत्यों को महत्त्व देते है। इनसे विभिन्न धर्म के अनुयायियों के बीच फूट पड़ जाती है। राममोहन राय ने इस संबध में लेख और पुस्तकें प्रकाशित की। "एक सर्वोच्च ईश्वर" के सिद्धांत पर एक व्यापक धर्म के पक्ष मे उन्होने तर्क प्रस्तुत किए।

उनका विश्वास था कि हिंदू धर्म की कुरीतियो को दूर करने के लिए मूल शास्त्रों में निहित सत्य को जनता तक पहुँचाना चाहिए। उन्होंने काफी परिश्रम से वेदों और उपनिषदों के बँगला अनुवाद प्रकाशित किए। उन्होंने दिखलाया कि इन ग्रंथों में सिर्फ

"एक ईश्वर" की बात है और मूर्ति-पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है । आगे चलकर उन्होंने अपने इर्द-गिर्द शिक्षित लोगों का एक समूह जमा कर लिया । 1828 ई० में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की । उसने मूर्ति-पूजा, जाति-भेद और अन्य निरर्थक धार्मिक कृत्यों को छोड़ दिया ।

रूढ़िवादी हिंदू उनकी तीखी आलोचना करते थे । किंतु ब्रह्म समाज ने सुधारों के द्वारा हिंदू समाज को मजबूत बनाया । बाद में ब्रह्म समाज का प्रसार सारे देश में हुआ । इसी प्रकार के सुधार आंदोलन पश्चिमी भारत में प्रार्थना समाज और उत्तर भारत में आर्य समाज ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शुरू किए ।

राममोहन राय सिर्फ धार्मिक सुधारक ही नहीं थे । उन्होंने सब प्रकार की सामाजिक कुरीतियों तथा अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष किया । उन्होंने "सती प्रथा" को बंद करवाने में अंग्रेजों की मदद की । सतीदाह के अंतर्गत पति के मरने पर विधवा स्त्री को पति की चिता पर जिंदा जला दिया जाता था । सरकारी सूत्रों के अनुसार 1815 और 1828 ई० के बीच 8,000 स्त्रियों को जलाया गया था । राममोहन राय ने सिद्ध कर दिया कि सती प्रथा का कोई धार्मिक आधार नहीं है । उन्होंने जन-आंदोलन शुरू किया । उन्होंने लोगों के हस्ताक्षर से ब्रिटिश संसद को याचिका भेजी । 1829 ई० में सरकार ने कानून द्वारा इस प्रथा को बंद कर दिया ।

उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा पर जोर दिया । उन्होंने कई शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना में सहायता की । उन शिक्षा-संस्थाओं में भारतीय ज्ञान-विज्ञान के साथ ही पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा भी दी जाती थी । उनके प्रयासों से 1817 ई० में कलकत्ता में हिंदू कालेज बना ।

डिरोजियो और 'तरुण-बंगाल' आंदोलन

राममोहन राय के सहयोगी डेविड हेयर ने हिंदू कालेज की स्थापना में काफी सहायता की । वह स्काटलैंड से घड़ियाँ बेचने कलकत्ता आया था । किंतु बाद में उसने बंगाल में आधुनिक शिक्षा के प्रसार को अपना उद्देश्य बना लिया । 1826 ई० में सत्रह-वर्षीय हेनरी विवियन डिरोजियो हिंदू कालेज में शिक्षक के रूप में आया । कुछ ही समय में उसने कालेज के प्रतिभाशाली छात्रों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया । उसने उन्हें स्वतंत्र चिंतन तथा तर्क बुद्धि के प्रयोग की ओर प्रोत्साहित किया । उसने अपने अध्यापन तथा विचार-विमर्श के द्वारा नए विचारों का प्रचार किया । वह कलकत्ता के तरुण हिंदू



हैनरी लुई विवियन डिरोजियो

छात्रों मे लोकप्रिय हो गया। उसके छात्रो को "तरुण बंगाल" के सम्मिलित नाम से पुकारते थे। उसके छात्रों ने पुराने रीति-रिवाजो, सामाजिक और धार्मिक परंपराओ का मजाक उड़ाया और उनकी अवहेलना की। उन्होंने विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की मॉग की। वे नारी-शिक्षा के पक्षपाती थे। वे फ्रांसीसी क्रांति की परंपराओ और इंग्लैंड के उदार चिंतन के प्रति झुके थे। किंतु उनके इन विचारों से कलकत्ता के रूढ़िवादी हिंदू उनसे सशंकित थे। उन्होंने अधिकारियो पर डिरोजियो को नौकरी से हटाने के लिए दबाव डाला।

डिरोजियो की बर्खास्तगी और 1831 ई० मे उसकी अकस्मात मृत्यु के बाद भी "तरुण बंगाल" आंदोलन चलता रहा। नेता-विहीन होने पर भी उसके अनुयायी अध्यापन और पत्रकारिता के द्वारा नए विचारों का प्रचार करते रहे। किंतु आगे चलकर राम-मोहन राय और उनके अनुयायियो का संयत दृष्टिकोण लोगो को समाज सुधार के पक्ष में करने मे अधिक सफल हुआ।

ब्रिटिश शासन और पाश्चात्य प्रभाव के प्रसार के कारण अन्य क्षेत्रो मे भी भारत को आधुनिक बनाने के आंदोलन चले। समाज सुधारको ने जनमत तैयार किए जिनसे सरकार को समाज सुधार की दिशा में कदम उठाने के लिए बल मिला।

समाज-सुधार

भारतीय समाज के लंबे समय तक जड़वत रहने के कारण उसमे कई प्रकार की कुरीतियाँ आ गई थी। समाज के कमजोर सदस्य, बच्चे, स्त्रियाँ, छोटी जातियो के लोग तथा गरीब आमतौर मे उनके शिकार हो जाते थे।

देश के कुछ भागों में "शिशु-हत्या" प्रचलित थी। कई लोग छोटी लड़कियो को मार देते थे। उनके यहाँ लड़कियों की शादी खर्चीली थी। यही नही, एक छोटे दायरे के अदर ही उनकी शादी करनी पड़ती थी। लड़कियो के कुँवारी रह जाने पर परिवार की बदनामी होती थी और पाप लगता था। इससे बचने के लिए जन्म लेते ही लड़कियों को मार दिया जाता था। कई जगह धार्मिक कृत्य के रूप में नर बलि दी जाती थी। सरकार ने इन प्रथाओ को रोकने के लिए कानून बनाए।

उन्नीसवी शताब्दी के शुरू में स्त्रियों की हालत बहुत बुरी थी। जन्म से लेकर मृत्यु तक वे उत्पीड़न और अपमान सहती रहती थी। बचपन में ही शादी हो जाने के कारण वे शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाती थी। इसके साथ ही यह अंधविश्वास था कि पढ़ी-लिखी लड़की जल्द विधवा हो जाती है। उच्च जातियो की विधवा को "सती" होना पड़ता था या सारी जिंदगी परिवार के लोगों की दासी बन कर रहना पड़ता था। बाल-विधवा की दुबारा शादी नही हो सकती थी। किंतु पुरुष जितनी चाहे शादियाँ कर सकते थे। स्त्रियों को अचल संपत्ति मे कोई हिस्सा नही मिलता था।

आधुनिक शिक्षा के प्रसार के कारण स्थिति बदली। ईसाई धर्म प्रचारकों तथा ब्रह्म-समाज ने लड़कियो की प्रारंभिक शिक्षा के लिए काफी काम किए। इस क्षेत्र में पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने बहुत काम किए। रूढ़िवादी हिंदुओं ने उनका कड़ा विरोध किया।

विद्यासागर ने शादी-प्रथा में सुधार करवाए। उन्होंने बाल विवाह और पुरुषो के बहु विवाह के विरुद्ध आदोलन किए। उन्ही के प्रयासो से 1856 ई० में विधवा-विवाह के लिए कानून बना। किंतु सामाजिक कुरीतियाँ जल्दी नहीं खत्म होती। इनमे से कई अब भी हमारे बीच हैं।

दरिद्रता के कारण कई लोग दूसरों के गुलाम जैसे हो गए थे। गरीब लोगो को अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में भेजा जाता था और वहाँ उनसे गुलाम जैसा काम लिया जाता था। हिंदुस्तान मे अंग्रेज और धनी हिंदुस्तानी उनसे घरेलू काम करवाते थे। 1843 ई० मे एक कानून बना कर इसे खत्म कर दिया गया।

ऊपर हमने जो कुछ कहा है वह अधिकांशतः बंगाल के मध्यम तथा उच्च वर्गों के कार्यों के बारे में है। वहाँ जो परिवर्तन हुए वे ही सारे देश में फैल गए। उपर्युक्त दो वर्गों ने आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से सबसे अधिक फायदा उठाया। किंतु अधिकतर लोग गाँवों में गरीब और निरक्षर किसानों के रूप में पड़े रहे। जमींदार और शिक्षित लोगों ने उनकी कोई सहायता नहीं की। कई बार किसानों ने विद्रोह किए।

उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू के वर्षों में जो आंदोलन हुए उनमें राष्ट्रीयता, धर्म-निरपेक्षता और क्रांतिकारी परिवर्तनों के बीज निहित थे। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के उदय और सफलता में भारी भूमिका अदा की। इस प्रकार भारत को विदेशी शासन से स्वतन्त्र कराने तथा एक न्यायोचित समाज के निर्माण की दिशा में देश के लोगों को आगे बढ़ाने में उनका बड़ा हाथ था।

अभ्यास

1. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :**
   1. जाति-व्यवस्था ने भारतीय समाज को किस प्रकार हानि पहुँचाई ?
   2. भारतीय भाषाओं और संस्कृति के अध्ययन के संबंध में यूरोपीय विद्वानों का क्या दृष्टिकोण था ?
   3. अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ब्रिटिश सरकार ने भारत में शिक्षा-प्रसार के लिए क्या प्रयत्न किए ?
   4. पाश्चात्य शिक्षा को भारतीयों के लिए क्यों लाभदायक समझा जाता था ?
   5. शिक्षा के किन पहलुओं पर राजा राममोहन राय और विलियम बेंटिक के विचार मेल खाते थे ?
   6. भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए क्या कदम उठाए गए ?
2. **नीचे भारतीय समाज पर अंग्रेज़ी शिक्षा के कुछ प्रभावों का जिक्र है। बतलाओ कि उनमें से प्रत्येक ने भारतीय समाज की प्रगति में कैसे सहायता की ?**

   (क) भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोग एक दूसरे को अच्छी तरह समझ सके।

   (ख) अनेक भारतीयों को आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं के बारे में जानकारी हुई।

   (ग) अनेक भारतीय वैज्ञानिक दृष्टि से सोचने लगे।
3. **निम्नलिखित प्रश्नों के साथ उनके संभावित उत्तर दिए गए हैं। सही उत्तर पर (✓) निशान लगाओ।**
   1. समाज-सुधार के अधिकतर आंदोलन बंगाल में शुरू हुए क्योंकि---

      (क) ब्रिटिश शासन सबसे पहले वहीं स्थापित हुआ।

(ख) ईसाई धर्म-प्रचारक वहाँ अधिक सक्रिय थे।

(ग) आम जनता अधिक उत्पीड़ित थी।

(घ) वहाँ की जनता शिक्षित हो गई थी।

2. राजा राममोहन राय के संबंध में निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन नहीं सही है ?

(क) वे चाहते थे कि अंग्रेज भारतीय समाज के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करें।

(ख) उन्होंने हिन्दू धर्म को पूरी तरह छोड़ दिया।

(ग) उन्होंने प्राचीन भारतीय विचारों और आधुनिक पाश्चात्य चिंतन के समन्वय के आधार पर अपना दर्शन विकसित किया।

(घ) वे अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में थे।

4. करने के लिए रुचिकर कार्य :

1. राजा राममोहन राय जिन सामाजिक सुधारों को चाहते थे उनकी सूची बनाओ और बताओ कि उनमें से कौन-से सुधार सरकार ने किए।

2. भारतीय और पाश्चात्य शिक्षा पद्धति का तुलनात्मक चार्ट निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखकर बनाओ: (क) उद्देश्य, और (ख) समाज पर प्रभाव।

अध्याय 7

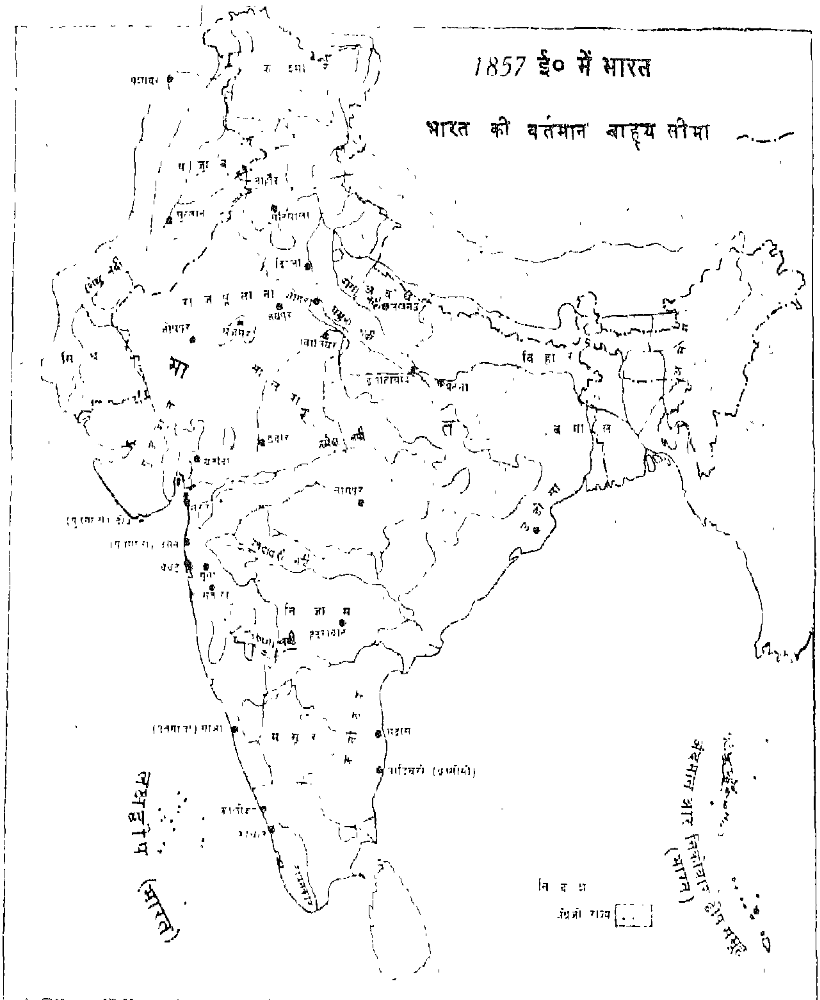
सन सत्तावन का विद्रोह

भारतीय इतिहास मे 1857 ई० अत्यंत महत्त्वपूर्ण वर्ष है। उसी वर्ष भारत में ब्रिटिश राज के विरुद्ध सबसे बड़ा सशस्त्र विद्रोह हुआ। विद्रोह का आरंभ 10 मई, 1857 ई० के दिन मेरठ के सिपाहियों की बगावत से हुआ। दूसरे दिन वे सिपाही दिल्ली पहुँचे, जहाँ पहुँचकर वे वहाँ के सिपाहियों के साथ मिल गए। दिल्ली पर उनका कब्जा हो गया। 80 वर्ष के बूढ़े मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर को भारत का शासक घोषित कर दिया गया। ब्रिटिश शासन के प्रति पुराना असंतोष भड़क उठा। विद्रोह तेजी से देश के अधिकतर भागों में फैल गया। उसने भारत में ब्रिटिश शासन की जड़ें हिला दीं। विद्रोह को दबाने में अंग्रेजों को एक साल लग गया, किंतु पूरी तरह शांति स्थापित करने मे अनेक वर्ष लगे।

ब्रिटिश शासन का प्रारंभिक प्रतिरोध

पलासी की लड़ाई के बाद के सौ वर्षों मे भारत ने धीरे-धीरे अपनी स्वतंत्रता खो दी थी। वस्तुत सारा देश अंग्रेजों के अधीन हो गया था। मगर भारत पर अंग्रेजों का कब्जा आसानी से नहीं हो सका। शायद ही ऐसा कोई वर्ष रहा हो जिसमें देश के किसी न किसी भाग मे विद्रोह न हुआ हो।

कई विद्रोह तो वर्षों तक चलते रहे। उदाहरण के लिए उड़ीसा मे खोंड विद्रोह 1836 ई० में शुरू हुआ और 1855 ई० तक चलता रहा। बंगाल में अंग्रेजों के खिलाफ फरायजी लगभग 30 वर्षों तक लड़ते रहे। रायबरेली के सैयद अहमद का विद्रोह कई दशकों तक चलता रहा। कोल और संथाल लोगों ने भी विद्रोह किए। अनेक जगहों में स्थानीय शासक और सरदार विद्रोह कर उठे। सिपाहियों ने भी कई स्थानों पर विद्रोह



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जल प्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।



भारतीय सिपाही 1857 के विद्रोह के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी के सिपाहियों पर हमला करते हुए।

किए। उनमें सबसे भयंकर विद्रोह वेल्लोर में हुआ। वेल्लोर के विद्रोह के पीछे टीपू सुल्तान के लड़कों का हाथ था। किन्तु लगभग सारे प्रारंभिक विद्रोह एक दूसरे से अलग थे। वे कुछ खास इलाकों तक ही सीमित रहे। इसलिए उनको दबाने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

किन्तु 1857 ई० का विद्रोह पहले के सारे विद्रोहों से अधिक व्यापक था। ब्रिटिश सरकार के लिए वह एक गंभीर चुनौती था। कई दृष्टियों से यह विद्रोह भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व था। ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए विभिन्न क्षेत्रों के सिपाही और कई राजे एक जुट हो गए। समाज के महत्त्वपूर्ण समुदाय—जमींदार, किसान, दस्तकार और बुद्धिजीवी—विद्रोह में शामिल हो गए। वे राजाओं, सरदारों और सिपाहियों के साथ मिलकर समान लक्ष्य के लिए लड़ने लगे। विद्रोह की व्यापकता और जन-आधार को देखते हुए इसे भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध कहते हैं।

ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष

विद्रोह का कारण भारत में ब्रिटिश नीतियों से उत्पन्न असंतोष था। पिछले अध्यायों में तुम इन नीतियों के संबंध में पढ़ चुके हो। तुम अब तक असंतोष के कुछ कारणों को भी समझ गए होगे। कुछ दिनों में असंतोष बढ़ता जा रहा था। मेरठ में सैनिकों की बगावत के साथ असंतोष ने विद्रोह का रूप ले लिया।



नाना साहब

पुराने भारतीय शासकों में असंतोष

तुम अब तक देख चुके हो कि साम्राज्य के विस्तार की नीति के कारण भारतीय शासकों और सरदारों में अंग्रेजों के प्रति असंतोष व्याप्त हो गया था। अंग्रेजों ने भारतीय शासकों से संधियाँ की थीं किन्तु वे मनमाने ढंग से संधियों की शर्तों को तोड़ देते थे। सिंध, पंजाब और अवध को अंग्रेजों ने हथिया लिया था। इससे काफी असंतोष था। डलहौजी द्वारा दृढ़ता से लय-नीति लागू करने के कारण असंतोष काफी बढ़ गया। 1854 ई० में झाँसी को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। मृत राजा के दत्तक पुत्र को उत्तराधिकारी मानने से डलहौजी ने इंकार कर दिया। 1851 ई० में पेशवा बाजीराव द्वितीय मर गया। उसके दत्तक पुत्र नाना साहब को अंग्रेजों ने पेशवा के रूप में पेंशन देने से इंकार कर दिया। स्वयं मुगल बादशाह को कह दिया गया कि उसके बाद उसके उत्तराधिकारियों को

बादशाह नहीं माना जाएगा । इन कार्रवाइयों से शक्ति-विहीन पुराने शासक परिवारों में असंतोष उत्पन्न हो गया । अन्य शासक परिवारों को भय हो गया कि उनकी भी यही गत होगी ।

जिन इलाकों पर अंग्रेजों ने कब्जा किया उनमें पुराने सरदारों और जमींदारों को खत्म करने की नीति अपनाई गई । अनेक सरदारों और जमींदारों से उनकी जमीन छीन ली गई । अंग्रेजों ने नई भूमि-व्यवस्था लागू की जिसके कारण कई पुराने जमींदार परिवारों के अधिकार खत्म हो गए । इन जमींदार परिवारों को पुराने शासकों से अपनी सेवा के कारण जमीन मिली थी । ब्रिटिश साम्राज्य में पुराने भारतीय राज्यों के मिलने के बाद उनकी पुरानी प्रशासन प्रणाली भी खत्म कर दी गई । पुरानी प्रशासन प्रणाली समाप्त होने के कारण अनेक लोग बेरोजगार हो गए । राज्य की सेवा में लगे विद्वान लोगों को नौकरियों से हाथ धोना पड़ा । उनका संरक्षण भी खत्म हो गया । पुराने शासकों से भरण-पोषण के लिए उन्हें मिली जमीन उनसे छीन ली गई । नया प्रशासन रखने की नीति अपनाई गई । भारतीय राज्यों पर अंग्रेजों द्वारा कब्जा करने के बाद उनके बहुतेरे सैनिक बेरोजगार हो गए । यही हाल भारतीय शासकों के सहायक संधि में शामिल होने पर भी हुआ । राज्यों के संरक्षण पर निर्भर अनेक दस्तकार बर्बाद हो गए । इस प्रकार भारतीय राज्यों पर अंग्रेजों का कब्जा हो जाने पर सिर्फ शासक ही प्रभावित नहीं हुए । पुरानी व्यवस्था से संबद्ध हजारों लोगों का बुरा हाल हो गया ।

किसानों और दस्तकारों में असंतोष

अंग्रेजों द्वारा लागू की गई नई भूमि-व्यवस्था में किसानों की हालत खराब हो गई । पुराने जमींदारों को हटाने से किसानों की हालत नहीं सुधरी । कई जगहों में लगान की मात्रा बढ़ा दी गई । इससे किसानों की हालत और भी बुरी हो गई । पुराने शासकों और जमींदारों के लिए किसानों के दिल में आदर-भाव बना रहा । ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों के कारण दस्तकारों की बर्बादी के बारे में तुम पढ़ चुके हो । इंग्लैंड से तैयार माल भारत आने के कारण पुरानी दस्तकारियाँ बर्बाद हो गईं । पीड़ित किसान और दस्तकार ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने की लड़ाई में कूद पड़े ।

धर्म और जाति के नष्ट होने का डर

ब्रिटिश नीति और दृष्टिकोण से जनता में यह भय आ गया था कि ब्रिटिश सरकार

धर्म और संस्कृति खत्म करने पर तुली है। लोगों ने अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार उन्हें ईसाई बनाने की नीति पर चल रही है। कुछ ईसाई धर्म प्रचारकों ने खुले आम हिंदू और इस्लाम धर्मों तथा लोगों के पुराने रीति-रिवाजों की निंदा की। ब्रिटिश सरकार ने समाज-सुधार के लिए कुछ कदम उठाए थे। उनसे लोगों का भय और भी बढ़ गया था। सती-प्रथा कानून द्वारा खत्म कर दी गई थी। एक अन्य कानून द्वारा ईसाई बनने वालों को पैतृक संपत्ति में हिस्सा दे दिया गया था। अंग्रेजों ने बहुधा जाति-नियमों की उपेक्षा की। सेना, जेल, रेलगाड़ी के डिब्बों आदि में जाति का ख्याल नहीं रखा गया। कई नए शिक्षा संस्थान स्थापित किए गए थे। उनमें से अधिकांश ईसाई धर्म प्रचारकों ने खोले थे। लोग उन्हें संदेह की नजर से देखते थे। रूढ़िवादी विचारधारा वाले लोगों में इन परिवर्तनों से काफी असंतोष था। इन परिवर्तनों को लागू करने वाले विदेशी थे इसीलिए कई लोगों ने इन्हें मानने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार बहुत लोगों को धर्म के नाम पर अंग्रेजों के विरुद्ध उभाड़ा गया। कई मौलवियों ने अंग्रेजों के खिलाफ धर्म युद्ध (जेहाद) का नारा दिया था। फरायजियों और रायबरेली के सैयद अहमद के विद्रोहों की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। ब्रिटिश सरकार ने लोगों की धार्मिक धारणाओं का तनिक भी ख्याल नहीं रखा। इस कारण लोगों की धार्मिक भावनाओं को काफी धक्का लगा। विद्रोहों के भड़कने का तात्कालिक कारण यही बना।

असंतुष्ट सैनिक

सेना में भारतीय सैनिकों के लिए कोई अच्छा भविष्य नही था। उन्नति के सारे मार्ग बंद थे। सेना में ऊँची जगहें सिर्फ यूरोपीय अफसरों के लिए सुरक्षित थीं। भारतीय और यूरोपीय सैनिकों के वेतन-मानों में बड़ा अंतर था। भारतीय सैनिकों को उनके यूरोपीय अफसर घृणा की दृष्टि से देखते थे और उन्हें निकृष्ट प्राणी समझते थे। भेदभाव के कारण उत्पन्न असंतोष को वेतन की अनिश्चितता ने बढ़ा दिया। लड़ाई में जाने पर उन्हें अतिरिक्त भत्ता मिलता था। लड़ाई खत्म होने और जीते गए इलाकों को साम्राज्य में मिला लिए जाने पर वह भत्ता बंद कर दिया जाता था। इसके कारण सैनिकों ने कई बार विद्रोह किए। धार्मिक भावना पर आघात पहुँचने के कारण उनका असंतोष और भी बढ़ गया। एक विस्फोटक स्थिति आ गई। उन दिनों हिंदू समझते थे कि समुद्र पार जाने से उनका धर्म नष्ट हो जाएगा। किंतु ईस्ट इंडिया कंपनी के सैनिकों को आवश्यकता पड़ने पर समुद्र पार भी जाना पड़ता था। अन्य भारतीयों की तरह ही भारतीय सैनिकों

मे यह धारणा आ गई कि उनका धर्म खतरे में है।

इस तरह समाज के अनेक समुदायो में विदेशी शासन के प्रति असंतोष बढ़ रहा था। उस समय भारत में सैनिको को एक नए प्रकार की राइफल दी गई। उसका कारतूस विद्रोह का तात्कालिक कारण बना। कारतूसो को गाय और सुअर की चर्बी से बंद किया जाता था। राइफल में कारतूस भरने के पहले उस पर लगे कागज को दाँत मे काटना पड़ता था। इन नए कारतूसो से हिंदुओं और मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची। मार्च, 1857 ई० मे बैरकपुर मे मंगल पांडेय के नेतृत्व मे भारतीय सिपाहियों ने कारतूसो को राइफलों मे भरने से इन्कार कर दिया। मंगल पांडेय को मार दिया गया और विद्रोह को जल्द ही दबा दिया गया। इसकी खबर पहुँचने पर 10 मई, 1857 ई० को मेरठ में विद्रोह भड़क उठा। 9 मई को कारतूस भरने से इन्कार करने पर 85 भारतीय सैनिकों को जेल की लंबी सजा सुनाई गई थी। दूसरे दिन अन्य भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। उन्होंने यूरोपीय अफसरों को मार दिया और अपने साथियो को छुड़ा लिया। दूसरे दिन वे दिल्ली गए।



हिंदुस्तान का अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर

विद्रोह के मुख्य केंद्र

विद्रोही सेना ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। उसने बहादुर शाह को भारत का बादशाह घोषित कर दिया। इसके बाद विद्रोह देश के अन्य भागों में फैला। बहुत दिनों से मुगल बादशाह की कोई परवाह नहीं करता था। एकाएक वह विदेशी शासन को



तात्या टोपे

उखाड़ फेंकने वालों की एकता का केंद्रबिंदु बन गया। जिन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर विद्रोह नहीं हुए, वहां भी असंतोष के कारण अंग्रेजों में घबड़ाहट हो गई। असम, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, सिंध, राजस्थान, महाराष्ट्र, हैदराबाद, पंजाब और बंगाल में विद्रोह हुए। इनमें से कुछ जगहों में विद्रोह स्थानीय या फौजी बैरकों तक ही सीमित रहा और उसे आसानी से दबा दिया गया। कई जगहों में अंग्रेजों ने खतरे को टालने के लिए पहले ही भारतीय सिपाहियों से उनके हथियार रखवा लिए थे।

दिल्ली, अवध, रुहेल खंड, बुंदेल खंड, इलाहाबाद के आसपास के इलाकों, आगरा, मेरठ और पश्चिमी बिहार में विद्रोह काफी व्यापक और भयंकर था। इन इलाकों में लोगों ने भारी संख्या में विद्रोह में भाग लिया और भयंकर लड़ाइयां लड़ीं। बिहार में विद्रोही सेना का नेतृत्व बाबू कुँवर सिंह कर रहे थे। वहां सेना ने बिहार के कई हिस्सों को स्वतंत्र किया और वह लखनऊ तथा कानपुर में विद्रोहियों की सहायता के लिए आई। दिल्ली में सेना का मुख्य सेनापति बख्त खां था। कानपुर में विद्रोहियों ने नाना साहब को पेशवा घोषित कर दिया। अजीमुल्ला उसका मुख्य सलाहकार बना। नाना साहब के सैनिकों का नेतृत्व तात्या टोपे कर रहा था। वह एक बहादुर और योग्य नेता था। झाँसी में मृत राजा की विधवा रानी लक्ष्मीबाई को शासक घोषित कर दिया गया। उसने लड़ाई में अपनी सेना का नेतृत्व बहादुरी से किया। लुधियाना के सिक्ख सैनिक पूर्वी उत्तर प्रदेश में गोरखपुर और आजमगढ़ के विद्रोहियों से जा मिले। जुलाई के शुरू में वाजिद अली शाह के नौजवान बेटे को अवध की गद्दी पर बैठा दिया गया। उसकी माँ

हजरत महल उसकी ओर से शासन करने लगी। विद्रोहियों ने लखनऊ रेजिडेंसी पर घेरा डाल दिया, उसी में अंग्रेज सैनिकों, अफसरों और उनके परिवार ने शरण ली थी। यह घेरा कई महीनों तक रहा।

विद्रोह का दमन

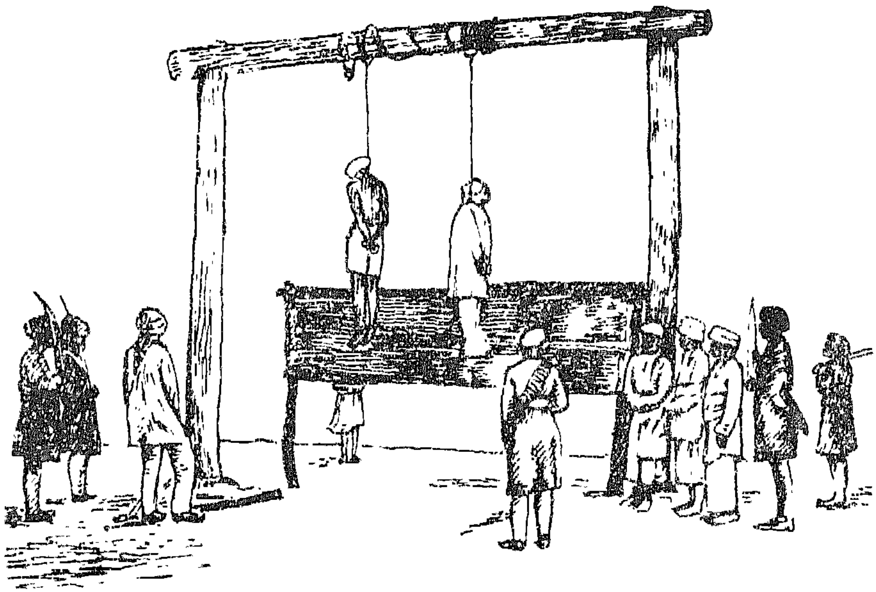
पूरे विद्रोह के दौरान हिंदू और मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर लड़े। विद्रोही नेताओं ने बहादुर शाह को हिंदुस्तान के वास्तविक बादशाह के रूप में माना। विदेशी शासन के खिलाफ लड़ने वालों के लिए वह एकता का प्रतीक था। किंतु इतना व्यापक होने के बावजूद विद्रोह एक साल से थोड़ा ही अधिक टिक सका। सितंबर, 1857 ई० में ब्रिटिश सैनिकों ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। मार्च, 1858 ई० में लखनऊ ब्रिटिश सैनिकों के हाथों में आ गया। हजरत महल ने समर्पण करने से इन्कार कर दिया। वह नेपाल भाग गई। रानी लक्ष्मी बाई झाँसी की रानी के नाम से प्रसिद्ध है। उसे झाँसी छोड़ने



झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई

पर मजबूर कर दिया गया। ग्वालियर का महाराजा अंग्रेजों के पक्ष में था, किंतु उसके सैनिक विद्रोहियों से जा मिले। तात्या टोपे की सहायता से झाँसी की रानी ने ग्वालियर पर कब्जा कर लिया, किंतु जून, 1858 ई० में वह लड़ती हुई मारी गई। अप्रैल, 1858 ई०

में एक सांघातिक घाव लग जाने के कारण बाबू कुँवर सिंह की मृत्यु हो गई। दिसंबर, 1859 ई० तक बाबू साहब के भाई के नेतृत्व में बिहार में लडाई चलती रही। नाना साहब नेपाल भाग गया। मध्य भारत और राजपूताने में तात्या टोपे अंग्रेजों से दो सालों तक लड़ता रहा। एक मित्र के विश्वासघात के कारण वह अंग्रेजों के कब्जे में आ गया। उसे फाँसी दे दी गई। 1858 ई० के अंत तक विद्रोह को बहुत हद तक दबा दिया गया। वैसे पूर्ण शांति स्थापित करने में वर्षों का समय लग गया।



1857 के विद्रोह को कुचलने के समय अंग्रेजों का अत्याचार। बहुत-से पकड़े गए विद्रोहियों को तोप के मुँह पर बाँधकर उड़ा दिया गया था और बहुतों को फाँसी के तख्ते पर लटका दिया गया था।

विद्रोह के दमन के दौरान अंग्रेज सैनिकों ने विद्रोही सेनाओं, सैनिकों और जनता के साथ अमानवीय व्यवहार किया। विद्रोह के दौरान कई जगहों में भारतीय सैनिकों ने भी निहत्थे अंग्रेजों तथा कैदियों के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया था। विजयी ब्रिटिश सेना ने बड़े पैमाने पर नियोजित रूप से बर्बरतापूर्ण कार्य किए। कई गाँवों को मिट्टी में

मिला दिया गया। बड़ी संख्या में लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। लोगों को अमानवीय यातनाएँ तथा अपमान झेलने पड़े। विद्रोह के अनेक नेता लड़ते हुए मारे गए। बहादुर शाह के लड़कों को पकड़ कर मार दिया गया। बहादुर शाह पर मुकद्दमा चलाया गया। उसे रंगून में निर्वासित कर दिया गया। वह वहीं 1862 ई० में मर गया। उसके मरने के साथ ही मुगल राजवंश का अंत हो गया।

विद्रोह का चरित्र

सन 1857 ई० का विद्रोह भारत के इतिहास का एक गौरवपूर्ण अध्याय है। पहले की अपेक्षा इस बार एक समान शत्रु के विरुद्ध देश के विभिन्न हिस्सों में कहीं अधिक एकता स्थापित हुई। विद्रोह के दौरान अनेक नेता और सैनिक आगे आए। उनकी बहादुरी और वीरता ने उन्हें अमर बना दिया। वे भारत की आजादी की लड़ाई में आगे आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करते रहे। रानी लक्ष्मी बाई, बाबू कुँवर सिंह, तात्या टोपे और बख्त खाँ की वीरता की कहानी हम लोगों को प्रेरणा देती रही है।

विद्रोह की कुछ मूलभूत कमजोरियाँ थीं। उन्हीं कमजोरियों ने उसकी सफलता में बाधा डाली। विद्रोह का नेतृत्व राजाओं और जमींदारों के हाथों में था। इनकी शक्ति ब्रिटिश विजय के कारण खत्म हो गई थी या खत्म हो रही थी। इनमें से कई लोग विद्रोह में ब्रिटिश शासन को अपने अस्तित्व के लिए खतरा समझ कर शामिल हुए। वे परंपरागत भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के प्रतिनिधि थे। वे उस समय भी पुराने विचारों से चिपके हुए थे। तुम पढ़ चुके हो कि संसार के अन्य भागों में अठारहवीं शताब्दी के दौरान कितने महत्त्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन हो रहे थे। विद्रोह के नेता विदेशी शासन को खत्म करने के उद्देश्य से लड़ रहे थे, किंतु विदेशी शासन के खत्म होने पर वे पुरानी व्यवस्था लाना चाहते थे।

आम जनता—सिपाहियों, किसानों, दस्तकारों और अन्य लोगों के शामिल होने के कारण विद्रोह का आधार जन केंद्रित हो गया। किंतु विद्रोह का नेतृत्व पुराने शासक कर रहे थे जिनकी शक्ति विदेशी शासन ने तोड़ दी थी। इसका अर्थ है कि जनता का पुराने शासकों से कोई भिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्य नहीं था। तुम्हें मालूम है कि यूरोप में जनतंत्र, राष्ट्रीयता और सामाजिक क्षमता के नए आंदोलन जोर पकड़ रहे थे। ब्रिटेन में आम जनता संगठित हो रही थी। वहाँ श्रमिक एक नए सामाजिक वर्ग के रूप में सामने आए थे। वे मजदूर संघों और राजनीतिक संगठनों के

अंतर्गत संगठित हो रहे थे। वे समान राजनीतिक अधिकारों तथा सामाजिक विषमता के उन्मूलन की माँग कर रहे थे। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि उनके कई नेताओं की सहानुभूति भारतीय विद्रोह के साथ थी। उन्होंने भारतीय जनता के प्रति ब्रिटिश सैनिकों के बर्बर व्यवहार की निंदा की। उनका विचार था कि भारत में अंग्रेजी राज ब्रिटेन के आम लोगों के हित में नहीं है, उससे ब्रिटिश समाज की कुछ उच्च श्रेणियों को ही फायदा हो रहा है। ब्रिटेन के आम लोग उन्हीं उच्च श्रेणियों के विरुद्ध लड़ रहे थे। विद्रोह में शामिल विशाल जनसंख्या ने देश को विदेशी शासन से मुक्त करने के लिए वीरतापूर्वक संघर्ष किया। विद्रोह के नेता अपनी खोई शक्ति को पाने और पुरानी घिसी-पिटी व्यवस्था को स्थापित करने के लिए जी-जान से लड़े। उन्होंने सामाजिक और आर्थिक जीवन में सुधार लाने तथा अठारहवीं शताब्दी की भारतीय शासन-व्यवस्था की अपेक्षा अच्छी शासन-व्यवस्था स्थापित करने की बात नहीं की। उस समय ऐसे विचारों का बोलबाला था जो भारतीय समाज की प्रगति के लिए लाभदायक नहीं थे। तुम देख चुके हो कि सती-प्रथा के उन्मूलन जैसे समाज-सुधार के कुछ कार्यों से भी लोगों में असंतोष बढ़ा था।

देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन में आमूल परिवर्तन लाने तथा राष्ट्रीय एकता एवं जनतंत्र के लिए संघर्ष करने वाले समूहों का अठारहवीं शताब्दी में उदय नहीं हुआ था। यह तुमने पहले और दूसरे अध्यायों में देखा है। ब्रिटिश शासन के परिणाम-स्वरूप मध्यम वर्ग जैसे नए सामाजिक समूहों का उदय भारत के कुछ भागों, जैसे बंगाल में शुरू हुआ। तुम पिछले अध्याय में देख चुके हो कि वे समूह काफी कमजोर थे यद्यपि उन्होंने सामाजिक सुधार के लिए काम करना शुरू कर दिया था। 1857 ई० में विद्रोह होने पर उनकी सहानुभूति विद्रोहियों के साथ नहीं थी। उनका विश्वास था कि ब्रिटिश शासन भारतीय समाज का सुधार करेगा और उसे आधुनिक बनाएगा। आगे के अध्यायों में तुम देखोगे कि उनको काफी निराशा हुई। ब्रिटिश शासन भारतीय समाज को आधुनिक बनाने के काम में उपयोगी नहीं सिद्ध हुआ। विद्रोह के बाद भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन मूर्त्त रूप लेने लगा। उसका उद्देश्य भारत को विदेशी शासन से मुक्त करना तथा भारतीय समाज की पुनर्रचना करना था।

विद्रोह की कई अन्य कमजोरियाँ भी थीं। विद्रोहियों ने मुगल बादशाह को भारत का शासक मान लिया। ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सारे विद्रोही एक हो गए थे। किंतु व्यवहार में उनके बीच पूरी एकता नहीं थी। अधिकतर विद्रोही अपने खास इलाकों में ही लड़ते रहे। विभिन्न क्षेत्रों में लड़ने वाली शक्तियों के बीच समन्वय

नहीं था। बहुतेरे भारतीय राजाओं और सरदारों ने विद्रोह के दौरान अंग्रेजों का साथ दिया। उन्हें अपने इलाकों के छिन जाने का डर था। जिनके इलाके छीन लिए गए थे वे ही मुख्यतः विद्रोह में शामिल थे। विद्रोह के ही दौरान उनमें से कुछ ने अंग्रेजों से समझौते की बात शुरू कर दी। उनका उद्देश्य अपने खोए हुए अधिकारों को प्राप्त करना था। इस तरह उन्होंने विद्रोहियों के साथ धोखा किया। जिन इलाकों को अंग्रेजों के कब्जे में स्वतन्त्र कर लिया गया, वहाँ अच्छी और सभ्य शासन-व्यवस्था कायम करने की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई। ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष हर जगह एक समान नहीं था। उदाहरण के लिए, लड़ाई के बाद पंजाब में अंग्रेजों ने सुव्यवस्थित प्रशासन कायम किया था। वहाँ लोग उत्तरी भारत के अन्य भागों की तरह असंतुष्ट नहीं थे। इसलिए विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति होते हुए भी पंजाब में बड़े पैमाने पर कोई बगावत नहीं हुई।

सन 1857 ई० के विद्रोह के साथ भारत में ब्रिटिश शासन का एक दौर खत्म हो गया। पुरानी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को पूरी तरह खत्म कर दिया गया। विद्रोह उस व्यवस्था के अस्तित्व के लिए आखिरी लड़ाई थी। जिन भारतीय राज्यों को अंग्रेजी राज्य में नहीं मिलाया गया था उन्हें रहने दिया गया। किन्तु उनकी स्वतन्त्रता खत्म हो गई। व्यावहारिक रूप में वे ब्रिटिश साम्राज्य के अंग बन गए। बाद के भारतीय जन-आंदोलन के हित भारतीय राज्यों के शासकों के हितों से बिल्कुल भिन्न थे। विद्रोह के बाद कंपनी का शासन खत्म हो गया और ब्रिटिश सरकार ने भारत पर सीधे शासन करना शुरू कर दिया। भारत के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण और नीतियों में कई परिवर्तन हुए। महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के संबंध में तुम अगले अध्याय में पढ़ोगे।

अभ्यास

1. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :**
   1. सन 1857 ई० का विद्रोह पहले के सारे विद्रोहों से किस प्रकार भिन्न था ?
   2. भारतीय शासकों के असंतोष के क्या कारण थे ?
   3. भारतीय राज्यों को अंग्रेजी राज्य में मिला लिए जाने से आम जनता का आर्थिक जीवन किस प्रकार प्रभावित हुआ ?
   4. ब्रिटिश सरकार द्वारा उठाए गए समाज सुधार के कदमों से कुछ लोगों में असंतोष क्यों फैला ?
   5. सेना के भारतीय सिपाहियों में असंतोष फैलने के क्या कारण थे ?

6. भारत के उन क्षेत्रों के नाम बताओ जहाँ सन 1857 ई० का विद्रोह काफी व्यापक था।
7. सन 1857 ई० के विद्रोह के कुछ नेताओं के नाम बतलाओ और उनकी भूमिका पर प्रकाश डालो।
8. किन कारणों से नवोदित मध्यम वर्ग ने विद्रोहियों का समर्थन नहीं किया ?
9. सन 1857 के विद्रोह की असफलता के मुख्य कारण क्या थे ?

2. **नीचे दिए गए प्रश्नों में से प्रत्येक के लिए चार संभव उत्तर दिए गए हैं। जिस उत्तर को तुम सही समझते हो उसके आगे (√) निशान लगाओ।**
   1. निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सन 1857 ई० के विद्रोह के चरित्र को अच्छी तरह स्पष्ट करता है ?
      (क) पुरानी राजनीतिक व्यवस्था द्वारा फिर सत्ता प्राप्त करने के प्रयास।
      (ख) ब्रिटिश सेना के भारतीय सिपाहियों का विद्रोह।
      (ग) विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए आम जनता का संघर्ष।
      (घ) संयुक्त भारतीय राष्ट्र की स्थापना के प्रयास।
   2. सन 1857 ई० के विद्रोह की सफलता के लिए निम्नलिखित कारणों में से सबसे अधिक जिम्मेदार कौन सा कारण था ?
      (क) भारतीयों में राजनीतिक चेतना का अभाव।
      (ख) विद्रोहियों को प्रबुद्ध मध्यम वर्ग के समर्थन का अभाव।
      (ग) विद्रोहियों के आपसी झगड़े और द्वेष।
      (घ) विद्रोहियों के शक्तिशाली नेतृत्व का अभाव।

3. **सन 1857 ई० के विद्रोह के संबंध में नीचे कुछ कथन दिए गए हैं। जो सही हो उसके सामने (√) निशान और जो गलत हो उसके आगे (×) निशान लगाओ।**
   (क) सन 1857 ई० में पहली बार भारतीय सिपाहियों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किए।
   (ख) उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारत के लोग औद्योगिक क्रांति के महत्त्व को समझ गए थे।
   (ग) अंग्रेजों के सामाजिक सुधारों को भारत के लोगों ने आसानी से स्वीकार कर लिया।
   (घ) अंग्रेजों द्वारा नई भूमि व्यवस्थाएँ लागू की जाने के कारण पुराने सामंत बुरी तरह प्रभावित हुए थे।
   (ङ) अधिकतर भारतीय शासकों ने सन 1857 ई० के विद्रोह में भाग लिया।
   (च) आवश्यक एकता का अभाव सन 1857 ई० के विद्रोह की असफलता का एक महत्वपूर्ण कारण था।

4. **करने के लिए रुचिकर कार्य :**
   1. भारत का एक मानचित्र बनाओ और उसमें विद्रोह से संबद्ध इलाकों को दिखाओ। यह भी दिखलाओ कि विभिन्न इलाकों में विद्रोह के नेता कौन थे।

2 दिल्ली में रहने वाले छात्रों को सन 1857 ई० की दिल्ली का मानचित्र बनाकर विद्रोह से संबद्ध स्थानों को दिखलाना चाहिए। दिल्ली में रहने वाले छात्रों को दिल्ली के विद्रोह के संबंध में विस्तार से पढ़ना चाहिए और विद्रोह से संबद्ध जगहों को देखना चाहिए। फिर उन्हें दिल्ली में विद्रोह के संबंध में एक लेख तैयार करना चाहिए।

अध्याय 8

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का पुनर्संगठन

सन सत्तावन के विद्रोह को दबाने के बाद अंग्रेजों ने भारत के प्रति अपनी नीतियों में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। इंग्लैंड की ब्रिटिश सरकार और भारत की ब्रिटिश सरकार के संबधों को नया रूप दिया गया। भारत के ब्रिटिश प्रशासन में अनेक परिवर्तन किए गए। भारत में ब्रिटिश शासन के इतिहास का एक नया दौर शुरू हुआ। यह दौर लगभग पचास वर्षो तक रहा। पचास वर्षों की इस अवधि में भारतीय जनता के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में अनेक परिवर्तन हुए और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का उदय हुआ। इन सब के बारे में तुम अगले अध्यायों में पढ़ोगे।

ब्रिटिश सरकार ने जो भी परिवर्तन किए उनका उद्देश्य भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य को सुदृढ़ करना और भविष्य में विद्रोह को रोकना था। ब्रिटिश शासकों ने अपना शासन मजबूत करने के लिए भारतीय राजाओं, सामंतों और जमींदारों को अपने पक्ष में करने का प्रयास किया। अंग्रेजों का विचार था कि उनके समर्थन से वे जनता की निष्ठा प्राप्त कर सकते हैं।

1858 ई० का ऐक्ट और इंग्लैंड की रानी की घोषणा

नई प्रशासन-व्यवस्था का आधार अगस्त 1858 ई० में ब्रिटिश संसद द्वारा पास किए गए ऐक्ट ने रखा। नवंबर 1858 ई० में गवर्नर-जनरल कैनिंग ने इलाहाबाद में एक दरबार किया और उसमें इसकी घोषणा की। वहीं इंग्लैंड की महारानी के नाम से जारी किए गए एलान को पढ़कर सुनाया गया। उस समय विक्टोरिया इंग्लैंड की महारानी थी। घोषणा की गई कि अब से भारत का शासन ब्रिटेन की महारानी के नाम से भारत मंत्री

(सेक्रेटरी आफ स्टेट) के द्वारा होगा। तुम जानते हो कि उस समय इंग्लैंड मे संसदीय शासन प्रणाली विकसित हो चुकी थी। वहाँ की सर्वोच्च संस्था संसद थी। संसद ही कानून बनाती थी। ब्रिटिश सरकार संसद के प्रति उत्तरदायी थी। किंतु राजतंत्र भी नाम के लिए रहने दिया गया था। सरकार रानी या राजा के नाम से चलती थी। तुम पढ़ चुके हो कि 1857 ई० के विद्रोह के पहले से ही भारत के शासन की दृष्टि से ईस्ट इंडिया कंपनी की सत्ता कमजोर पड़ती जा रही थी और ब्रिटिश सरकार की सत्ता मजबूत होती जा रही थी। 1858 ई० मे कंपनी की सत्ता बिल्कुल खत्म हो गई। ब्रिटिश सरकार ने भारत के प्रशासन को पूरी तरह और सीधे अपने हाथों में ले लिया। गवर्नर-जनरल को वायसराय की पदवी दी गई। इसका मतलब यह था कि वह ब्रिटेन की महारानी का प्रतिनिधि हो गया।

एलान ने भारत मे ब्रिटिश सरकार के इरादों को भी स्पष्ट किया। भारतीय राजाओं के अधिकारों में हस्तक्षेप न करने की बात कही गई। यह भी साफ कर दिया गया कि अंग्रेजी राज्य में अब अन्य भारतीय इलाके नही मिलाए जाएँगे। लोगों के पुराने अधिकारों, रीति-रिवाजों का ख्याल रखने तथा न्याय, उदारता और धार्मिक सहनशीलता की नीति अपनाने का वादा किया गया। घोषणा की गई कि शिक्षा, योग्यता और ईमानदारी के आधार पर कोई भी प्रशासकीय सेवाओं मे प्रवेश कर सकता है। जाति या धर्म के नाम पर कोई भेदभाव नही किया जाएगा। एक ओर एलान ने राजाओं को विश्वास दिलाया कि उनके लिए अब कोई खतरा नही है, दूसरी ओर मध्यम वर्ग को आगे बढ़ने के अवसर देने का वचन दिया गया। किंतु यह जल्द ही साफ हो गया कि सरकार मध्यम वर्ग को दिए गए अपने वचन को पूरा करने का कोई इरादा नही रखती। कई वायसरायों और ब्रिटिश प्रशासकों का विचार था कि एलान के द्वारा इस प्रकार का वचन देना ही गलत है।

भारत के पुराने रीति-रिवाजो को बनाए रखने की नीति का अच्छा परिणाम नही हुआ। सामाजिक कुरीतियाँ बनी रही। ब्रिटिश शासकों का विचार था कि अंग्रेजी राज की सुरक्षा की दृष्टि से समाज-सुधार के लिए कोई कदम न उठाए जाएँ। अंग्रेजी राज पुरानी समाज-व्यवस्था को कायम रखकर ही सुरक्षित रह सकता था। कई इतिहास-कारों का विचार है कि अच्छा हुआ कि 1857 ई० के पहले ही सती प्रथा के उन्मूलन और विधवा-विवाह के बारे में कानून बन गए। 1857 ई० के बाद अंग्रेजो ने ये कदम न उठाए होते क्योंकि वे समाज सुधार मे दिलचस्पी दिखाना खतरे से खाली नही समझते थे। भारतीय नेता माँग भी करते तो भी वे कोई परवाह न करते।

तुम ऊपर पढ़ चुके हो कि विद्रोह के बाद भारत इंग्लैंड की सरकार के नियंत्रण मे चला गया। इसका नतीजा यह हुआ कि अब पूरी तरह ब्रिटिश हितो को भारतीय लोगो के हितो की तुलना में ऊँचा स्थान दिया जाने लगा। औद्योगिक क्रांति के बाद ब्रिटिश उद्योगपतियों का इंग्लैंड के राजनीतिक जीवन में बोलबाला हो गया था। संसार के अन्य हिस्सो, खासकर अफ्रीका में भी ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार होने लगा था। इस सिलसिले मे उसका अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों से विरोध और संघर्ष हुआ। ब्रिटिश आर्थिक हितो की रक्षा के लिए भारत का इस्तेमाल किया गया। संसार के अन्य भागो मे ब्रिटेन के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए भारत के संसाधनों का प्रयोग हुआ। भारत के ससाधनो की मदद से ही अंग्रेज अन्य देशों के विरुद्ध खर्चीली लड़ाइयाँ लड़ सके।

इंग्लैंड से भारतीय सरकार का नियंत्रण

विद्रोह के बाद सरकार की नई व्यवस्था लागू की गई थी। उसके अनुसार भारत का शासन ब्रिटिश सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण मे आ गया। तुम पाँचवें अध्याय में देख चुके हो कि 1858 ई० से पहले इग्लैंड में दो ऐसे संगठन थे जो भारत में अंग्रेजी नीतियो पर नियंत्रण रखते थे। वे थे नियंत्रक मंडल (बोर्ड आफ कंट्रोल) और निदेशक मंडल (बोर्ड आफ डायरेक्टर्स)। 1858 ई० से सेक्रेटरी आफ स्टेट को भारत के शासन पर नियत्रण रखने का काम दे दिया गया। सेक्रेटरी आफ स्टेट भारत मंत्री के नाम से जाना गया। वह ब्रिटिश मत्रिमडल का सदस्य होता था। अन्य मत्रियों की तरह वह ब्रिटिश ससद के प्रति उत्तरदायी होता था। किंतु ब्रिटिश संसद ने भारत के मामलों में कोई विशेष दिलचस्पी नही दिखाई। भारत मंत्री को सलाह देने के लिए भारत परिषद् (इंडिया कांउसिल) की स्थापना हुई। भारत में जो ब्रिटिश अफसर काम कर चुके होते थे वे ही परिषद् के सदस्य होते थे। उनको भारत की स्थिति के बारे में प्रत्यक्ष ज्ञान होता था। परिषद् को कोई विशेष अधिकार नहीं थे। उसकी सलाह को मानना भी भारत मत्री के लिए जरूरी नही था।

पहले गवर्नर-जनरल सामान्य निर्धारित नीतियों के अंतर्गत अपने विवेक के अनुसार काम करता था। इंग्लैंड में रहने वाले अधिकारियों के साथ पत्र-व्यवहार कठिन था। उसमें काफी समय लगता था। औद्योगिक क्रांति के बाद संचार के साधन सुलभ और आसान हो गए। भाप से चलने वाले इंजन ने भारत और इंग्लैंड के बीच यात्रा का समय कम कर दिया। 1870 ई० मे भारत और इंग्लैंड के बीच टेलीग्राफ की व्यवस्था हुई।

इस तरह संचार बहुत आसान हो गया। अब जहाज के जरिए रिपोर्ट भेजने और आदेशों के लिए लंबी प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं रही। भारत सरकार और भारत मंत्री के बीच दैनिक विचार-विमर्श संभव हो गया। 1869 ई० में स्वेज नहर खुल जाने से भूमध्य सागर और लाल सागर एक दूसरे से जुड़ गए। इससे इंग्लैंड और भारत के बीच की दूरी कम हो गई। अब उत्तमाशा अंतरीप होकर सारे अफ्रीका का चक्कर लगाकर आने की आवश्यकता नहीं रही। परिवहन और संचार के क्षेत्र में प्रगति ने भारत के शासन पर अच्छी तरह नियंत्रण बनाए रखने में भारत मंत्री की मदद की। भारत मंत्री दिन-प्रति-दिन की घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर वायसराय को आदेश देने लगा। वायसराय पहले के गवर्नर-जनरलों की तरह स्वतंत्र नहीं रहे। इस प्रकार भारत मंत्री का भारतीय प्रशासन पर सीधा नियंत्रण और प्रभाव हो गया।

भारत मंत्री निरंकुश हो गया। सैद्धांतिक या व्यावहारिक किसी भी रूप में वह भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं रहा। व्यवहार में वायसराय सिर्फ उसका प्रतिनिधि मात्र था। किंतु उसे "महान मुगल" की संज्ञा दी जाने लगी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारत सरकार पूरी तरह ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गई। भारत सरकार बिना ब्रिटिश सरकार की सहमति लिए कोई नीति नहीं बना सकती थी।

भारत के शासन में ब्रिटिश सरकार के हितों को सर्वोच्च स्थान दिया गया। हम ऊपर कह चुके हैं कि इंग्लैंड के राजनीतिक जीवन में वहाँ के उद्योगपतियों का काफी प्रभाव था। भारत संबंधी ब्रिटिश नीतियों के निर्धारण में उनका बड़ा हाथ था। वे अपने हितों की दृष्टि से ब्रिटिश नीतियों का निर्धारण करवाते थे। भारत के हितों का ब्रिटिश शासकों के लिए कोई महत्त्व नहीं था। एक भारत मंत्री ने यह बात साफ स्वीकार की। उसने कहा कि भारत सरकार को ब्रिटिश सरकार के निर्णय मानने होंगे, भले ही वे भारत के हितों के प्रतिकूल हों। ब्रिटिश सरकार को "स्वदेश सरकार" और भारत में ब्रिटिश सत्ता को भारत सरकार कहा जाता था। सिद्धांत और व्यवहार दोनों दृष्टियों से भारत सरकार "स्वदेश सरकार" के अधीन थी।

भारत सरकार

इस तरह भारत सरकार का उद्देश्य ब्रिटिश हितों को प्राप्त करना था। उसका प्रधान गवर्नर-जनरल था। वह वायसराय भी हो गया था। तुम देख चुके हो कि भारत में नीतियों का निर्धारण और कार्यान्वयन गवर्नर-जनरल अपनी परिषद् की सहायता

से करता था। नीतियों के कार्यान्वयन की दृष्टि से परिषद् में गवर्नर-जनरल के अतिरिक्त चार साधारण सदस्य और सर्वोच्च सेनापति असाधारण सदस्य के रूप में होते थे। इसे कार्यकारिणी परिषद् कहते थे। 1853 ई० में इसमें छ: और सदस्य नियुक्त किए गए। इस प्रकार यह विधान परिषद् (लेजिस्लेटिव काउंसिल) बन गई। विधान परिषद् कानून बनाने लगी। विधान परिषद में भारतीय लोगों को स्थान देने की माँग की गई किंतु यह माँग नहीं मानी गई।

1861 ई० में एक कानून बना जिसके अनुसार परिषदों का पुनर्संगठन किया गया। कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों की संख्या में एक की वृद्धि हुई। किंतु गवर्नर-जनरल के अधिकार भी बढ़ा दिए गए। गवर्नर-जनरल से विचार-विमर्श कर कार्यकारिणी परिषद् का हर सदस्य सरकार के एक खास विभाग का काम देखता था। बाद में परिषद् में एक साधारण सदस्य और बढ़ाया गया। वह सार्वजनिक निर्माण विभाग सँभालने लगा। परिषद् सम्मिलित रूप में सिर्फ सामान्य नीति संबंधी मामलों पर ही निर्णय लेती थी। 1861 ई० के कानून ने विधान परिषद् के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया। उसकी सदस्य संख्या छ: से बढ़ाकर बारह कर दी गई। आधे सदस्यों के गैर सरकारी होने की व्यवस्था की गई। गैर सरकारी सदस्यों को गवर्नर-जनरल दो वर्षों के लिए मनोनीत किए गए। मनोनीत भारतीय सदस्य सामान्यत: समाज के उच्च वर्गों के होते थे। उनमें मुख्यत: सामंत, बड़े जमीदार, रईस, व्यापारी आदि ही होते थे। उनके मनोनयन की कसौटी होती थी—ब्रिटिश शासन के प्रति उनकी निष्ठा।

विधान परिषद् के अधिकार सीमित थे। वह कानून बना सकती थी किंतु गवर्नर-जनरल उसके किसी भी कानून को नामंजूर कर सकता था। गवर्नर-जनरल की स्वीकृति मिलने पर भी ब्रिटिश सरकार उस कानून को नामंजूर कर सकती थी। स्वयं गवर्नर-जनरल को कानून बनाने के काफी अधिकार थे। वास्तव में कई कानूनों के प्रारूप ब्रिटेन से ही बन कर आते थे जिन्हें विधान परिषद् औपचारिक तौर पर मान लेती थी। विधान परिषद् के सदस्य निर्वाचित नहीं होते थे। वे मनोनीत होते थे। वे सरकार की मर्जी के विरुद्ध नहीं जा सकते थे। सार्वजनिक राजस्व, सैनिक अनुशासन और भारतीय राज्यों के प्रति नीतियों के संबंध में विधेयक पेश करने के लिए गवर्नर-जनरल की अनुमति पहले ही लेनी पड़ती थी। विधान परिषद् को कतिपय विषयों पर चर्चा करने तथा प्रश्न पूछने के अधिकार नहीं थे।

1861 ई० के ऐक्ट के अनुसार मद्रास और बंबई प्रांतों की कार्यकारिणी परिषदों

का विस्तार कर उन्हें विधान परिषदों का रूप दिया गया। वे विधान परिषदें उन प्रांतों के लिए कानून बनाने लगीं। अन्य प्रांतों में भी विधान परिषदें बनाने के लिए गवर्नर-जनरल को अधिकार दिए गए। बंगाल, उत्तर-पश्चिम प्रांत (बाद में इसका नाम संयुक्त प्रांत हुआ) और पंजाब में विधान परिषदें बनीं। भारत के लोगों की माँग थी कि विधान परिषद् हर प्रांत में बने और उसके अधिकार बढ़ें। उनकी दूसरी माँग थी कि परिषद् के सदस्य जनता द्वारा चुने हुए हों। किंतु इन माँगों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

1861 ई० के ऐक्ट ने सरकार का सामान्य ढाँचा तैयार किया। यह ढाँचा काफी समय तक चला। समय-समय पर उसमें परिवर्तन भी किए गए।

1892 ई० में एक और कानून इंडियन काउंसिल्स ऐक्ट बना। इसके अनुसार विधान परिषद् के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या 12 से बढ़ाकर 16 कर दी गई। किंतु बहुमत सरकारी सदस्यों का ही बना रहा। परिषद् के सदस्य जनता द्वारा नहीं चुने जाते थे। इस ऐक्ट ने समाज की कुछ श्रेणियों, जैसे बड़े व्यापारियों और संस्थाओं, जैसे नगरपालिका समितियों को प्रतिनिधित्व दिया। विधान परिषद् के अधिकार में वृद्धि की गई। सदस्यों को प्रश्न पूछने तथा बजट के बारे में चर्चा करने के अधिकार दिए गए।

विधान परिषदों की स्थापना के बावजूद भारत सरकार का चरित्र निरंकुश बना रहा। उसका मुख्य उद्देश्य भारत में ब्रिटिश आर्थिक और राजनैतिक हितों की रक्षा करना तथा उन्हें प्राप्त करना था। भारत सरकार ब्रिटिश व्यापारियों, उद्योगपतियों, बागान मालिकों तथा गैर सैनिक अफसरों के हितों की रक्षा में भी तत्पर रही। उन लोगों ने सरकार को ऐसी नीतियाँ अपनाने के लिए मजबूर किया जो उनके हित में थीं; किंतु भारतीय जनता के लिए हानिकर थीं। भारत सरकार के संचालन में भारतीय लोगों की कोई पूछ नहीं थी। न ही भारत सरकार उनके हितों का कोई ध्यान रखती थी। विधान परिषद् में कुछ भारतीय जरूर थे, किंतु वे सब समाज की उच्च श्रेणियों के लोग थे। अंग्रेजी राज के प्रति उनकी निष्ठा और समर्थन के कारण ही उन्हें विधान परिषदों में जगह दी गई थी।

स्थानीय शासन

केंद्र और कुछ प्रांतों में विधान परिषदों की स्थापना के अतिरिक्त स्थानीय शासन के संगठन में भी परिवर्तन हुए। तुम पिछली कक्षाओं की पुस्तकों में प्राचीन और मध्य-कालीन भारत के शहरों और गाँवों के स्थानीय शासन के बारे में पढ़ चुके हो। तुम ग्राम

पंचायतों का महत्त्व भी जानते हो। भारत पर अंग्रेजों का कब्जा होने पर ग्राम पंचायतें टूट गईं। सफाई, सड़क, सड़कों के किनारे रोशनी, पीने के पानी की व्यवस्था, आदि स्थानीय महत्त्व की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। 1857 ई० के बाद शहरों में नगरपालिकाएँ बनने लगीं। किंतु उनके सदस्य ब्रिटिश अफसर ही होते थे। नगरपालिकाओं ने स्थानीय प्रशासन तथा निर्माण-कार्य हेतु धन जुटाने के लिए स्थानीय कर लगाए। 1882 ई० में जिला बोर्डों का निर्माण हुआ। उनके अधीन ग्रामीण क्षेत्र भी आ गए। तुम जानते हो कि स्थानीय लोग ही स्थानीय समस्याओं को अच्छी तरह समझ सकते हैं। इसलिए स्थानीय मामलों से संबंधित संस्थाओं में स्थानीय प्रतिनिधि होने चाहिए। किंतु अंग्रेजों द्वारा संगठित स्थानीय संस्थाओं में कोई निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं होते थे। उनमें सिर्फ ब्रिटिश अफसर ही मनोनीत होते थे। 1882 ई० के बाद चुने गए प्रतिनिधि भी सदस्य होने लगे। किंतु सिर्फ संपत्ति वाले लोग ही मत देने के अधिकारी थे। असली सत्ता ब्रिटिश अफसरों के हाथों में ही बनी रही। भारतीय नेताओं ने गाँव के स्तर तक स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था करने की माँग की, किंतु इस दिशा में वास्तविक प्रगति स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ही हो सकी।

वित्तीय प्रशासन

1857 ई० के बाद वित्तीय प्रशासन का भी पुनर्संगठन किया गया। पहले बजट की कोई व्यवस्था नहीं थी। तुम जानते हो कि बजट में आय के विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाली आय का न्यूनाधिक सही अनुमान तथा विभिन्न मदों के लिए अनुमानित व्यय के ब्यौरे होते हैं। उस समय इस प्रकार की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। सरकारी आय को केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के बीच खर्च के लिए बाँटने की भी कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। अन्य मदों पर खर्च के अतिरिक्त ब्रिटिश साम्राज्य के हितों के लिए होने वाली लड़ाइयों पर व्यय के लिए धनराशि की आवश्यकता बढ़ती गई। 1860 ई० में बजट की व्यवस्था शुरू हुई। हर स्रोत से प्राप्त होने वाली अनुमानित आय का ब्योरा तैयार किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक के दौरान केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के बीच सरकारी आय के वितरण की व्यवस्था की गई। डाकघरों, रेलवे, अफीम और नमक की बिक्री तथा चुंगी से प्राप्त आय पूरी तरह केंद्रीय सरकार की हो गई। भू-राजस्व, आबकारी आदि से प्राप्त आय केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के बीच बाँट दी गई। सरकार के राजस्व में वृद्धि करने के प्रयास किए गए। अफीम और नमक

के उत्पादन और बिक्री पर सरकार का एकाधिकार था। कचहरियों में मुकद्दमा चलाने के लिए मुद्रांक-शुल्क लगाए गए। व्यावसायिक लेन-देन के लिए भी मुद्रांक-शुल्क लगाए गए। भारत में उस समय सूती कपड़े के कारखाने और कुछ अन्य उद्योग पनप रहे थे। स्थानीय उद्योगों के विकास के लिए सरकार साधारणतया दूसरे देशों से आने वाली वस्तुओं पर चुंगी लगाती है। इस चुंगी से सरकारी आय में वृद्धि के साथ ही नए स्थानीय उद्योगों के विकास में भी सहायता मिलती है। स्थानीय उद्योगों में बनी वस्तुएँ चुंगी के कारण विदेशी वस्तुओं के मुकाबले में ठहर पाती है। चुंगी लगने के कारण ब्रिटेन मे बनी वस्तुओं, विशेषकर सूती कपड़े, पर बुरा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश उद्योगपतियों के दबाव के कारण 1882ई० में चुंगी खत्म कर दी गई। किंतु राजस्व की कमी को पूरा करने के लिए 1894ई० में फिर चुंगी लगा दी गई। ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार पर भारतीय वस्तुओं पर उत्पाद-शुल्क लगाने के लिए दबाव डाला। इस कारण ब्रिटेन में बनी वस्तुएँ भारतीय वस्तुओं के मुकाबले में कमजोर नहीं पड़ीं। 1860ई० मे आय कर भी लगाया गया। किंतु बाद में उसे खत्म कर दिया गया। कुछ समय बाद आय कर फिर लगाया गया। भारतीय जनता सब प्रकार के कर तो सरकार को देती थी किंतु सरकार उसके प्रति उत्तरदायी नहीं थी। उसका उद्देश्य ब्रिटेन के हितों की रक्षा तथा उसके स्वार्थों की पूर्ति करना था।

सेना के संगठन में परिवर्तन

तुम देख चुके हो कि 1857ई०के विद्रोह में भारतीय सैनिको की भूमिका बड़ी जबर्दस्त रही। भविष्य में विद्रोह न हो इस दृष्टि से अंग्रेजों ने सेना का पुनर्संगठन किया। भारतीय सैनिकों को तोपखाने तथा शस्त्रागार से अलग रखने का निर्णय लिया गया। यूरोपीय सैनिकों की संख्या भी बढ़ा दी गई। भारतीय सैनिकों और यूरोपीय सैनिकों का अनुपात 2 : 1 रखा गया। बाद में इसे बदलकर 5 : 2 कर दिया गया। यह सिलसिला प्रथम महायुद्ध के प्रारंभ तक चलता रहा। सेना के सारे अफसर यूरोपीय थे। अपनी स्थिति सुदृढ रखने के लिए अंग्रेजों ने "फूट डालो और शासन करो" की नीति अपनाई। इलाकों, जातियों, कबीलों आदि के नाम पर सेना की अलग-अलग टुकडियों का संगठन किया गया। इसके पीछे यह विचार था कि एक टुकड़ी के विद्रोह करने पर उसके विरुद्ध दूसरी टुकड़ियों का प्रयोग किया जाए। इसके अतिरिक्त सेना में कुछ इलाकों और समुदाय के लोगों को ही भर्ती किया जाने लगा। अंग्रेजों ने भारतीयों को बहादुर और

गैर बहादुर जातियों में बाँट दिया। सिर्फ तथाकथित बहादुर जातियो के लोगों को ही अधिकतर सेना में भर्त्ती किया जाता था। यह भेद लोगो के बीच फूट डालने के लिए किया गया।

सेना के सगठन मे कई अन्य परिवर्तन किए गए। पहले बंगाल, बंबई और मद्रास प्रात सेना मे लोगो को अलग-अलग भर्ती करते थे। वे अपनी अलग-अलग सेना रखते थे। हर प्रात की सेना में भारतीय सैनिक, उस कपनी द्वारा भर्ती किए गए यूरोपीय सैनिक और ब्रिटिश सेना की रेजिमेंट होती थी। 1858 ई० के बाद यूरोपीय सैनिकों और ब्रिटिश सेना की इकाइयों को एक साथ मिला दिया गया। 1859 ई० में भारत स्थित अंग्रेजी सरकार की सारी सेना को सर्वोच्च सेनाध्यक्ष (कमांडर इन चीफ) के मातहत कर दिया गया। किचनर के सर्वोच्च सेनाध्यक्ष होने पर सेनाध्यक्ष की स्थिति अधिक मजबूत हो गई। पहले गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी परिषद् मे एक साधारण सदस्य सेना का प्रभारी होता था। सर्वोच्च सेनाध्यक्ष कार्यकारिणी परिषद् का असाधारण सदस्य होता था। कभी-कभी दोनों के बीच विरोध उत्पन्न हो जाता था। 1904 ई० में किचनर ने सिफारिश की कि सैनिक प्रशासन पूरी तरह सर्वोच्च सेनाध्यक्ष के अधीन हो और कार्यकारिणी परिषद् में सेना के प्रभारी साधारण सदस्य की जगह समाप्त कर देनी चाहिए। तत्कालीन गवर्नर-जनरल कर्जन ने इस सिफारिश का विरोध किया। उसका विचार था कि इस सिफारिश को मानने मे सेना के ऊपर गैर सैनिक नियंत्रण कमजोर हो जाएगा। कितु ब्रिटिश सरकार ने किचनर की सिफारिश मान ली। कर्जन ने गवर्नर-जनरल के पद से इस्तीफा दे दिया।

ब्रिटिश सरकार ने भारत में सिर्फ अपने राज की सुरक्षा के लिए ही फौज नही रखी थी। उसका इस्तेमाल ससार के अन्य भागों में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के लिए किया गया। अफगानिस्तान, बर्मा और कई अन्य स्थानों में भारतीय सैनिक ब्रिटिश साम्राज्य की ओर से लड़े। अनेक भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने अन्य राष्ट्रों के विरुद्ध अंग्रेजो द्वारा भारतीय सैनिकों और ससाधनों के प्रयोग का विरोध किया।

सिविल सर्विस

तुम पहले देख चुके हो कि देश का शासन चलाने के लिए सिविल सर्विस की स्थापना हुई थी। उसे 'ब्रिटिश साम्राज्य का इस्पाती चौखटा' कहा जाता था। सारी महत्त्वपूर्ण जगहो पर इस सिविल सर्विस के लोग ही नियुक्त किए जाते थे। तुम पढ़ चुके हो कि

1853 ई० मे सिविल सर्विस में प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर नियुक्ति होने लगी। प्रतियोगिता परीक्षा इग्लैड में होती थी। इंग्लैड में परीक्षा होने के कारण बहुत कम भारतीय उसमे बैठते थे। भारतीयों को अन्य कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता था। परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण भारतीयो को दिक्कत होती थी। परीक्षा में सफल होने के लिए उन्हें बिल्कुल भिन्न वातावरण मे रहना पडता था। परीक्षा मे बैठने की उम्र 1853 ई० में 23 वर्ष थी। उसे घटाकर 1866 ई० में 21 और 1876 ई० में 19 वर्ष कर दिया गया। इससे प्रतियोगिता में भारतीयो के लिए ब्रिटिश उम्मीदवारो के समक्ष टिकना कठिन हो गया। महारानी विक्टोरिया के एलान में भारतीयो को सिविल सर्विस मे प्रवेश के लिए समान अवसर देने का वचन दिया गया था। किन्तु वास्तव में कुछ नही हुआ। अंग्रेजों का एकाधिकार बना रहा। कई गवर्नर-जनरलों ने सिफारिश की थी कि भारतीयो को ऊँची नौकरियो से बिल्कुल अलग रखा जाए। उनका विचार था कि एलान मे भारतीयो को समान अवसर देने का वचन देना बडी भारी भूल थी। इस कारण बहुत कम भारतीय सिविल सर्विस में प्रवेश पा सके। शिक्षित भारतीयों ने उम्मीदवारी की उम्र बढ़ाने तथा भारत में भी परीक्षा की व्यवस्था करने की माँग की। किन्तु ब्रिटिश सरकार और गवर्नर-जनरल सहित बडे अफसर शिक्षित भारतीयो को फूटी आँखो भी नही देखते थे। वे नही चाहते थे कि शिक्षित भारतीय अपने को अंग्रेजों के बराबर समझें। जहाँ भी विदेशी शासन होता है वहाँ विदेशी शासक अपने को शासित जनता से श्रेष्ठ समझते है। विदेशी अफसरों को सिखलाया जाता है कि शासित लोग निकृष्ट है और उन्हे उन पर शासन करने का अधिकार है। इस दृष्टिकोण के कारण शासकों और शासितो के बीच की खाई बढ जाती है। शासकों में जातीय घमंड आ जाता है। वे शासित लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते है और उन पर शासन करना अपना अधिकार समझते है। सरकार की नीतियाँ बनाने और लागू करने मे ब्रिटिश सिविल सर्विस के लोगो का बडा हाथ रहा। उनका भारतीयो के प्रति अच्छा दृष्टिकोण नही था। उनके दृष्टिकोण और व्यवहार से कई बार भारत और ब्रिटेन की सरकारें भी हक्का-बक्का रह गईं। उदाहरण के लिए 1876 ई० में एक अंग्रेज वकील ने अपने नौकर को इतना पीटा कि वह मर गया। वकील को सिर्फ तीस रुपए जुर्माना किया गया। इस प्रकार की घटनाएँ बहुधा होती रहती थी। कभी-कभी सरकार को भी हस्तक्षेप करना पडता था। 1883 ई० में रिपन गवर्नर-जनरल था। उस समय एक विधेयक पेश किया गया। विधेयक का उद्देश्य भारतीय और यूरोपीय जजो के बीच

भेदभाव खत्म करना था। इसे "इलबर्ट विधेयक" कहते हैं। कहा गया कि भारतीय जज भी अपने अधिकार क्षेत्र में आने पर यूरोपीय लोगों के विरुद्ध मुकद्दमे की सुनवाई कर सकते है। बड़े अफसरों सहित बड़ी संख्या में यूरोपीय लोगों ने विधेयक का विरोध किया। बाध्य होकर सरकार को तत्कालीन रूप में विधेयक वापस लेना पड़ा।

तुम देख चुके हो कि शिक्षित भारतीय सिविल सर्विस में प्रवेश के लिए माँग कर रहे थे। किंतु उनकी माँग पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। 1879 ई० में एक नई प्रशासकीय सेवा बनी जिसमें भारतीय हर साल प्रवेश पा सकते थे। किंतु नियुक्ति प्रतियोगिता के आधार पर नहीं होती थी। सिर्फ उन्हीं भारतीय परिवारों के लोग चुने जाते थे जिन्हें अंग्रेज अच्छा परिवार समझते थे। दूसरे शब्दों में, ब्रिटिश शासन के समर्थक उच्च वर्गों के लोग ही चुने जाते थे। 1886 ई० के बाद तीन प्रकार की सेवाएँ बनी। उनमे एक पुरानी सिविल सर्विस थी जिसे भारत की सिविल सर्विस का नाम दिया गया। उच्च अधिकारी इसी सेवा के होते थे। वे अधिकतर अंग्रेज होते थे। प्रांतों में भी सिविल सर्विस बनी। बंगाल में उसे बंगाल सिविल सर्विस कहा गया। पेशेवर काम से संबंधित सिविल सर्विस भी बनी। उदाहरण के लिए "शिक्षा सेवा" की स्थापना हुई। आमतौर से भारतीय अंतिम दो सेवाओं में ही नियुक्त किए जाते थे।

भारत में ब्रिटिश शासन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू नौकरशाही का बोलबाला था। अफसर अपने को जनता से अलग समझते थे। उनमे से कई काफी परिश्रम से काम करते थे किंतु उनका मुख्य उद्देश्य लोगों के ऊपर शासन करना था। उनका उद्देश्य जनता का कल्याण करना नहीं था।

भारतीय राजाओं के प्रति ब्रिटिश नीति

तुम पढ़ चुके हो कि 1857 ई० के बाद भारतीय राजाओं के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति बदली। वह उन्हें अपना शासन सुदृढ़ करने के लिए बनाए रखना चाहती थी। तुम देख चुके हो कि महारानी के एलान में वचन दिया गया था कि भारत में अंग्रेजी राज्य का विस्तार नहीं होगा। भारतीय राजाओं के अधिकारों और प्रतिष्ठा का ध्यान रखा जाएगा। भारत में ब्रिटिश सरकार ने राजाओं को अपना सहायक समझा। कई जागीरदारों को राजा का दर्जा दे दिया गया। भारत में 562 रजवाड़े थे। उनमें से कई बहुत ही छोटे थे। कई राज्यों का क्षेत्रफल लगभग एक वर्गमील था और जनसंख्या 100 से भी कम थी। कश्मीर और हैदराबाद जैसे भी राज्य थे जो ब्रिटेन से बड़े थे।

इस प्रकार 1857 ई० के बाद भारत दो भागों में बँट गया। ब्रिटिश भारत का शासन ब्रिटिश सरकार भारत की अपनी सरकार द्वारा करती थी। भारतीय रजवाड़ों का शासन उनके राजा करते थे।

1857 ई० के पहले भारत की ब्रिटिश सरकार और भारतीय रजवाड़ों के संबध समरूप नही थे। उनके संबध उनके बीच हुई संधि पर निर्भर थे। कुछ राज्य अपने को पूरी तरह स्वतंत्र समझते थे। वे अपने को भारत की ब्रिटिश सरकार के समकक्ष समझते थे। कुछ अन्य राज्य भारत की ब्रिटिश सरकार के अधीन समझे जाते थे। 1858 ई० के बाद संबध बदल गए। एक ओर भारतीय रजवाड़ो को विश्वास दिलाया गया कि उन्हें अंग्रेजी राज्य मे नहीं मिलाया जाएगा। दूसरी ओर वे ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गए। भारतीय राज्यों के ऊपर ब्रिटिश सरकार का आधिपत्य "परमसत्ता के सिद्धांत" पर आधारित था। इसके अनुसार भारत में ब्रिटिश सत्ता सर्वोपरि और सर्वोच्च थी। भारत में ब्रिटिश परमसत्ता 1876 ई० के ऐक्ट मे साफ तौर से रखी गई थी। उसी के अनुसार महारानी विक्टोरिया ने 1 जनवरी, 1877 ई० से साम्राज्ञी की पदवी ले ली। जिस समय भारत के कई भागों में भंयकर अकाल पड़ा हुआ था उसी समय इंपीरियल असेंबली की बैठक हुई। असेबली की बैठक में शामिल राजाओं ने अपने वैभव के प्रदर्शन में ही अधिक दिलचस्पी दिखलाई। उसी समय महारानी विक्टोरिया द्वारा साम्राज्ञी की पदवी ले लेने की घोषणा हुई।

भारत में ब्रिटिश सरकार के सर्वोपरि सत्ता बन जाने से भारतीय राजाओं के अधिकार और स्थिति में कमी आई। भारतीय राज्यों को आंतरिक और बाहरी खतरों से बचाने का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार पर आ गया। इससे ब्रिटिश सरकार को उनके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के असीमित अधिकार मिल गए। हर राज्य में गद्दी संबंधी मामले में ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। गद्दी संबंधी झगड़ों का निबटारा ब्रिटिश सरकार करती थी। राजा के नाबालिग होने पर ब्रिटिश सरकार राज्य का प्रबंध करती थी। किसी भी राज्य में विद्रोह या कुप्रबंध होने पर ब्रिटिश सरकार राजा को हटाकर उसका उत्तराधिकारी नियुक्त कर सकती थी। इन सब मामलों में राज्य का नया उत्तराधिकारी ही नियुक्त किया जाता था। किसी भी राज्य को अंग्रेजी राज्य में नही मिलाया जाता था। भारतीय राज्यों का अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से कोई स्थान नहीं था। वे अन्य देशों मे कोई संबंध स्थापित नही कर सकते थे। गवर्नर-जनरल कर्जन ने भारतीय राजाओं को बिना अनुमति विदेश-यात्रा की मनाही कर दी। ब्रिटिश सरकार

ने भारतीय राजाओ के सैनिकों की सीमा निर्धारित कर दी। भारतीय राजाओं के सैनिक ब्रिटिश अफसरों के अधीन हो गए। संसार के अन्य हिस्सों में रहने या यात्रा करने वाले भारतीय राज्यों के लोग ब्रिटिश सरकार की प्रजा समझे जाते थे। भारतीय राजे अपने आंतरिक मामलों में भी स्वतंत्र नहीं थे। ब्रिटिश सरकार अमानवीय रीति-रिवाजों को बंद करने तथा कुप्रशासन को रोकने के लिए हस्तक्षेप कर सकती थी। इस प्रकार अंग्रेज भारतीय राजाओं को पूरी तरह अपने अधीन करने और उनकी शक्ति खत्म करने में सफल हो गए। भारतीय रजवाड़े ब्रिटिश शासन के लिए खतरे के रूप में नहीं रहे। उनको ब्रिटिश शासन के समर्थक और सहायक के रूप में देखा जाने लगा।

भारतीय राजाओं ने अपनी स्वतंत्रता में कमी को राजी-खुशी स्वीकार कर लिया, क्योंकि उनके राज्य के अंग्रेजी राज्य में मिलाए जाने का खतरा नहीं रहा। उनको अपनी प्रजा से भी कोई खतरा नहीं रहा। प्रजा के विद्रोह करने पर ब्रिटिश सरकार मदद के लिए आ सकती थी। अधिकतर राजे अपने राज्य को अपनी व्यक्तिगत संपत्ति समझते थे। उन्होंने राज्य के लोगों की हालत सुधारने के लिए कोई प्रयत्न नही किए। वे स्वयं ऐशो-आराम की जिंदगी बिताते रहे। वे प्रशासन के काम पर कोई ध्यान नही देते थे। कई बार कई राज्यों में इतना कुप्रशासन हो गया कि ब्रिटिश सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। ब्रिटिश भारत में प्रशासन तथा कानून समरूप थे किंतु भारतीय राज्यों में प्रशासन और कानून एकरूप नहीं थे। हर राज्य की अपनी अलग व्यवस्था थी। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता में फूट डालने के लिए इन राज्यों को बनाए रखा। कई दृष्टियों से राज्यो की जनता की हालत ब्रिटिश भारत की जनता की तुलना में काफी खराब थी। दरबार या दूसरे अवसरों पर जब भी राजे आते थे तो उनका उद्देश्य अपने धन-वैभव का तड़क-भड़क के साथ प्रदर्शन करना ही होता था। उनको ब्रिटिश सरकार से कई पदवियाँ मिली थी। वे ब्रिटिश सरकार के निष्ठावान समर्थक थे क्योंकि उनका अस्तित्व उसी पर निर्भर था।

'फूट डालो और शासन करो' की ब्रिटिश नीति

हर साम्राज्यवादी देश कब्जा किए गए देश की जनता में फूट डालकर अपना शासन बनाए रखना चाहता है। वह जनता के मतभेदों तथा अनेकता का सहारा लेता है। जहाँ कोई मतभेद तथा अनेकता नहीं होती वहाँ एक हिस्से को दूसरे हिस्से के विरुद्ध भड़काने और लड़ाने की कोशिश होती है। तुम पढ़ चुके हो कि अंग्रेजों ने राजाओं और

जमींदारों के समर्थन से अपना शासन मजबूत करना चाहा। देश के कई हिस्सों में नई भूमि-व्यवस्थाओं के कारण जमींदार खत्म हो गए थे। वहाँ जमींदारों को फिर से लाने की कोशिशें हुईं। अवध में 1857 ई० के विद्रोह के दमन के बाद जमीन तालुकेदारों को वापस कर दी गई। अंग्रेजों ने जमींदारों के लड़कों को सरकारी नौकरियाँ दीं। उन्होंने इस प्रकार मध्यम वर्ग के लोगों के साथ भेदभाव किया। जमींदारों को वापस लाकर अंग्रेजों ने उनका समर्थन प्राप्त किया तथा भारतीय समाज में फूट डाली। इन दोनों के परिणामस्वरूप भारत में अंग्रेजी राज्य मजबूत हुआ। अंग्रेजों ने भारतीय राज्यों के प्रति अपनी नीति से वहाँ की जनता को ब्रिटिश भारत की जनता से अलग कर दिया। तुम देख चुके हो कि सैनिक प्रशासन में भी उन्होंने यही नीति अपनाई। 1857 ई० के बाद उन्होंने समाज-सुधार के क्षेत्र में कदम उठाने से इंकार कर दिया। इस कारण जाति और धर्म के आधार पर वर्तमान विषमताएँ और भेदभाव बने रहे। तुम देख चुके हो कि 1857 ई० में हिंदू और मुसलमान एक साथ कंधे से कंधा मिलाकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़े। 1858 ई० से हिंदुओं और मुसलमानों को एक दूसरे से अलग करने के लिए अंग्रेजों ने लगातार प्रयत्न किए। मुसलमानों को अंग्रेजों का मुख्य शत्रु माना गया। उन्हें 1857 ई० के विद्रोह के लिए जिम्मेवार समझा गया। नौकरियों में उनके प्रति भेदभाव किया गया। अंग्रेजों ने इतिहास की पुस्तकों में मुसलमानों को हिंदुओं का शासक और उत्पीड़क दिखलाया। उन्होंने बतलाया कि हिंदुओं के हितों की रक्षा ब्रिटिश शासन का समर्थन करने से ही हो सकती है। बाद में उन्होंने अपनी मुस्लिम विरोधी नीति बदल दी। उन्होंने हिंदुओं के खिलाफ मुस्लिम उच्च वर्ग का पक्ष लेना शुरू कर दिया। किंतु ब्रिटिश नीति का उद्देश्य नहीं बदला। उसका उद्देश्य हिंदुओं और मुसलमानों के बीच फूट डालना था। बाद में जब भारतीय जनता की आशाओं और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला राष्ट्रीय आंदोलन शुरू हुआ, तब अंग्रेजों ने धर्म पर आधारित दलों की स्थापना को प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार उन्होंने स्वतंत्रता-आंदोलन को कमजोर करने की कोशिश की

अफगानिस्तान और बर्मा के प्रति नीति

भारत सरकार की विदेश-नीति इंगलैंड की सरकार की विदेश-नीति का अंग थी। उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध साम्राज्यवादी विस्तार का काल रहा। कई यूरोपीय शक्तियों ने दूसरे राष्ट्रों पर कब्जा करने के लिए हमले किए। उपनिवेशों के लिए साम्राज्य-

वादी शक्तियो के बीच होड़ लगी थी। इस होड़ के कारण बहुधा उनके बीच झगड़े हुए। ब्रिटिश सरकार ने भारत के संसाधनों और सैनिकों का इस्तेमाल साम्राज्यवादी लड़ाइयों और दूसरे देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में रूसी साम्राज्य का विस्तार मध्य एशिया मे हो रहा था। इस कारण ब्रिटिश सरकार चौकन्नी थी। रूसी विस्तार को रोकने के लिए उसने अफगानिस्तान में अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू किया। अफगानिस्तान का शासक दोस्त मुहम्मद एक योग्य राजा था। उसकी मृत्यु के बाद वहाँ आंतरिक गड़बड़ियाँ हुईं। अंग्रेजों ने वहाँ अपना पाँव जमाना चाहा। उन्होंने 1878 ई० में अफगानिस्तान पर हमला कर दिया। कुछ दिनो के बाद वहाँ शांति हो गई। किंतु अंग्रेज वहाँ अपना प्रभाव बढ़ाने की कोशिश करते रहे।

भारत और अफगानिस्तान के बीच के इलाको में रहने वाले कबायली लोगों को अपने अधीन करने के लिए भी अंग्रेजों ने कोशिशें कीं। भारत और अफगानिस्तान के बीच सीमा का निर्धारण हुआ। उत्तर-पश्चिम सीमावर्ती क्षेत्र के कबीले विद्रोह करते रहे। अंग्रेजों को उन्हें दबाने के लिए बार-बार सेना भेजनी पड़ी। सीमावर्ती क्षेत्र को पंजाब से हटाकर अलग प्रांत का रूप दिया गया। उसे उत्तर-पश्चिम का सीमा प्रांत कहा जाने लगा। उसे पूर्ण नियंत्रण में रखने के लिए अंग्रेजों ने रेल लाइनें और सड़कें बनाईं। अंग्रेजों ने उत्तर-पश्चिम सीमावर्ती क्षेत्र के स्वतंत्रता प्रिय लोगों को अपने पूरे नियंत्रण में रखने के लिए आतंकवादी तरीके भी अपनाए। कितु वे उन्हें पूरी तरह अपने अधीन न रख सके।

तुम पहले पढ़ चुके हो कि बर्मा के एक भाग को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया, कितु ऊपरी बर्मा पर वहाँ का पुराना राजवंश शासन करता रहा। बर्मा का राजा देश के एक बड़े हिस्से पर अंग्रेजों का कब्जा हो जाने से खुश नही था। इसी बीच फ्रांस ने दक्षिण-पूर्व एशिया में अपना साम्राज्यवादी प्रभाव बढाना शुरू कर दिया था। उन्नीसवीं शताब्दी के नवें दशक में फ्रांस ने हिंद-चीन में अपना शासन कायम कर लिया था। फ्रांसीसी ऊपरी बर्मा पर अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू कर चुके थे। अंग्रेज फ्रांसीसी प्रभाव बढ़ने से घबड़ा गए थे। उन्होंने बर्मा के राजा से अपनी विदेश-नीति पर ब्रिटिश नियंत्रण स्वीकार करने तथा राजधानी मांडले में एक अंग्रेज रेजिडेंट रखने के लिए कहा। बर्मा के राजा ने अंग्रेजों की माँगें मानने से इंकार कर दिया। अंग्रेज नाराज हो गए। उन्होंने 1885 ई० में बर्मा पर हमला कर दिया। बर्मा अंग्रेजी राज्य मे मिला लिया गया। कई

वर्षों तक बर्मा के लोग ब्रिटिश शासन का प्रतिरोध करते रहे। आखिरकार बर्मा ब्रिटिश भारत का एक प्रांत बन गया।

इस तरह 1857 ई० के विद्रोह के बाद ब्रिटिश नीति मे कई परिवर्तन हुए। भारत पर ब्रिटिश सरकार का सीधा नियंत्रण हो गया। अंग्रेज अपने आर्थिक और साम्राज्यवादी हितों की दृष्टि से भारत पर शासन करते रहे। कई दृष्टियों मे 1857 ई० के बाद की ब्रिटिश नीति पहले की अपेक्षा भारत के लिए अधिक हानिकर थी। सुधार की नीति छोड़ दी गई। अंग्रेजों ने सोचा कि भारत को पिछड़ा हुआ बनाए रखने से ही उनका शासन मजबूत हो सकता है। इसीलिए ब्रिटिश सरकार ने भारत में सिर्फ राजाओं और जमींदारों का समर्थन किया। अन्य भारतीयों, खासकर शिक्षित लोगों को अंग्रेज घृणा की दृष्टि से देखते थे। देश के प्रशासन में उनकी कोई पूछ नही थी, इस बीच भारत में राष्ट्रीय आंदोलन भी आगे बढ़ने लगा था। 1905 ई०तक राष्ट्रीय आंदोलन इतना शक्तिशाली हो गया कि अंग्रेज भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे। इसके साथ ही भारत में ब्रिटिश शासन का एक और दौर समाप्त हो गया।

अभ्यास

1. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :**
   1. सन 1857 ई० के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार की नीतियो के निर्माण में किन बातों का विशेष ध्यान रखा गया ?
   2. सन 1858 ई० के एलान के बाद इग्लैंड से भारतीय सरकार पर नियंत्रण रखने के तरीके में क्या परिवर्त्तन हुए ?
   3. सन 1858 के एलान में भारतीय जनता को क्या वचन दिए गए ?
   4. भारत मंत्री (सेक्रेटरी आफ स्टेट) की नियुक्ति के बाद गवर्नर-जनरल की स्थिति में क्या फर्क आया ?
   5. वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् के ढाँचे और कार्यो में सन 1853 से 1872 ई० तक क्या परिवर्त्तन हुए ?
   6. सन 1882 ई० में स्थानीय स्वशासन मे क्या परिवर्त्तन किए गए ?
   7. सरकारी राजस्व के मुख्य जरिए क्या थे ? राजस्व का वितरण केंद्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों के बीच कैसे होता था ?

8. सन 1857 ई० के विद्रोह के बाद सेना मे यूरोपीयो का अनुपात भारतीयों की अपेक्षा क्यो बढाया गया ?
9. सेना के संगठन मे फूट डालने और शासन करने की नीति किस प्रकार लागू की गई ?
10. सिविल सर्विस मे भारतीयो के लिए प्रवेश करना क्यो कठिन था ?
11. सन 1858 ई० के एलान के बाद ब्रिटिश सरकार और भारतीय राजाओं के आपसी संबंधो में क्या परिवर्त्तन हुए ?
12. अंग्रेजो ने "फूट डालो और शासन करो" की नीति कैसे लागू की ?
13. अफगानिस्तान और बर्मा के प्रति ब्रिटिश नीति का क्या आधार था ?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दो। उत्तर देने के लिए अन्य किताबों से सहायता लो।

1. सन 1858 ई० के एलान में कहा गया था कि सब भारतीयो को उन्नति के लिए समान अवसर दिए जाएँगे। अंग्रेजो ने अपना यह वचन कहाँ तक पूरा किया ?
2. कहा गया है कि 1857 ई० के बाद कई दृष्टियो मे भारत के प्रति ब्रिटिश नीति पहले की अपेक्षा अधिक हानिकर थी। उदाहरणो के साथ प्रशासन, सेना, न्यायपालिका, स्थानीय प्रशासन और समाज-सुधार के क्षेत्र में अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई नीतियो की चर्चा करो।

3. कालम 'क' में कुछ कानूनों के नाम दिए हैं। कालम 'ख' मे उनमें निहित मूल बातें दी गई हैं। कालम 'ख' को इस तरह व्यवस्थित करो कि कालम 'क' के कानूनों और 'ख' में कही गई बातों में मेल हो।

1. 1858 ई० का ऐक्ट	1. महारानी विक्टोरिया भारत की साम्राज्ञी घोषित की गई।
2. 1862 ई० का ऐक्ट	2. विधान परिषद् के सदस्यो को बजट पर विचार करने का अधिकार दिया गया।
3. 1876 ई० का ऐक्ट	3. नगरपालिकाओं में निर्वाचित सदस्यो को शामिल किया गया।
4. 1882 ई० का ऐक्ट	4. प्रांतीय और शिक्षा सेवाएँ बनी।
5. 1892 ई० का ऐक्ट	5. 6 से लेकर 12 तक अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति कर विधान परिषद् का विस्तार किया गया।
	6. भारत मंत्री (सेक्रेटरी आफ स्टेट) का पद बना।
	7. केंद्रीय और प्रांतीय सरकारो के बीच राजस्व के वितरण की व्यवस्था की गई।

4. करने के लिए रुचिकर कार्य :

1. भारत का मानचित्र खींचो। उसमें सन 1858 ई० के ब्रिटिश भारत की सीमाओं को दिखाओ।

2 सन 1858 ई० के एलान की मूल प्रति प्राप्त कर निम्नलिखित बातों से संबंधित धाराओं पर निशान लगाओ।

(क) केंद्रीय प्रशासन में परिवर्तन।

(ख) ब्रिटिश सरकार और भारतीय जनता के बीच संबंध।

(ग) ब्रिटिश सरकार और भारतीय राजाओं के बीच संबंध।

अध्याय 9

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का उदय

सन 1858 ई० के बाद अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह

सन 1857 ई० के विद्रोह के बारे में तुम पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हो। विद्रोह के दमन के बाद भारत के प्रति ब्रिटिश नीतियों में परिवर्तन हुए। नीतियों में परिवर्तनों के बारे में भी तुम पढ़ चुके हो। 1857 ई० के बाद भी काफी दिनों तक अंग्रेजी राज के खिलाफ हथियारबंद विद्रोह होते रहे। तुम सैयद अहमद बरेलवी के विद्रोह के संबंध में जान चुके हो। उसके विद्रोह को "वहाबी आंदोलन" कहा जाता है। 1857 ई० के विद्रोह के बाद काफी दिनों तक यह आंदोलन सक्रिय रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक के दौरान इस आंदोलन को दबा दिया गया। इसको दबाने के लिए अंग्रेजों को हजारों सैनिकों की आवश्यकता पड़ी। कुछ वहाबी नेताओं ने सहारनपुर के नजदीक देवबंद में एक स्कूल बनाया। उन्होंने निर्णय किया कि स्कूल ब्रिटिश सरकार या उसके समर्थकों से कोई आर्थिक सहायता नहीं लेगा। देवबंद का स्कूल अपने छात्रों में देशप्रेम की भावना भरता रहा। उसके छात्र देश की आजादी के लिए प्रयत्नशील हो गए। पंजाब में भी हथियार बंद विद्रोह हुआ। पंजाब के सिक्खों ने कूका आंदोलन शुरू किया। वे पंजाब से ब्रिटिश शासन खत्म करने के लिए उठ खड़े हुए। 1872 ई० में उस विद्रोह को बर्बरतापूर्वक दबा दिया गया। अनेक विद्रोहियों को गोली से उड़ा दिया गया। ब्रिटिश शासन को खत्म करने के लिए अनेक छोटे-मोटे विद्रोह हुए। उनमें से कुछ छोटे इलाकों तथा समूहों तक ही सीमित रहे। बाकी काफी व्यापक रहे।

राष्ट्रीय चेतना का उदय

इन विद्रोहों के अतिरिक्त भारत में धीरे-धीरे एक आंदोलन का उदय हुआ। यह

आदोलन एक राष्ट्र के रूप मे भारतीय जनता की आशाओं-आकांक्षाओ की अभिव्यक्ति था। इसीलिए इसे भारतीय राष्ट्रीय आदोलन कहा जाता है। पिछले तमाम आंदोलनों और विद्रोहो मे यह अधिक व्यापक था। यह आंदोलन किसी एक वर्ग, क्षेत्र या समूह की माँगो को लेकर नही चला। यह सारे राष्ट्र की माँगों को लेकर आगे बढ़ा। इस आंदोलन के उदय के साथ ही स्वतंत्रता के संघर्ष का राष्ट्रीय चरित्र हो गया। भारत की जनता एक राष्ट्र के रूप मे सामने आई। भारतीय जनता एक इकाई बन गई। ऐसा पहले कभी नही हुआ था।

"प्राचीन भारत" और "मध्यकालीन भारत" में तुम पढ़ चुके हो कि किस प्रकार भारत की जनता ने एक लबी अवधि मे एक समृद्ध समान संस्कृति विकसित की। तुम जानते हो कि अशोक और अकबर जैसे महान सम्राटों ने अधिकांश भारत को एक सूत्र में बाँधा। किंतु अठारहवी शताब्दी में देश में राजनीतिक फूट आ गई। देश छोटे-बडे अनेक राज्यो मे बँट गया। वे राज्य आपस में बराबर लड़ते रहते थे। हर राज्य दूसरो के मुकाबले मे ताकतवर बनना चाहता था। हर राज्य दूसरों के इलाके हथियाना चाहता था। तुम उस समय की स्थिति के बारे में पढ़ चुके हो। अंग्रेजों ने स्थिति से लाभ उठाया और भारत मे अपना राज्य कायम कर लिया। उस समय जनता को एक सूत्र में बाँधने वाली शक्तियाँ नही थी। लोगों की एक दूसरे पर निर्भरता नहीं थी। तुम पढ़ चुके हो कि हर गाँव स्वावलबी था। उसका बाहरी दुनिया से बहुत कम सबंध था। देश के एक हिस्से में होने वाली घटनाओं का दूसरे हिस्से पर बहुत कम प्रभाव पड़ता था। लोगो का कोई समान आर्थिक जीवन नही था। एक जगह रहने वाले लोग दूसरी जगह के लोगो पर आर्थिक रूप से बिल्कुल निर्भर नही थे। तुम देख चुके हो कि हर गाँव अपनी जरूरत की वस्तुएँ और सेवाएँ स्वय उत्पन्न कर लेता था।

समाज में अलगाव के अन्य कारण भी थे। उनमें जाति-प्रथा प्रमुख थी। एकता न होने का यह मतलब नही था कि लोग एक दूसरे से लडते या घृणा करते थे। बात इसके विपरीत थी। समान संस्कृति का विकास एकता लाने में सहायक था। आज की तरह ही धार्मिक विश्वासो, रीति-रिवाजो, भाषाओं, कला, आदि मे काफी विभिन्नताएँ थी। लोगो के विश्वास, रीति-रिवाज, भाषा और कला एक दूसरे से प्रभावित होते थे। उनमें आदान-प्रदान भारतीय जनता की संस्कृति के विकास की मुख्य विशेषता के रूप मे था। इससे देश के विभिन्न समुदायो और क्षेत्रों में परस्पर सहनशीलता आई। उन्होंने एक दूसरे की इज्जत करना सीखा। शासको की आपसी लडाइयों और झगडो का

सांस्कृतिक एकता पर बुरा प्रभाव नही पड़ा। आम जनता के बीच झगड़े नहीं बढ़े। जब हम एकता के अभाव की बात करते हैं तो हमारा मतलब होता है कि लोगों का दिन-प्रति-दिन का जीवन एक दूसरे से अलग-थलग था। राष्ट्रीयता के उदय के साथ ही देश के नागरिकों का जीवन एक दूसरे से बँधा। दैनिक जीवन में अलगाव खत्म हुआ।

यूरोप में राष्ट्रीयता

तुम यूरोप में राष्ट्रीयता के उदय और राष्ट्रों के निर्माण के बारे में पढ़ चुके हो। राष्ट्रीयता के विकास में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व मध्यम वर्ग का उदय था। उस समय मध्यम वर्ग में वाणिज्य-व्यवसाय में लगे लोग आते थे। यूरोप के कई देशों में मध्यम वर्ग ने शुरू में सामंतशाहों की शक्ति खत्म करने के लिए अपने राजाओं का समर्थन किया। राजाओं ने बदले में देश के अंदर और बाहर व्यापारियों और व्यवसायियों के हितों की रक्षा की। देश के विभिन्न भागों को एक शासन के अंतर्गत लाया गया। देश के अंदर वाणिज्य-व्यवसाय पर से हर प्रकार के प्रतिबंध और अवरोध हटा दिए गए। बाहर राजा अपने देश के व्यापारियों के हितो की प्रतिद्वंद्वी व्यापारियों के मुकाबले रक्षा करते थे। धीरे-धीरे हर देश में एक ही राजा के शासन में रहने वाले समान संस्कृति वाले लोगों की समान सामाजिक और आर्थिक आकांक्षाएँ हो गई। इस प्रकार राष्ट्र-राज्यों का उदय हुआ। पराधीन देशों ने स्वतंत्र राष्ट्र बनने के लिए संघर्ष किए। तुम पढ़ चुके हो कि उत्तर अमरीका के लोगों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध मुक्ति-संघर्ष छेड़ दिया था। उन्होंने ब्रिटिश अधीनता से छुटकारा पा लिया। वे संयुक्त राज्य अमरीका की स्थापना करने में सफल हो गए।

राष्ट्र-राज्यो के उदय के बाद लोगों ने जनतांत्रिक सरकार की स्थापना के लिए संघर्ष किए। उनकी माँग थी कि उनके देश की सरकार चुनी हुई हो। वह सिर्फ उन्ही के प्रति उत्तरदायी हो। कई देशों में राजाओं की शक्ति खत्म कर दी गई। फ्रांस में 1789 ई० की क्रांति के बाद राजतंत्र खत्म हो गया। फ्रांसीसी क्रांति ने हर जगह मानव-समता का नारा दिया। इन सब के कारण राष्ट्रीयता और जनतंत्र के विचार एक साथ जुड़ गए। जिन पराधीन राष्ट्रों के लोग छोटी राजनीतिक इकाइयो मे बँटे हुए थे, वे राष्ट्रीय एकता, स्वतन्त्रता और जनतंत्र के लिए आंदोलन करने लगे। राष्ट्रीयता और जनतंत्र का उदय उन्नीसवी शताब्दी के यूरोप के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता के रूप में हुआ।

भारतीय जनता और ब्रिटिश शासन में विरोध

भारतीय राष्ट्रीयता का उदय ब्रिटिश शासन द्वारा उत्पन्न की गई स्थितियों मे हुआ। तुम देख चुके हो कि अपने राजनीतिक और आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए ही अंग्रेज भारत पर शासन करते थे। तुम यह भी जानते हो कि इंग्लैंड के उद्योगपतियों और उच्च श्रेणियों के लोगों का इंग्लैंड के राजनीतिक और आर्थिक जीवन में बोलबाला था। उनके आर्थिक और राजनीतिक हितो की पूर्ति ब्रिटिश शासन का उद्देश्य बन गई थी।

इंग्लैंड में, जैसाकि हम पहले लिख चुके हैं, आम जनता ने अपने को संगठित करना शुरू कर दिया था। उसका उद्देश्य समाज में समानता लाना था। वह उच्च वर्गों के आधिपत्य के विरुद्ध लड़ने लगी थी।

अंग्रेज भारत को शोषण का क्षेत्र समझते थे। वे भारत को इससे अधिक कोई महत्त्व नहीं देते थे। भारतीय जनता और अंग्रेजी राज के आपसी विरोध की जड़ में यही बात थी। भारतीय जनता के हितों और अंग्रेजी राज के लक्ष्यो में कोई मेल नही था। उनमें परस्पर विरोध था। तुम पढ़ चुके हो कि भारतीय समाज की कुछ श्रेणियों का अंग्रेज समर्थन करते थे। उनका उद्देश्य उन्हे अपने पक्ष में रखना था। इस तरह वे अंग्रेजी राज को मजबूत बनाना चाहते थे। उनको छोड़कर बाकी भारतीय जनता के हित अंग्रेजी राज के लक्ष्यों से टकराते थे। अंग्रेजी राज के दौरान भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन मे कई परिवर्तन हुए। उनके कारण भारतीय जनता में एकता आई। उसने एकजुट होकर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन शुरू किया। उपर्युक्त परिवर्तन अंग्रेजों ने अपने हितों की दृष्टि से किए। किंतु परिवर्तनों का नतीजा उनके विरुद्ध गया। जनता अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए एकजुट हो गई। इस तरह ब्रिटिश शासन ने अनजाने उन स्थितियो को उत्पन्न कर दिया, जो उसके लिए घातक हुई।

राजनीतिक और प्रशासनिक एकीकरण

ब्रिटिश शासन के अंतर्गत लगभग सारे देश को एक राजनीतिक इकाई बना दिया गया। सिर्फ भारतीय राज्य अलग रह गए। किंतु उनपर भी ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण हो गया। डाक-तार और रेलवे की दृष्टि से ब्रिटिश भारत और भारतीय राज्यो में कोई भेद नही रहा। भारत का राजनीतिक एकीकरण अंग्रेजों ने अपने शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए किया। किंतु, यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था। सारे ब्रिटिश भारत मे एक समान प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की गई। इससे देश की राजनीतिक

एकता मजबूत हुई। सारे देश के लिए एक ही प्रकार के कानून बने। सिद्धांततः वे कानून सब लोगों पर समान रूप से लागू हुए। कानून की नजर में सब लोग बराबर हो गए। दूसरे शब्दों में, लोगों को समान कानूनी अधिकार मिले। इससे देश की राजनीतिक एकता को बल मिला। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोग अपने को एक राष्ट्र समझने लगे।

आर्थिक परिवर्तन

सन 1857 ई० तक भारत के आर्थिक जीवन में आए परिवर्तनों के बारे में तुम पढ़ चुके हो। तुम जानते हो कि गाँवों का अलगाव खत्म हो गया। कोई गाँव स्वावलंबी नहीं रह गया। वहाँ के लोग गाँव के बाहर बनी वस्तुओं का इस्तेमाल करने लगे। कई वस्तुएँ मीलों दूर से आने लगीं। इंग्लैंड में बनी वस्तुएँ भारत में बिकने लगीं। परिवहन के साधनों के विकास ने गाँवों का अलगाव और उनकी आत्म निर्भरता काफी कम कर दी। सबसे पहली रेल-लाइन 1853 ई० में बनी। उसने बंबई और थाना को जोड़ दिया। उसके बाद रेलवे का विस्तार तेजी से हुआ। आदमी और माल एक जगह से दूसरी जगह कम समय में जाने-आने लगे। देश के विभिन्न भाग एक दूसरे पर निर्भर हो गए। समान आर्थिक जीवन के विकास में सहायता मिली। उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल होने वाली फसलों की पैदावार बढ़ी। ऐसी फसलों में कपास का प्रमुख स्थान था। इन फसलों को उत्पन्न करने वाले किसान अनाज के लिए दूसरों पर निर्भर हो गए। उनको नकद पैसे मिलने लगे। इसलिए वे कारखानों में बने सामान खरीदने लगे। इस तरह गाँव और शहर नजदीक आने लगे। पुरानी अदला-बदली की अर्थव्यवस्था खत्म होने लगी।

भारत में आधुनिक उद्योगों के विकास से देश के आर्थिक जीवन में काफी परिवर्तन हुए। तुम पहले पढ़ चुके हो कि अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों के कारण भारत की दस्तकारियाँ नष्ट हो गईं। भारत को अंग्रेजी माल के बाजार के रूप में विकसित किया जाने लगा। रेलवे का निर्माण मुख्यतः देश के विभिन्न हिस्सों से बंदरगाहों तक कच्चा माल पहुँचाने तथा वहाँ से तैयार अंग्रेजी माल देश के विभिन्न हिस्सों में लाने के लिए हुआ। कच्चा माल भारत से इंग्लैंड जाता था और वहाँ से तैयार माल भारत आता था। किंतु रेलवे ने अप्रत्यक्ष रूप से भारत में आधुनिक उद्योगों की स्थापना में सहायता दी। उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में भारत में सूती कपड़े की मिलें बनीं। उसी समय जूट मिलें बनीं।

कोयले की खानें स्थापित हुई। कुछ नए उद्योगों पर भारतीयों का और शेष पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। उद्योगों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गई। 1895 ई० में कुल मिलाकर 144 सूती कपड़ा मिलें, 29 जूट मिलें और 123 खानें हो गईं। उनमें हजारों मजदूर काम करने लगे। ब्रिटिश शासन की नीतियों के कारण भारत में उद्योगों का विकास बड़ी धीमी गति से हुआ। भारतीय उद्योगों को अंग्रेजों ने कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। मशीनें बनाने वाले कोई भी उद्योग भारत में नहीं स्थापित हुए। भारत में मशीनें इंग्लैंड से आती थीं। डर था कि भारत में उनके बनने से इंग्लैंड के उद्योगपतियों को नुकसान होगा। भारत में आधुनिक उद्योगों का विकास धीमी गति से होने पर भी देश के आर्थिक जीवन में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए।

आधुनिक उद्योग और व्यापार देश के विभिन्न भागों को एक सूत्र में बाँधते हैं। वे उन्हें एक दूसरे के घनिष्ठ संपर्क में लाते हैं। आधुनिक उद्योग देश के दूसरे भागों से कच्चा माल प्राप्त करते हैं। उनमें तैयार सारे माल की खपत आसपास नहीं होती है। माल बेचने के लिए दूसरे हिस्सों में जाना पड़ता है। अगर दूसरे हिस्सों से कच्चा माल न मिले तो कारखाने बंद हो जाएँगे। इसी तरह अगर देश के दूसरे हिस्सों के लोग तैयार माल नहीं खरीदें तो उद्योग नहीं चलेंगे। इस प्रकार देश के विभिन्न भाग एक दूसरे पर निर्भर हो जाते हैं। परस्पर निर्भर होने के कारण लोगों में एकता विकसित होती है। आधुनिक उद्योग बड़े औद्योगिक शहरों को जन्म देते है, वहाँ बड़ी संख्या में लोग एक साथ काम करते हैं। उद्योगों में काम करने वाले लोग देश के विभिन्न भागों से आते हैं। वे विभिन्न जातियों, धर्मों और संप्रदायों के होते हैं। वहाँ ऐसी स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं कि जाति, धर्म तथा संप्रदाय महत्त्वहीन हो जाते हैं। क्षेत्रीय अंतर भी खत्म हो जाते है। कारखानों में काम करने वाले लोगों में मैत्रीपूर्ण संबंध कायम होते हैं। उनके बीच एकता स्थापित हो जाती है। एक साथ मिलकर अपनी माँगों के लिए आंदोलन करना उनके लिए संभव हो जाता है। अन्य शहरों तथा देश के अन्य भागों के लोगों के साथ मिलकर वे सामूहिक माँगों के लिए संघर्ष करते हैं। इस प्रकार शहर राजनीतिक आंदोलन के जन्मस्थान हो जाते हैं। इन कारणों से लोगों को एक राष्ट्र के रूप में सूत्रबद्ध करने में उद्योगों के विकास का काफी महत्त्व है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में आधुनिक उद्योगों का विकास शुरू हुआ। उनके विकास से देश में राष्ट्रीय चेतना बढ़ी। और इस प्रकार लोग क्षेत्रीय, धार्मिक, जातीय आदि भेदभावों को भूल कर समान राष्ट्रीय हितों के संबंध में सोचने लगे।

राष्ट्रीय चेतना का विकास

उपर्युक्त आर्थिक परिवर्तनों ने भारतीय समाज में नए वर्गों को जन्म दिया। तुम मध्यम वर्ग के उदय के बारे में पढ़ चुके हो। इस वर्ग के कुछ लोग व्यापार में लगे थे। आगे चलकर उन्होंने आधुनिक उद्योगों की स्थापना भी की। अन्य लोग प्रशासन के कार्यों में लगे थे या शिक्षा, वकालत, लेखन, पत्रकारिता, चिकित्सा, आदि के क्षेत्रों में थे। राजनीतिक और प्रशासनिक एकीकरण और उद्योग-व्यापार के विकास ने उन्हे एक सूत्र में बांधा। उन्होंने देखा कि उनके हित एक से हैं। वे अपने को एक राष्ट्र के नागरिक के रूप में देखने लगे। उदाहरण के लिए, सूती कपड़ा मिलों के मालिक ब्रिटिश सरकार की नीतियों से समान रूप से प्रभावित हुए। इसी तरह सरकारी नौकरियों में जाने के इच्छुक शिक्षित भारतीय भी ब्रिटिश नीतियों से समान रूप से प्रभावित हुए।

आधुनिक शिक्षा के प्रसार से राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्त्वपूर्ण सहायता मिली। तुम भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रारंभ के बारे में पढ़ चुके हो। उसका उद्देश्य छोटी सरकारी नौकरियों के लिए भारतीयों को तैयार करना था। ब्रिटिश शासकों का विश्वास था कि अंग्रेजी शिक्षा पाने वाले भारतीय उनके समर्थक बन जाएँगे। किंतु राममोहन राय जैसे भारतीय नेताओं ने भिन्न कारणों से अंग्रेजी शिक्षा का स्वागत किया। उनका विचार था कि अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा भारतीय लोग ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के बारे में जान पाएँगे। इसीलिए स्वयं भारतीय नेताओं ने आधुनिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयास किए।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में आधुनिक शिक्षा का काफी प्रसार हुआ। इससे शिक्षित भारतीय यूरोपीय साहित्य तथा संसार की घटनाओं के बारे में जान सके। तुम जानते हो कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी देशों में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे थे। तुम अब तक अमरीकी और फ्रांसीसी क्रांतियों के संबंध में पढ़ चुके हो। पश्चिमी देशों के महान चिंतकों ने जनतंत्र, समता, और राष्ट्रीयता के समर्थन में पुस्तकें लिखीं। उन विचारकों में वाल्तेयर, रूसो, तामस पेन, जान स्टुअर्ट मिल आदि थे। स्वतंत्रता के अमरीकी घोषणा पत्र और मानव और नागरिकों के अधिकारों के फ्रांसीसी क्रांतिकारियों के घोषणा पत्र ने नए क्रांतिकारी विचारों को जोरदार रूप में सामने रखा। उदाहरण के लिए, स्वतंत्रता के अमरीकी घोषणा पत्र ने कहा कि विधाता ने मनुष्यों में भेदभाव नहीं किया है। उसने उन्हें कुछ ऐसे अधिकार दिए हैं जो छीने नहीं जा सकते। उन अधिकारों की रक्षा के लिए सरकार बनती है। सरकार के अधिकार

और शक्ति का स्रोत जनता है। जब भी कोई सरकार उत्पीड़क हो जाती है, जनता को उसे खत्म करने या परिवर्तित करने का अधिकार होता है। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने स्कूल-कालेजो मे सरकार के प्रति निष्ठा पर बल दिया। शिक्षा-प्रसार से विपरीत प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों के लिए आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के भंडार का दरवाजा खोल दिया। फलस्वरूप वे राष्ट्रीय और जनतांत्रिक दृष्टिकोण अपनाने लगे। वे टामस पेन, रूसो आदि विचारकों की ओर आकर्षित हुए। उनके विचारो से वे प्रभावित हुए। अमरीकी स्वतंत्रता संग्राम, फ्रांसीसी क्रान्ति तथा इटली की स्वतंत्रता और एकता के लिए संघर्ष करने वाले गैरिबाल्डी और मेजिनी ने उन पर काफी प्रभाव डाला।

देश की समस्याओं पर लगभग सारे शिक्षित भारतीय समान दृष्टिकोण अपनाने लगे। वे जनतांत्रिक और राष्ट्रीय विचारों से प्रभावित हुए। वे क्षेत्रीय दृष्टिकोण के बदले राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सोचने लगे। वे आपस में मिलकर देश की समस्याओं पर विचार करने लगे। सारे शिक्षित भारतीय अंग्रेजी भाषा जानते थे। इससे देश के विभिन्न भागो के शिक्षित लोगो के बीच विचार-विनिमय आसान हो गया।

देश मे राष्ट्रीय विचारों का प्रसार करने मे शिक्षित भारतीयों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने विदेशी विचारकों की पुस्तकों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया। उन्होंने स्वयं भी पुस्तके लिखी और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। उन्होंने भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओ पर प्रकाश डाला। इससे भारतीयों मे चेतना आई। वे देश की समस्याओ और ब्रिटिश शासन के परिणामो के बारे मे सोचने लगे। पूरे देश के पैमाने पर संगठित होने की आवश्यकता महसूस की गई। उपन्यास, नाटक और कविता के द्वारा राष्ट्रीय चेतना का विकास किया गया। लोग देश की समस्याओ के प्रति जागरूक हो गए। अनेक भारतीय विद्वानो ने भारत के इतिहास का अध्ययन शुरू कर दिया। बड़ी संख्या मे भारतीय इतिहास पर पुस्तकें प्रकाशित हुई। भारतवासी कला, दर्शन, साहित्य, प्रशासन, विज्ञान आदि के क्षेत्र मे अपनी प्राचीन उपलब्धियों के बारे में जान सके। वे अपने देश पर गर्व करने लगे। देश के प्राचीन गौरव के ज्ञान ने उनमें आत्म-विश्वास भरा। वे देश के भविष्य के प्रति आशान्वित हो गए। वे देश के अच्छे भविष्य के लिए कार्य करने को तत्पर हो गए।

तुम पढ़ चुके हो कि भारतीय समाज मे कई कुरीतियां थी। अंध-विश्वास और संकुचित दृष्टिकोण ने घर कर लिया था। हरिजनो, स्त्रियों आदि की स्थिति अच्छी नही थी। तुम पढ चुके हो कि राममोहन राय जैसे सुधारकों ने कुरीतियों के विरुद्ध

आंदोलन चलाए थे। देश के हर भाग और समुदाय मे सुधार आंदोलन चले। उनके बारे मे तुम आगे चलकर पढ़ोगे। सुधार-आंदोलनों ने भारतीय समाज को अनेक कुरीतियो से मुक्त करने और देश मे एकता लाने मे सहायता दी।

ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष

हम पहले कह चुके हैं कि भारतीय जनता और ब्रिटिश शासन के हित परस्पर विरोधी थे। तुम पढ़ चुके हो कि ब्रिटिश नीतियों के कारण किसानों को कष्ट हुआ और दस्तकार बर्बाद हो गए। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारतीय जनता को कई घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ा। बड़े पैमाने पर बार-बार अकाल पड़े। लाखो लोग भूख और बीमारियो से मर गए। अनुमान है कि उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे अकाल से लगभग ढाई करोड़ लोग मर गए। ब्रिटिश शासकों की नीतियो के कारण भारत की बुरी दशा का यह सबूत है। हम ऊपर कह चुके है कि अंग्रेज भारतीय जनता के हितो का कोई ध्यान नही रखते थे। उदाहरण के लिए, हम निलहो को ले। अंग्रेज निलहे भारतीय किसानों को उनकी इच्छा के विरुद्ध नील की खेती करने के लिए मजबूर करते थे। उनसे मनचाही कीमत पर जबर्दस्ती नील खरीद लेते थे। इस तरह किसानो को भारी घाटा उठाना पड़ता था। जो किसान उनकी बात मानने मे आनाकानी या बिल्कुल इंकार करते थे उनपर वे तरह-तरह के अत्याचार करते थे। वे उन्हे गैर कानूनी रूप मे अपने जेलखानों मे बद कर देते थे।

भारतीय उद्योग तेजी से विकसित नहीं हो सके क्योंकि ब्रिटिश उद्योगपतियों के हितों को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया। अंग्रेज भारत को ब्रिटिश उद्योगों के लिए सस्ता कच्चा माल उत्पन्न करने वाला देश बनाए रखना चाहते थे। वे भारत को तैयार ब्रिटिश माल के बाजार के रूप मे रखना चाहते थे। तुम आयात चुगी के बारे मे पढ़ चुके हो। राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ ही लोगो ने अनुभव किया कि भारत की दरिद्रता का मुख्य कारण ब्रिटिश शासन था। शिक्षित भारतीयों को शुरू मे आशा थी कि अंग्रेज भारतीय उद्योगो के विकास मे सहायता करेगे। आगे चलकर उन्हे निराशा हुई। उन्होने देखा कि ब्रिटिश शासन के कारण देश की दरिद्रता बढ़ रही है।

भारत मे ब्रिटिश शासन बड़ा खर्चीला था। ब्रिटिश शासन का खर्च भारतीय जनता को उठाना पड़ता था। अन्य देशों के साथ ब्रिटिश सरकार ने युद्ध किए। युद्ध का खर्च भारत के लोगों को उठाना पड़ा। विशाल ब्रिटिश फौज का खर्च भी भारतीयो को देना पड़ता

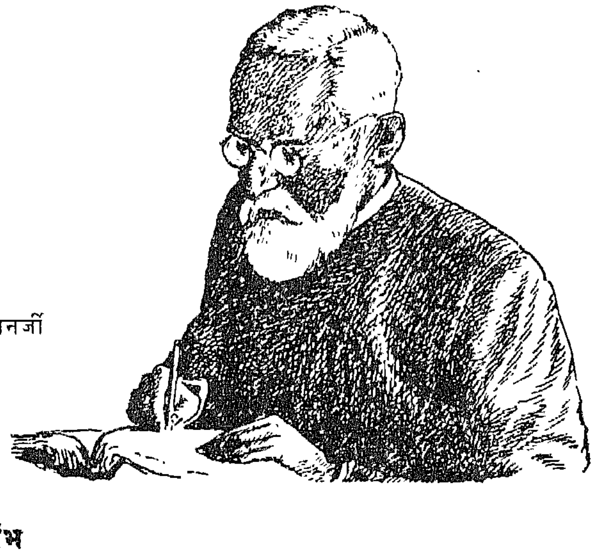
था। किंतु सेना का प्रयोग भारतीय जनता का दमन करने के लिए किया जाता था। अंग्रेज जिन देशों के खिलाफ सेना का इस्तेमाल करते थे उनसे भारतीय जनता का कोई झगड़ा नहीं था। बड़ी विचित्र स्थिति थी। भारतीय संसाधनों का इस्तेमाल उन कार्यों के लिए किया जाता था जिनसे भारत के लोगों को कोई फायदा नहीं था। सिंचाई, शिक्षा और अन्य कल्याण-कार्यों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। भारतीय जनता ने सरकारी खर्च घटाने की माँग की। फौजी खर्च कम करने पर जोर दिया गया। जनता पर कर का बोझ कम करने के लिए कहा गया।

तुम पढ़ चुके हो कि देश के शासन में भारतीयों की कोई पूछ नहीं थी। तुम जानते हो कि सरकारी नौकरियों में भारतीयों को बहुत कम जगहें दी जाती थीं। अंग्रेज काफी पढ़े-लिखे भारतीयों को भी घृणा की दृष्टि से देखते थे। कुछ वायसरायों ने सुझाव दिया कि सिविल सर्विस की प्रतियोगिता परीक्षाओं में भारतीयों के शामिल होने पर रोक लगा दी जाए। वे शिक्षित भारतीयों की प्रतिभा से भय खाते थे। परीक्षाओं में सफल होने पर भी सिविल सर्विस में वे भारतीयों को नहीं आने देना चाहते थे। इस कारण शिक्षित भारतीयों में बेरोजगारी बढ़ी। साथ ही भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष भी बढ़ा।

आज हम शायद ही कल्पना कर सकें कि उस समय भारतीयों को कितना अपमान सहना पड़ता था। सारे साम्राज्यवादी अपनी गुलाम प्रजा के साथ जातीय भेदभाव रखते हैं। शासक अपने को अपनी प्रजा से जातीय रूप में ऊँचा समझते हैं। वे सोचने लगते हैं कि भगवान ने उनकी सृष्टि विशेषकर नीच जातियों पर शासन करने के लिए की है। वे शासित देश के लोगों को अर्धमानव समझते हैं। उनके साथ मिलना-जुलना वे बुरा समझते हैं। ब्रिटिश शासकों में भी ये सारी बातें थीं। धनी या प्रशासन में उच्च पदों पर आसीन भारतीयों को भी अंग्रेजों से अपमानित होना पड़ता था। आम जनता को मामूली बातों के लिए पीटा जाता था, उस पर तरह-तरह के अत्याचार किए जाते थे। तुम पढ़ चुके हो कि अंग्रेज अगर किसी भारतीय की जान भी ले लेते थे तो उन्हें मामूली जुर्माना देना पड़ता था। कई स्थानों पर भारतीयों को नहीं घुसने दिया जाता था। रेलगाड़ियों में गोरे लोगों के लिए अलग डिब्बे होते थे। कई ऐसे अस्पताल थे जिनमें भारतीयों की चिकित्सा नहीं हो सकती थी। कई पार्कों में भारतीयों का जाना मना था। राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ इस अपमान के प्रति भारतीयों में रोष बढ़ने लगा।

भारतीयों को विचार, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बहुत कम थी।

अंग्रेज इस तरह राष्ट्रीयता के विकास और उनकी शिकायतों तथा असंतोष की अभिव्यक्ति को रोकना चाहते थे। अखबारों और किताबों पर बहुधा प्रतिबंध लगा दिया जाता था। उदाहरण के लिए, इटली के एकीकरण के नेता मेजिनी के ऊपर लिखी गई किताब को जब्त कर लिया गया। अंग्रेजों द्वारा लिखी गई कई किताबों पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। किंतु दमन और प्रतिबंध के बावजूद भारतीय जनता में राष्ट्रीय चेतना के विकास, और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता को रोका नहीं जा सका। भारतीय जनता के देशव्यापी संगठन बनने लगे। उसके देशव्यापी संगठनों की शुरूआत कुछ खास शिकायतों और माँगों को लेकर हुई। आगे चलकर एक संयुक्त राष्ट्रव्यापी आंदोलनों ने उनका स्थान ले लिया। आंदोलन का मुख्य लक्ष्य भारत को विदेशी शासन से पूरी तरह मुक्त करना हो गया।



सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

राष्ट्रीय आंदोलन का प्रारंभ

शुरू के संगठनों में सबसे महत्वपूर्ण इंडियन असोसिएशन था। इसकी स्थापना 1876ई० में कलकत्ता में हुई थी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इसके नेता थे। वे इंडियन सिविल सर्विस में चुने गए थे, किन्तु उन्हें अर्थहीन आरोपों के आधार पर बर्खास्त कर दिया गया। वे जीवन भर भारतीय जनता को उसकी राष्ट्रीय आकांक्षाओं के आधार पर एक करने की कोशिश करते रहे। ब्रिटिश नीतियों का विरोध करने के लिए उन्होंने देश के लोगों

को एकजुट करने का प्रयास किया। उनके नेतृत्व मे इंडियन असोसिएशन ने इंडियन सिविल सर्विस के नियमों, प्रेस पर प्रतिबंध, और ब्रिटिश सरकार के अन्य उत्पीडक कार्यो का विरोध किया। तुम इल्बर्ट विधेयक के ऊपर ब्रिटिश सरकार के झुकने के बारे में पढ़ चुके हो। भारतीय और ब्रिटिश जजों की समानता स्थापित करने वाला यह विधेयक नही पास हो सका। इसका कारण भारत में रहने वाले अंग्रेजों का कड़ा विरोध था। भारतीय जनता ने ब्रिटिश शासन के भारत-विरोधी चरित्र को अच्छी तरह समझ लिया। भारतीयों ने एकजुट होकर कदम उठाने की सीख ली। 1883 ई० में सुरेंद्रनाथ बनर्जी को दो महीने की सजा हुई। इससे भारतीय जनता का गुस्सा बढ़ गया। सारे देश मे राजनीतिक सरगर्मी आ गई। देश मे एक ऐसे संगठन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी, जो जनता का सही प्रतिनिधित्व कर सके। इस तरह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। वह भारतीय जनता का मुख्य संगठन बन गई। भारतीय जनता की आशाएँ-आकांक्षाएँ उसमें निहित हो गईं। आगे चलकर भारतीय जनता ने उसके झंडे के नीचे स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885 ई० में हुई। उसका पहला अधिवेशन उसी साल दिसंबर में बंबई में हुआ। एक सेवा निवृत्त अंग्रेज अफसर, ए० ओ० ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना मे प्रमुख भूमिका अदा की। उसने सारे भारत के प्रमुख नेताओं से संपर्क बनाया और कांग्रेस की स्थापना मे उनका सहयोग लिया। वह जानता था कि ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष बढ़ रहा है। उसने महसूस किया कि असंतोष को व्यक्त करने के लिए कोई संगठन न होने पर विद्रोह का खतरा उत्पन्न हो सकता है। एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता काफी समय से अनुभव की जा रही थी। सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने इस दिशा में प्रयास भी किए थे। कांग्रेस की स्थापना के बाद कई अन्य संस्थाओं का महत्त्व खत्म हो गया और उनके नेता कांग्रेस मे शामिल हो गए।

कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष उमेश चंद्र बनर्जी थे। कांग्रेस का लक्ष्य राष्ट्रीय नेताओं को एक जगह लाना और धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के झगड़ों से ऊपर उठकर समान राजनीतिक हितों के लिए जनता को एकजुट करना था। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में देश के विभिन्न भागों से काफी लोग आए। उसमें भाग लेने वाले प्रमुख नेताओं मे दादा भाई नौरोजी, बदरुद्दीन तैयबजी, सुब्रह्मण्यम् अय्यर और दिनशा वाचा थे।



दादा भाई नौरोजी



बदरुद्दीन तैयबजी

कांग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन में मांग की कि जिन प्रांतों में विधान परिषदें नहीं हैं उनमें विधान परिषदें बनें। विधान परिषदों के सदस्यों का चुनाव हो, फौजी खर्च में कमी हो, भारत और इंग्लैंड में साथ-साथ प्रतियोगिता परीक्षाएँ हों, और भाग लेने वाले उम्मीदवारों की उम्र बढ़ा दी जाए। ब्रिटिश सरकार को आशा थी कि कांग्रेस सरकार के प्रति निष्ठा रखेगी। याद रहे कि कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में अनेक अंग्रेज अफसरों ने भी भाग लिया।

कांग्रेस का अधिवेशन हर साल दिसंबर में होता था। हर साल अधिवेशन की जगह भिन्न होती थी। अधिवेशन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों की संख्या दिनोदिन बढ़ती गई। वार्षिक अधिवेशन में भाग लेने वाले प्रतिनिधि स्थानीय संगठनों द्वारा चुने जाते थे। इस तरह कांग्रेस उत्तरोत्तर प्रतिनिधि संस्था बनती गई। कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। उसमें 440 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। दादा भाई नौरोजी उसके अध्यक्ष थे। वे राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख नेताओं में थे। उन्होंने अपने ब्रिटेन-प्रवास में एक संस्था बनाई थी। उसका उद्देश्य भारतीय माँगों के लिए अंग्रेज नेताओं और जनता का समर्थन प्राप्त करना था। राष्ट्रीय आंदोलन में अपने महत्वपूर्ण योगदान के कारण वे तीन बार कांग्रेस के अध्यक्ष बने। वे ब्रिटिश संसद के सदस्य भी चुने गए। संसद में उन्होंने भारतीय जनता के हितों के लिए आवाज उठाई। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी 1886 ई० में कांग्रेस में शामिल हो गए। शुरू में कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में फिरोजशाह मेहता

आनंद चार्लू, रमेशचंद्र दत्त, गोपाल कृष्ण गोखले, आर० एम० सयानी, विजय-राघवाचारी, आनंद मोहन बोस आदि थे।

प्रारंभ में कांग्रेस ने देश की सरकार और प्रशासन में धीरे-धीरे सुधार लाने की माँग की। उसने विधान परिषदों के अधिकार बढ़ाने तथा उनका चुनाव कराने की भी माँग की। उसने सरकारी नौकरियों में ऊँचे पदों पर भारतीयों को नियुक्त करने का अनुरोध किया। कांग्रेस ने सरकार की आर्थिक नीतियों में परिवर्तन करने की माँग की जिससे भारतीय उद्योग विकसित हो सकें। उसने प्रशासन और फौज पर भारी सरकारी खर्च का विरोध किया। उसकी अन्य मुख्य माँगों में भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, कल्याणकारी कार्यक्रम, शिक्षा प्रसार आदि थे।

कांग्रेस के नेताओं का विश्वास था कि उनकी माँगें तर्कसंगत हैं और सरकार उन्हें मान लेगी। उनका दृष्टिकोण अंग्रेज-विरोधी नहीं था। उनका विश्वास था कि माँगों का औचित्य देखने और उन्हें मान लेने के लिए ब्रिटिश सरकार को तैयार किया जा सकता है। इसी ख्याल से उन्होंने प्रस्ताव पास किए और ब्रिटिश सरकार को याचिकाएँ भेजीं। अपनी माँगों के समर्थन में इंग्लैंड में भी जनमत तैयार करने की उन्होंने कोशिश की। उन्होंने अंग्रेज नेताओं का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया। उनको आशा थी कि अनुनय-विनय के द्वारा ही भारतीय जनता को धीरे-धीरे ब्रिटिश जनता के समान अधिकार मिल जाएँगे और देश स्वतंत्र हो जाएगा।

ब्रिटिश दृष्टिकोण और राष्ट्रीय आंदोलन के बढ़ते चरण

ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आंदोलन की माँगों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं, शुरू में ब्रिटिश शासक कांग्रेस के प्रति सहानुभूति रखते थे। किंतु जल्द ही उनका दृष्टिकोण बदल गया। कांग्रेस के प्रति उनका रुख शत्रुतापूर्ण हो गया। वायसराय सहित सारे ब्रिटिश अफसर कांग्रेस को थोड़े से भारतीयों की संस्था कहने और उसकी उपेक्षा करने लगे। उन्होंने प्रचार किया कि भारत एक राष्ट्र नहीं है बल्कि वह कई राष्ट्रों का एक समूह है और उसके हित समान नहीं हैं। वे भारतीय जनता में धर्म के आधार पर फूट डालने की कोशिश करने लगे। उन्होंने कहना शुरू किया कि हिंदुओं और मुसलमानों के हित भिन्न हैं। वे कुछ उच्चवर्गीय मुसलमानों को कांग्रेस से अलग करने की कोशिश करने लगे। वे उन्हें कहने लगे कि कांग्रेस की माँगें मान लेने पर उनका अहित होगा। इंग्लैंड में कांग्रेस ने अनेक अंग्रेज नेताओं को अपने पक्ष में कर

लिया था, किंतु वहाँ सरकार का रुख शत्रुतापूर्ण बना रहा। ब्रिटिश संसद के कुछ सदस्य भारत में सुधार लाने के पक्ष में बोलते थे, किंतु कुल मिलाकर ब्रिटिश संसद का रुख भारत के प्रति उपेक्षापूर्ण रहा।

तुम 1892 ई० के काउन्सिल ऐक्ट के बारे मे पढ़ चुके हो। वह भारतीय नेताओं की आशाओं के अनुकूल नही था। धीरे-धीरे भारतीय नेता ब्रिटिश सरकार से निराश हो गए। उनमे यह धारणा भी बनती गई कि सरकार की न्याय-बुद्धि पर भरोसा रखना बेकार है। अपने अधिकारों के लिए भारतीय जनता को संघर्ष करना पड़ेगा। सरकार से अनुरोध और अनुनय-विनय करने से कोई फल नही निकलेगा। शुरू में कांग्रेस का नेतृत्व उद्योगपतियों, वकीलों, व्यापारियों और मध्यम वर्ग के अन्य शिक्षित लोगों के हाथों में था। किंतु धीरे-धीरे कांग्रेस का प्रवेश आम जनता में हुआ और वह एक जन आंदोलन बन गई।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में भारतीय जनता को कई विपत्तियों का सामना करना पड़ा। भारत के अनेक भागों में बार-बार भयंकर अकाल पड़े। लाखों आदमी मर गए। सरकार के राहत कार्यों मे स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। देश की दरिद्रता उभरकर सामने आ गई। भारतीय नेताओं ने सरकारी नीतियों को लोगों की दरिद्रता का कारण बतलाया। अंग्रेज भारत का शोषण करते थे। भारत का धन इंग्लैंड जाता था। भारतीय जनता पर भारी कर लगाए गए थे। सरकार काफी फिजूलखर्ची करती थी। अधिकतर भारतीय नेता धनी परिवारो से आते थे। अकाल ने जनता की यातनाओं और तकलीफों को उभाड़कर उनके सामने रख दिया। सरकार की आलोचना करने और अपनी माँगों पर जोर देने मे राष्ट्रीय आंदोलन ने धीरे-धीरे उग्र रुख अपनाया।

राष्ट्रीय आंदोलन के व्यापक होने के साथ ही सरकार के दमनकारी कार्य भी बढ़े। 1898 ई० मे कर्जन गवर्नर-जनरल बना। उसने राष्ट्रीय आंदोलन का दमन तेजी से शुरू किया। उसने भारतीय जनमत की कोई परवाह नही की। उसने खुले आम कहा कि भारतीय महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त होने योग्य नहीं हैं। उसने कांग्रेस को खत्म करने का लक्ष्य बनाया। लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसने "फूट डालो और शासन करो" की नीति अपनाई। उसने बंगाल का विभाजन किया। उसका परिणाम उसकी आशा के विपरीत हुआ। उसके भारत छोड़ कर जाते समय तक राष्ट्रीय आंदोलन पहले की अपेक्षा अधिक मजबूत हो गया था।

उन्नीसवी शताब्दी के आखिरी दशक के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन में नई प्रवृत्तियाँ



बाल गंगाधर तिलक

जन्म लेने लगी। नई प्रवृत्तियों के जन्मदाताओं में बाल गंगाधर तिलक और विपिनचंद्र पाल प्रमुख थे। नए नेताओं ने कांग्रेस की नीतियों की आलोचना की और कांग्रेस की भीख माँगने की मनोवृत्ति की निंदा की। उन्होंने कहा कि जनता को सरकार की सदाशयता के बदले अपनी शक्ति पर निर्भर होना चाहिए। उनके अनुसार सिर्फ प्रशासन में सुधार की माँग पर्याप्त नहीं थी। वे चाहते थे कि भारतीय जनता का लक्ष्य "स्वराज्य" होना चाहिए। तिलक ने अपना प्रसिद्ध नारा "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है" दिया। यह लक्ष्य जनता के बीच काम कर और उसे राष्ट्रीय आंदोलन में लाकर ही प्राप्त किया जा सकता था। उन्होंने जनता को जगाया और उसे राष्ट्र-हित के लिए बलिदान करना सिखाया। तिलक के अखबार "केसरी" ने राष्ट्रवादियों के नए समूह को एकजुट किया। उन राष्ट्रवादियों ने जनता में राजनीतिक जागृति पैदा करने के लिए लोकप्रिय त्योहारों का इस्तेमाल किया। हड़ताल और विदेशी माल के बहिष्कार के नए तरीके भी उन्होंने अपनाए।

नई प्रवृत्तियों ने तेजी से जड़ें जमा लीं और राष्ट्रीय आंदोलन पर उनका प्रभाव

प्रमुख हो गया। तुम्हें याद होगा कि कांग्रेस का संगठन सरकार में अनुनय-विनय द्वारा सुधार लाने के लिए हुआ था। किंतु आगे चलकर उसमें नए नेताओं का बोलबाला हो गया। 1905 ई० में राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में एक नया दौर शुरू हुआ। कांग्रेस ने अपनी स्थापना से लेकर बीस वर्षों तक जनता को समान राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एकजुट किया। आगे चलकर जनता की एकता काफी मजबूत हो गई और लक्ष्य अधिक स्पष्ट हो गए। शुरू में कांग्रेस एक छोटे आंदोलन के रूप में शुरू हुई जिसमें थोड़े से लोग ही भाग लेते थे, किंतु आगे चलकर उसका स्वरूप देशव्यापी हो गया। उसमें लाखों लोगों ने देश की स्वतंत्रता के लिए भाग लिया।

अभ्यास

1. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :**

   1. वहाबी और कूका आंदोलनों के बारे में क्या जानते हो? उनके क्या लक्ष्य थे?
   2. आर्थिक जीवन में वे कौन से परिवर्तन हुए जिनसे भारतीय जनता में एकता आई? उन परिवर्तनों ने कैसे एकता स्थापित की?
   3. भारत में राष्ट्रीयता के उदय पर शिक्षा और सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों का क्या प्रभाव पड़ा?
   4. ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में स्थापित प्रशासन-व्यवस्था ने राष्ट्रीयता के उदय में क्या योगदान दिया?
   5. किस तरह भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हुए पुराने विद्रोहों से भिन्न था?
   6. भारतीय जनता के प्रति ब्रिटिश शासकों का क्या रुख था? भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों के प्रति उनके रुख में क्या भिन्नता थी?
   7. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कब हुई? शुरू के बीस वर्षों में उसकी मुख्य माँगें क्या थीं?
   8. सन 1885 से सन 1905 ई० तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की माँगों के प्रति ब्रिटिश सरकार के रुख के बारे में लिखो।
   9. "फूट डालो और शासन करो" की नीति का क्या मतलब है? "फूट डालो और शासन करो" की ब्रिटिश नीति की मुख्य बातों के बारे में लिखो।
   10. उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दिनों में राष्ट्रीय आंदोलन में किन नई प्रवृत्तियों का उदय हुआ? उनकी लोकप्रियता के क्या कारण थे?

2. कालम 'क' में कुछ कथन और कालम 'ख' में कुछ व्यक्तियों के नाम दिए गए हैं। कालम 'ख' को इस प्रकार व्यवस्थित करो कि दोनों में सही संबंध स्थापित हो जाए।

'क'	'ख'
1. वे इंडियन असोसिएशन के संस्थापक थे।	1. ए० ओ० ह्यूम
2. वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष थे।	2. बाल गंगाधर तिलक
3. वे कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन के अध्यक्ष थे।	3. दादा भाई नौरोजी
4. वे एक अवकाश प्राप्त ब्रिटिश अफसर थे जिन्होंने कांग्रेस की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।	4. उमेश चंद्र बनर्जी
5. उन्होंने कहा कि स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा।	5. सुरेंद्र नाथ बनर्जी

3. नीचे कुछ कथन दिए गए हैं, उनमें जो सही हों उनके सामने (✓) निशान और जो गलत हों उनके सामने (X) निशान लगाओ।

1. ब्रिटिश आर्थिक नीतियों का उद्देश्य भारत में आधुनिक उद्योगों को विकसित करना था।
2. इलबर्ट विधेयक ने अंग्रेज जजों के समान ही भारतीय जजों को स्थान देने की कोशिश की।
3. ब्रिटिश सरकार ने शिक्षित भारतीयों को ऊँची नौकरियों में प्रवेश के लिए प्रोत्साहन और सुविधाएँ दीं।
4. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1895 ई० में ही ब्रिटिश सरकार से भारत को स्वतंत्र करने की माँग की।
5. भारतीय राष्ट्रीय नेताओं को अमरीकी स्वतंत्रता की लड़ाई, फ्रांसीसी क्रांति और इटली के एकीकरण के आंदोलन से प्रेरणा मिली।

4. करने को रुचिकर कार्य :

1. सन 1885 से सन 1905 ई० तक कांग्रेस के जो महत्त्वपूर्ण नेता हुए उनकी सूची बनाओ। उनमें से किसी एक की जीवनी पढ़ो। उनके जीवन और कार्यों के बारे में संक्षेप (200-300 शब्दों) में लिखो। उनका चित्र प्राप्त करो या उनका रेखा-चित्र बनाकर लगाओ। सहपाठियों को दिखाओ।
2. शुरू के बीस वर्षों में कांग्रेस की जो माँगें थीं उनकी सूची बनाओ, और उन्हें तालिका के रूप में कक्षा-भवन में प्रदर्शित करो।

अध्याय 10

आर्थिक और सामाजिक जीवन

(1858 ई०-1947 ई०)

इंग्लैंड की महारानी ने 1858 ई० के एलान में अन्य बातों के अतिरिक्त भारत के आर्थिक विकास और भारतीय जनता के कल्याण पर विशेष जोर दिया था। देश की तत्कालीन स्थिति, विशेषकर गाँवों की हालत को देखते हुए लोगों की आर्थिक और सामाजिक भलाई के लिए बड़े पैमाने पर कार्यक्रम चलाने की जरूरत थी। आर्थिक विकास के लिए ब्रिटिश प्रशासकों ने कुछ कदम उठाए किंतु उनसे एलान के लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सके। सरकार की कार्रवाइयों का उद्देश्य इंग्लैंड के औद्योगिक और व्यावसायिक हितों को पूरा करना था। यह कोई नई बात नहीं थी। सब साम्राज्यवादी सरकारें यही करती हैं। भारत का निरंतर पिछड़ापन और फलस्वरूप लोगों की गरीबी उसकी गुलामी की कारण थीं।

वैसे देश के आर्थिक क्षेत्र में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में और उसके बाद अनेक परिवर्तन हुए। वे परिवर्तन रेलवे के निर्माण, धीमी गति से ही सही, उद्योगों की स्थापना, जनसंख्या में वृद्धि, नकद फसलों की बढ़ती माँग, और भारतीय उद्योगों में ब्रिटिश पूँजी के प्रवेश के कारण हुए। परिवर्तनों के फलस्वरूप देश के विभिन्न क्षेत्र एक दूसरे पर निर्भर हो गए। स्वावलंबी गाँवों के समूह के स्थान पर एक समान आर्थिक जीवन शुरू हो गया। यह भारत की एकता में सहायक सिद्ध हुआ।

खण्ड—क

भूमि व्यवस्था और कृषि

किसानों पर भारी बोझ

तुम्हें याद होगा कि कंपनी के शासन-काल में जमींदारी और रैयतवारी भूमि-

व्यवस्थाएँ लागू की गईं। जमींदारी व्यवस्था मुख्य रूप से पूर्व, मध्य और उत्तर भारत में लागू की गई। इस व्यवस्था के अतर्गत जमीदार सरकार को निश्चित राजस्व अदा करते थे। वे सरकार और किसानों के मध्य बिचौलिए का काम करते थे। दक्षिण और पश्चिम भारत में रैयतवारी व्यवस्था लागू की गई। वहाँ सरकार का किसानों से सीधा संबंध हो गया। दोनों व्यवस्थाओं का उद्देश्य नियमित रूप से सरकार को भू-राजस्व प्राप्त कराना था। आशा की जाती थी कि काश्त की सुरक्षा और सरकारी राजस्व की स्थिरता आगे चलकर देश के कृषि-विकास में सहायक होगी, किंतु ऐसा नही हो सका।

किसानो पर भू-राजस्व का भारी बोझ आ गया। 1859 ई० में जमीदारी क्षेत्रो में कई कानून बने जिनमे किसानों से भू-राजस्व की माँग नियंत्रित की गई। सब कानूनो का उद्देश्य किसानों से उचित लगान लेना और उनको काश्त की सुरक्षा देना था। किसी जमीन पर लगातार बारह वर्षो तक खेती करने वाले किसान को उस पर काश्तकारी अधिकार देने की व्यवस्था की गई। उसकी बेदखली गैर कानूनी करार दी गई। किंतु रैयतवारी क्षेत्रो में सरकार ने ऐसे कानून नही बनाए। वहाँ राजस्व अधिकारियों का बोलबाला बना रहा। उन्होंने किसानो की वास्तविक आर्थिक स्थिति का बिना ध्यान रखे राजस्व का पुनर्निर्धारण करना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि किसानो के लिए राजस्व का बोझ असहनीय हो गया। उन्हे पैसो के लिए महाजनों की शरण लेनी पड़ी। किसान महाजनों के चंगुल में फँस गए। 1875 ई० मे दक्कन के कुछ जिलो में किसानो का असंतोष इतना बढ़ा कि वे विद्रोह कर उठे। वहाँ दगे हुए, दुकानो और घरों में आग लगा दी गई तथा अन्न का भडार लूट लिया गया। सरकार ने 1879 ई० में एक कानून पास किया। उसके अनुसार महाजनों द्वारा किसानो की जमीन हथियाने पर रोक लगा दी गई। किंतु किसानों की बुरी हालत के मूल कारण——राजस्व में मनमानी वृद्धि के सबंध में कुछ नही किया गया।

जनसख्या में वृद्धि से जमीन पर दबाव बढ़ गया क्योंकि उद्योगो के क्षेत्र में कोई खास विकास नही हुआ। इस कारण बड़े किसानो ने अपनी जमीन बटाई पर देनी शुरू कर दी। इस तरह लगान-उपजीवी लोगों की एक शृंखला बन गई। उनका खेतीबारी से कोई संबध नहीं था। वे किसानों पर भार बन गए। बाद में कुछ ऐसे कानून बने, जिन्होंने बिचौलियों पर चोट की, किंतु भारत के स्वतंत्र होने तक भूमि व्यवस्था में कोई आमूल परिवर्त्तन नहीं हो सका। और बिचौलियो द्वारा किया जा रहा जनता का शोषण रोका नही जा सका।

जोतों का छोटा आकार

जोतो का छोटा आकार कृषि के पिछड़ेपन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण था। उत्तराधिकार संबधी कानूनों के कारण पारिवारिक जोतें बँटती और लगातार छोटी होती गईं। खेत बिखर गए। 1771 ई० और 1915 ई० के बीच दक्कन में जोत का औसत क्षेत्रफल 40 एकड़ से घटकर 7 एकड़ हो गया। इस कारण अधिकतर किसान अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त अनाज उत्पन्न नहीं कर पाते थे। यूरोप के देशों में पैतृक संपत्ति सबसे बड़ी संतान को मिलने का कानून रहा है। इसलिए वहाँ जोतों का अनावश्यक विभाजन नहीं हुआ।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खेती की जाने वाली भूमि का क्षेत्रफल बढ़ा। किंतु इससे भी जमीन पर जनसंख्या का दबाव कम नहीं हुआ।

बढ़ती हुई जनसंख्या के अतिरिक्त अन्य किसी क्षेत्र में रोजगार के अवसर नहीं मिलते थे। 1861 ई० में भारत की अनुमानित जनसंख्या 20 करोड़ 60 लाख थी जो 1901 ई० में 28 करोड़ 30 लाख और 1961 ई० में 38 करोड़ 90 लाख हो गई। किंतु कृषि-उत्पादन जनसंख्या की वृद्धि के अनुकूल नही बढ सका। खाद्यान्नों का उत्पादन काफी कम हो गया।

व्यावसायिक फसलें

खाद्यान्नो की पैदावार में कमी आने का एक मुख्य कारण था—व्यावसायिक फसलों का बढ़ता हुआ महत्त्व। किसानो का झुकाव कपास और जूट जैसी व्यावसायिक फसलों की ओर हो गया। व्यावसायिक फसलों की माँग उद्योग-धंधो में होने लगी थी। सरकार ने व्यावसायिक फसलो को प्रोत्साहित किया, किंतु खाद्यान्नो की कमी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। 1861 ई० से 1865 ई० तक अमरीका में गृह युद्ध हुआ। इसलिए वहाँ से इंग्लैंड में कपास आनी बंद हो गई। कपास के अभाव को दूर करने के लिए अंग्रेजों ने भारत में कपास के उत्पादन को प्रोत्साहित किया। बंबई, मद्रास और मध्यप्रदेश में इस काम के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किए गए। भारत में कपास की पैदावार बढ़ी और कुछ किसान समृद्ध भी हो गए।

किसानों की बढ़ती हुई गरीबी

देश के स्वतंत्र होने तक भारत की ग्रामीण जनसंख्या दो संकटों से त्रस्त थी। वे दो

संकट थे—ऋणग्रस्तता और अकाल। साफ था कि भारत के कृषि-विकास का स्तर निम्न और गति धीमी थी। बहुसंख्यक किसानों को दोनों समय भरपेट खाना भी नहीं मिलता था।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता

हर जगह किसान कर्ज में डूबे हुए थे। किसानों के ऋण का एक मात्र जरिया महाजन था। अन्य देशों में किसान कर्ज लेकर खेतीबारी के कामों में लगाते थे। वे बीज, खाद, औजार आदि खरीदते थे। किंतु हिन्दुस्तान के किसान कर्ज लेकर मुख्यत: गैर उत्पादक कार्यों में खर्च करते थे। वे कर्ज लेकर भू-राजस्व अदा करते और अभाव के समय अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। शादी-ब्याह और जन्म-मरण के समय खर्च करने के लिए भी उन्हें कर्ज लेना पड़ता था। आम भारतीय किसान की औसत आय इतनी कम थी कि एक बार कर्ज लेने पर शायद ही वह उसके भार से मुक्त हो पाता था। 1880ई० में करीब तीन चौथाई भारतीय किसान ऋणग्रस्त थे। यही स्थिति उन्नीसवीं शताब्दी के शेष वर्षों में भी रही।

महाजन धीरे-धीरे कर्ज वापस न करने वाले किसानों की जमीन हथिया लेते थे। अधिकतर महाजनों का खेतीबारी से कोई सीधा संबंध नहीं था। इससे कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी राज के पहले जमीन के हस्तांतरण पर कई प्रतिबंध थे। कर्ज की वसूली के लिए महाजन राज्य से अधिक सहायता नहीं पा सकते थे। किंतु अंग्रेजी राज द्वारा स्थापित न्यायपालिका ने महाजनों को काफी अधिकार दे दिए। ऋण लेने वालों की अपेक्षा उनकी शक्ति कई गुना बढ़ गई।

इस शताब्दी के शुरू से ही भूमि के हस्तांतरण पर रोक लगाने के लिए कानून बनते आए हैं। ब्याज को अधिकतम दर और राशि निश्चित कर दी गई है। किसानों को उचित मात्रा में और ब्याज की उचित दर पर ऋण दिलाने में सहकारी समितियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। भारत में सहकारिता आंदोलन 1904 ई० में शुरू हुआ, किंतु समस्या की विशालता को देखते हुए सहकारी समितियों के बावजूद स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आया है।

भारत में अकाल

भारतीय किसान मुख्य रूप से मानसून पर निर्भर था। मानसून के ठीक समय पर

न आने के कारण फसल नहीं होती थी। जिस साल मानसून ठीक समय पर आता था, उस साल भी आम किसान की पैदावार इतनी नहीं होती थी कि वह भविष्य के लिए बचा कर कुछ रख सके। इन कारणों से बार-बार अकाल पड़ते रहते थे। 1860 और 1908 ई० के बीच के बीस वर्ष अकाल वाले रहे। किंतु किसी भी साल देश-व्यापी अकाल नहीं पड़ा। सड़कों और रेल लाइनों के निर्माण के बाद अभावग्रस्त क्षेत्रों में अनाज पहुँचाना संभव हो गया। किंतु अकाल देश के किसी न किसी क्षेत्र में पड़ता ही रहा। असली समस्या यह थी कि छोटे किसान और मजदूर साल भर के लिए पर्याप्त अनाज नहीं उत्पन्न कर पाते थे। थोड़े दिनों के लिए भी बेरोजगार हो जाने पर उनके सामने भूखों मरने का संकट आ जाता था।

अकाल के कई परिणाम होते थे। बड़ी संख्या में मनुष्य और मवेशी मर जाते थे। पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक भोजन न मिलने के कारण महामारियाँ फैल जाती थी। अकाल-



पूर्वी बंगाल के सुप्रसिद्ध चित्रकार जैनुल आबेदीन द्वारा बनाया गया बंगाल के अकाल का एक रेखाचित्र।

ग्रस्त किसानों की जमीन बड़े किसान और महाजन हथिया लेते थे। अकाल वाले क्षेत्रों को छोड़कर किसान दूसरे इलाकों में चले जाते थे।

बार-बार अकाल पड़ने के कारण सरकार ने अकाल आयोगों की नियुक्ति की। उनकी सिफारिशों को मानकर सरकार ने 1883 ई० में प्रति वर्ष 1 करोड़ 50 लाख रुपए राहत कार्य और बीमा के लिए देने का निर्णय किया। प्रशासकों के मार्ग-निर्देशन के लिए अकाल संहिता बनी। लगान-माफी, सिचाई-कार्यों का विस्तार, पीड़ित लोगों को पैसे की सहायता आदि संहिता की मुख्य बातें थी। किंतु सरकार कभी समस्या की तह तक नहीं गई। उसने 1880 ई० के अकाल आयोग की सिफारिशें नहीं मानीं और कृषि क्षेत्र में लगी आवश्यकता से अधिक जनसंख्या को अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अवसर प्रदान नहीं किए।

बीसवी शताब्दी में कम अकाल पड़े। उनकी भयंकरता भी कम थी। इसका मुख्य कारण सिचाई, परिवहन तथा राहत-कार्यों मे सुधार था। लोग भी बार-बार आने वाली इस विपत्ति के प्रति सचेत हो गए थे। बीसवीं शताब्दी में सबसे भयंकर अकाल 1943 ई० में बंगाल में पड़ा। उसमे दस लाख से भी अधिक लोग प्रभावित हुए। किंतु उस अकाल के लिए मनुष्य ही जिम्मेदार थे। वह अकाल दूसरे महायुद्ध के दौरान प्रशासनिक गोलमाल के कारण पड़ा। मानसून की गड़बड़ी का उसमें कोई हाथ न था।

सिंचाई की सुविधाओं का विकास

पुराने जमाने से ही सरकारी और निजी प्रयासों से तालाब, कुएँ, नहर और बांध बनते आए थे। उनसे खेतों की सिंचाई होती थी। किंतु अंग्रेजी राज में सिंचाई के ऊपर कोई ध्यान नहीं दिया गया। ध्यान न देने के कारण सिचाई की पुरानी सुविधाएँ भी कम हो गईं।

अकाल के समय सिचाई का प्रश्न सदा उभर कर सामने आया। सारे अकाल आयोगों ने भारत में सिंचाई की सुविधाएँ बढ़ाने की सिफारिश की। उन्होंने नहरों के विकास के लिए कार्यक्रमों की शिफारिश की। सिंचित भूमि का क्षेत्रफल बहुत थोड़ा बढ़ा। 1940 ई० तक खेती की जाने वाली 13 प्रतिशत भूमि में ही सिंचाई की सुविधाएँ थीं। किंतु मानसून पर निर्भरता पहले की अपेक्षा निश्चित रूप से कुछ कम हो गई। सिंचित भूमि में फसलों के उगाने पर अधिक खर्च पड़ता था, क्योंकि किसानों से सरकार काफी पैसे सिचाई-सुविधाओं के लिए लेती थी। इसलिए किसान व्यावसायिक फसलों

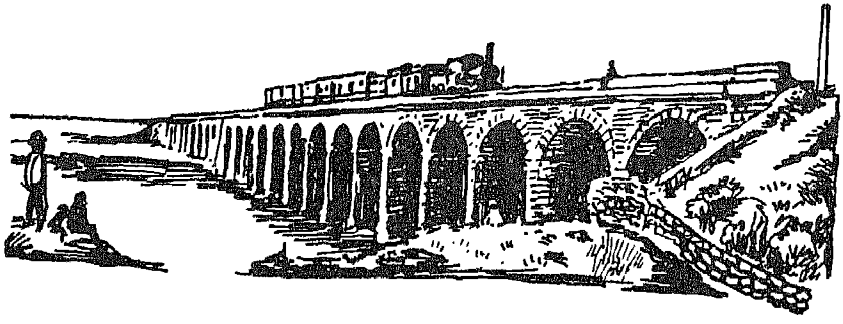
के उत्पादन की ओर झुकने लगे। इस तरह सिंचाई की सुविधाओं के बढ़ने से व्यावसायिक फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला।

कृषि के विकास के क्षेत्र में इस शताब्दी के शुरू मे सरकार ने कुछ रचनात्मक नीतियाँ अपनाई। केंद्र और प्रांतों में कृषि विभाग बने। कृषि विभाग तथ्य और आँकड़े जमा करने और विकास के लिए प्रशासनिक कार्यक्रम चलाने लगे। कृषि में आधुनिक उच्च प्रशिक्षण, अनुसंधान और प्रयोगात्मक खेती के लिए पूसा (बिहार) मे इंपीरियल इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रिकल्चर बना। बाद मे वह संस्थान दिल्ली चला आया। देश के विभिन्न भागों में कुछ कृषि-स्कूल और कालेज भी बने। खेतीबारी के विकास के लिए ये आवश्यक कदम थे। किंतु कृषि के विकास में जमीदारों ने कोई दिलचस्पी नहीं दिखलाई। बिना कोई सुविधाएँ प्रदान किए ही वे किसानों से अधिकतम लगान वसूल करते रहे। कृषि के क्षेत्र मे उन्नत औजारों और यंत्रों का प्रयोग नहीं हो सका। कृषि-उत्पादन में वृद्धि के साथ ही जनसंख्या भी बढ़ी इसीलिए कृषि-उत्पादन की वृद्धि का कोई विशेष प्रभाव मालूम नहीं पड़ा। भूमि के वितरण में विषमता और भूमिहीन किसानों की भारी संख्या भी स्थिति के सुधार में बाधक बनी। कृषि-उत्पादन में वृद्धि के लिए आवश्यक था कि किसान खेतीबारी के कामों में दिलचस्पी ले। उनकी दिलचस्पी खेतीबारी मे तभी हो सकती थी जब उन्हें अपनी जात की जमीन पर निश्चित अधिकार होता। किंतु ऐसा नहीं हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ही भूमि-सुधार किए जा सके।

परिवहन का विकास

देश के आर्थिक विकास के लिए परिवहन और संचार के कुशल साधन आवश्यक है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारत में परिवहन और संचार की दृष्टि से स्थिति बहुत खराब थी। उस समय तक सिर्फ दो आधी बनी बड़ी सड़कें--कलकत्ता और दिल्ली तथा बंबई और आगरा के बीच——थी। डलहौजी 1848 ई० में गवर्नर-जनरल बनकर आया। उसने सार्वजनिक निर्माण विभाग की स्थापना की। उसने सड़क, रेलवे और टेलीग्राफ के निर्माण और विस्तार को प्रोत्साहन दिया। 1857 ई० के विद्रोह ने उनके विस्तार और उनमें सुधार पर जोर दिया। उनके विस्तार और सुधार से ब्रिटिश शासन की सुरक्षा बढ़ गई।

यातायात के साधनों में विकास होने से देश की वाणिज्य-व्यवस्था और विभिन्न उद्योगों को प्रोत्साहन मिला।



भारत मे थाना और बंबई के बीच चलने वाली पहली रेलगाड़ी।

रेलवे

रेलवे ने भारतीय परिवहन व्यवस्था का स्वरूप ही बदल दिया। पहली रेल लाइन 1853 ई० में बंबई और थाना के बीच बनी। दूसरे साल कलकत्ता को बंगाल की कोयला-खानों से जोड़ दिया गया। 1856 ई० में मद्रास का रेल-संबंध आर्कोनम् से हो गया। तब से सरकार और निजी ब्रिटिश कंपनियों के प्रयास से रेलवे का तेजी से विस्तार हुआ।

शुरू के वर्षों में रेल विभाग ने बड़ी लाइनों के निर्माण पर ही जोर दिया। कलकत्ता, बंबई और मद्रास जैसे बड़े बंदरगाहों को अन्य शहरों और खेतिहर इलाकों से जोड़ दिया गया। 1875 ई० तक देश के अधिकतर महत्त्वपूर्ण शहर एक दूसरे से जुड़ गए और देश में 5,000 मील से लंबी रेल लाइन हो गई। रेलमार्ग के निर्माण का मुख्य उद्देश्य विदेश-व्यापार को बढ़ाना था। उसका उद्देश्य देशी व्यापार और उद्योगों को विकसित करना नहीं था। विदेश व्यापार मुख्य रूप से अंग्रेज सौदागरों के हाथों में था। रेलमार्ग-निर्माण संबंधी यह नीति प्रथम महायुद्ध तक चलती रही। प्रथम महायुद्ध के बाद में भारतीय उद्योगों को विकास का अवसर मिला। देश का जनमत भी दृढ़ और मुखर हो गया। यह जोर दिया जाने लगा कि रेलवे विदेशी हितों के बदले देश के आर्थिक हितों पर ध्यान दे। रेलवे भारी मुनाफा कमा रही थी जो उस समय देश के बाहर चला जाता था। रेलवे पर सरकार का स्वामित्व था, लेकिन उसका प्रबंध कई ब्रिटिश कंपनियाँ करती थीं। 1947 ई० तक भारत में रेल लाइनों की लंबाई 43 हजार मील से अधिक हो गई। किन्तु स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ।

रेलवे का भारतीय अर्थव्यवस्था और आम लोगों के जीवन पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा। आवागमन तेज, सस्ता और अधिक सुरक्षित हो गया। देश का उत्पादन बाहर के बाजारों में जाने लगा। अकाल की भयंकरता कम हो गई क्योंकि अभावग्रस्त इलाकों में अनाज पहुँचाना आसान हो गया। आसानी से कोयला और कच्चा माल मिलने से उद्योगों के विकास में सहायता मिली। देश के विभिन्न भागों में कीमतों में अंतर कम हो गया। रेलमार्ग के निर्माण से अनियत और अप्रशिक्षित मजदूरों का समूह सामने आया। रेलवे ने देश के विभिन्न भागों मे कई-कई सालो तक ऐसे मजदूरों को काम पर रखा जो गरीब किसान या भूमिहीन खेतीहर मजदूर होते थे।

रेलमार्ग के विस्तार के साथ सड़कों का निर्माण भी हुआ। सड़कों ने गाँवों की जिदगी को काफी प्रभावित किया और उनका स्वावलंबी चरित्र खत्म कर दिया। खेतीबारी पर भी प्रभाव पडा।

भारत में आधुनिक उद्योग

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारत में कुछ आधुनिक उद्योग बने। भारत में बागानों और कारखानों का निर्माण हुआ। उनका स्वामित्व और संचालन मुख्यत: अंग्रेज कंपनियों के हाथों में था। कुछ उद्योगों पर भारतीयों का अधिकार था। किंतु सरकार की नीतियों के कारण उनका विकास नहीं हो सका।

औद्योगिक विकास के प्रारंभिक चरण में हर देश को विदेशी प्रतियोगिता से बचने के लिए संरक्षण की नीति अपनानी पड़ती है। किंतु ब्रिटिश सरकार ने लंबे समय तक इस तरह की कोई कार्रवाई नहीं की, क्योंकि उससे इंग्लैंड के हितों को हानि पहुँचती। तुम जानते हो कि इंग्लैंड में तैयार माल के लिए भारत सबसे बड़ा बाजार था।

सन 1904-5 ई० का स्वदेशी आंदोलन राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का एक मुख्य अंग था। उसका उद्देश्य भारत को हर क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाना था। स्वदेशी आंदोलन और दो महायुद्धों की आवश्यकताओं ने भारतीयों को कुछ उद्योग विकसित करने के अवसर दिए। इस शताब्दी के तीसरे दशक में लोहा और इस्पात तथा सूती कपड़ा जैसे उद्योगों को संरक्षण दिया गया। इस तरह भारतीयों की एक पुरानी माँग पूरी हुई। द्वितीय महायुद्ध के दौरान वस्तुओं की माँग बढ़ गई क्योंकि आयात काफी कम हो गया। उस समय सरकार ने भारतीय उद्योगों को अधिक संरक्षण दिया। लड़ाई खत्म होने पर और विशेषकर स्वतंत्रता के बाद देश का औद्योगिकरण बड़े पैमाने पर शुरू हुआ।

बागान

यूरोपीयों ने बागान-उद्योग में अधिक दिलचस्पी दिखाई। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में उन्होंने नील से रंग बनाना शुरू किया। नील की खेती बिहार और बंगाल के कुछ जिलों में शुरू हुई। 1850 ई० तक उसका भारत के निर्यात में महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया। किंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में कृत्रिम रंग का उत्पादन जर्मनी में शुरू होने के कारण नील की खेती पर बुरा प्रभाव पड़ा क्योंकि उसकी माँग बाजार में कम हो गई।

तब तक भारतीय चाय की माँग ब्रिटिश बाजार में बढ़ गई थी। उसमें काफी मुनाफा मिलने लगा था। भारत में चाय-बागान उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में बने। बागान उद्योग में जल्द ही वह सबसे महत्त्वपूर्ण हो गया। अधिकतर चाय-बागान असम में लगे। 1940 ई० तक 80 प्रतिशत भारतीय चाय विदेश जाने लगी थी। उसकी सबसे अधिक बिक्री इंग्लैंड में होती थी। काफी, रबर, सिंकोना और अफीम का बागान-उद्योगों में महत्त्वपूर्ण स्थान था। अंग्रेजी राज की समाप्ति तक उन पर ब्रिटिश पूँजी का एकाधिकार बना रहा।

मशीन-उद्योग

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान मशीन-उद्योग ने हर जगह हस्तशिल्प या दस्तकारी का स्थान ले लिया। भारत में भी मशीन-उद्योगों की शुरुआत उसी समय हुई। मशीन-उद्योगों में सूती कपड़े और जूट के उद्योग प्रमुख थे। सूती कपड़े की पहली मिल 1853 ई० में बंबई में बनी। भारतीय सूती कपड़ा-उद्योग लगातार प्रगति करता रहा। प्रगति में थोड़ी बहुत बाधा तभी पड़ी जब इंग्लैंड में कच्चे कपास की कीमत बढ़ गई। प्रथम महायुद्ध के शुरू होने तक सूती कपड़ा उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का चौथा स्थान हो गया था। सूती कपड़ा-उद्योग में भारतीय पूँजी का हिस्सा काफी अधिक था। भारतीय सूती कपड़ा-उद्योग ने सफलतापूर्वक ब्रिटिश और जापानी सूती कपड़ा-उद्योग का सामना किया। देश के बाजार में हाथ करघे पर बने कपड़े का प्रभाव बना रहा। तुम्हें मालूम है कि हाथ करघा-उद्योग को गांधी जी के खादी-आंदोलन से काफी सहायता मिली।

जूट-उद्योग मूलतः बंगाल का एक हस्तशिल्प था। 1855 ई० में वहाँ जूट का पहला कारखाना बना। कुछ समय तक भारतीय जूट-उद्योग को डंडी (स्काटलैंड) की

जूट मिलों की कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा। किंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश से भारतीय जूट-उद्योग का विश्व बाजार पर लगभग एकाधिकार हो गया। जिस प्रकार बंबई, मद्रास और अहमदाबाद को औद्योगिक नगर बनाने में सूती कपड़ा-उद्योग का हाथ रहा, उसी तरह कलकत्ता को औद्योगिक नगर बनाने में जूट-उद्योग का मुख्य हाथ रहा।

आधुनिक औद्योगीकरण का आधार खनिज, रसायन, सीमेंट, विद्युत-शक्ति आदि का विकास है। उद्योगों और रेल परिवहन के लिए कोयला आवश्यक है। कोयला शक्ति के महत्त्वपूर्ण स्रोत है। भारत में खानों से आधुनिक तरीके से कोयला 1843 ई० में निकाला जाने लगा। रेलमार्ग के विस्तार और उद्योगों के विकास के कारण कोयले की माँग काफी बढ़ गई। अब तक रेल-विभाग कोयले का सबसे बड़ा ग्राहक रहा है। अनुमान है कि बंगाल, बिहार और उड़ीसा में औसत कोटि के कोयले का अपार भंडार है। लोहा गलाने के लिए कोयला अत्यंत आवश्यक है। आधुनिक तरीके से लोहा 1874 ई० से भारत में गलाया जा रहा है। किंतु भारत में लोहा और इस्पात उद्योग की वास्तविक

जमशेदपुर के टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी के संस्थापक जमशेदजी टाटा



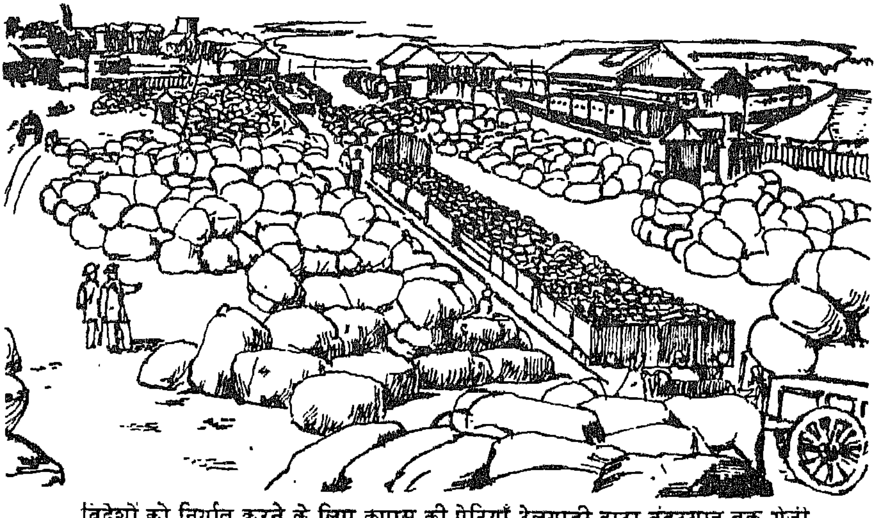
शुरुआत 1911 ई० में हुई, जब जमशेदपुर में प्रसिद्ध टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी का कारखाना बना। आगे चलकर बंगाल और मैसूर में लोहे और इस्पात के छोटे कारखाने बने। लोहे का इस्तेमाल कई प्रकार से होने लगा। लोहा और इस्पात उद्योग के विकास से इंजिनियरिंग उद्योगों की स्थापना संभव हो गई। भारत में लोहा और इस्पात उद्योग

की स्थापना मुख्य रूप से भारतीय पूँजी तथा उद्यम के द्वारा हुई। किंतु मशीन बनाने के उद्योग की स्थापना के लिए कोई प्रयास नहीं हुआ। नतीजा यह हुआ कि अन्य उद्योगों के लिए बाहर से मशीनें मँगवानी पड़ीं। इस तरह भारत में औद्योगिक विकास धीमी गति से हुआ।

कुछ उद्योगों की स्थापना के बावजूद स्वतंत्र होने के समय भारत औद्योगिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था। देश के संसाधनों तथा जन-शक्ति का उपयोग नहीं किया गया था। ऐसा ब्रिटिश सरकार की नीतियों के कारण ही हुआ। ब्रिटेन ने अपने हितों को ध्यान में रखकर भारत को औद्योगिक रूप से पिछड़ा बनाए रखा। भारतीय अर्थ-व्यवस्था ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की पिछलग्गू बनी रही।

विदेश-व्यापार

रेलमार्ग के निर्माण, आधुनिक ढंग के जहाज और स्वेज नहर खुल जाने से भारत का विदेश-व्यापार बढ़ा। आयात और निर्यात की वस्तुओं में भी परिवर्तन हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक भारत दूसरे देशों को मुख्य रूप से कच्चे माल, कपास, जूट, चाय, गेहूँ, चमड़े आदि भेजता था। बाहर जाने वाले तैयार माल में जूट के सामान



विदेशों को निर्यात करने के लिए कपास की पेटियाँ रेलगाड़ी द्वारा बंदरगाह तक भेजी जा रही हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण थे। बाहर से आने वाली वस्तुओं में मशीनें, धातु के बने सामान, कपड़ा, सोना और चाँदी थीं।

बीसवीं शताब्दी में भारत का विदेश-व्यापार बढ़ा। व्यापार की दिशा और वस्तुओं की किस्म में भी परिवर्त्तन हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान भारत का विदेश-व्यापार मुख्य रूप से इंग्लैंड के साथ था। बीसवीं शताब्दी में अन्य देशों, जैसे, अमरीका, जापान और जर्मनी के साथ भी व्यापारिक संबंध स्थापित हुए। उनके साथ भारत का व्यापार बढ़ता गया।

भारत से निर्यात में तैयार माल का अनुपात बढ़ने लगा। स्वतंत्रता मिलने के समय भारत द्वारा निर्यात किया जाने वाला माल आधा था। आयात की जाने वाली वस्तुओं में तैयार माल का अनुपात घटा। इसका यह मतलब नहीं है कि भारत आर्थिक दृष्टि से काफी विकसित हो गया था।

भारत का निर्यात सदा आयात से अधिक था। दूसरे शब्दों में, भुगतान-संतुलन सदा भारत के अनुकूल था। किंतु इससे भारत को कोई फायदा नहीं पहुँचा। भुगतान-संतुलन का फायदा इंग्लैंड को पहुँचता था। भारत में लगी ब्रिटिश पूँजी के मुनाफे, जहाज-भाड़े तथा अन्य व्यावसायिक सेवाओं और अन्य मदों पर इंग्लैंड भारत से काफी बड़ी रकम ले लेता था। इस राशि को "स्वदेश-शुल्क" कहा जाता था। इस तरह विदेश-व्यापार से भारत को मिलने वाला फायदा इंग्लैंड ले लेता था।

लोगों की आर्थिक दशा

प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय को देश की आम आर्थिक दशा का सूचक माना जाता है। ब्रिटिश भारत की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय का अनुमान मोटेतौर पर ही लगाया गया है क्योंकि सारे आवश्यक आँकड़े प्राप्त नहीं हैं। अनुमान है कि 1867 और 1947 ई० के बीच प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय 24 रुपए से बढ़कर 228 रुपए हो गई। भारत में उद्योग-धंधों की स्थापना के बावजूद अंग्रेजी राज की समाप्ति के समय भारत में लोगों को औसतन एक रुपया भी प्रति दिन नहीं मिलता था। देश में कीमतें काफी बढ़ गई थीं। द्वितीय महायुद्ध के समय अनाज की कीमतों में काफी वृद्धि हुई थी। समाज की विभिन्न श्रेणियों के लोगों की आय में काफी अंतर था। जमींदार, कारखानेदार, व्यापारी और मध्यम वर्ग के लोग छोटे किसानों तथा मजदूरों से अधिक कमाते थे। बहुसंख्यक लोगों की आय काफी कम थी और उनके रहन-सहन का स्तर काफी नीचा

था। इस शताब्दी के शुरू में एक खेतिहर मजदूर की औसत मासिक आय 5 रुपए से कम थी। कलकत्ता और दिल्ली जैसे बड़े शहरों में एक अप्रशिक्षित मजदूर को लगभग 8 रुपए प्रति माह मिलते थे।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों के दौरान संसार के अनेक देशों में वहाँ की सरकारों ने आर्थिक विकास को प्रोत्साहन दिया। किंतु भारत मे स्थिति दूसरी ही रही। यहाँ सरकार ने नए देशी उद्योगों को संरक्षण देने से इंकार कर दिया। उसने उनके विकास में कोई सहायता नहीं दी। ऐसा ब्रिटिश व्यापारियो और उद्योगपतियों के दबाव के कारण हुआ। ब्रिटिश सरकार ने ग्रामीण जीवन को उन्नत करने और आधुनिक खेती को प्रोत्साहन देने के लिए कुछ नहीं किया। इसके विपरीत उसने भू-राजस्व की राशि बढ़ा दी और कई प्रकार के कर लगा दिए। परिणाम यह हुआ कि छोटे किसान अपनी जमीन से हाथ धोकर भूमिहीन मजदूर बन गए। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के कई भागों में किसान विद्रोह भी हुए।

सेना और प्रशासन पर सरकार का भारी खर्च भारत की गरीबी के लिए कम जिम्मेवार नहीं था। भारत के प्रशासन पर इंग्लैंड के प्रशासन से ढाई गुना अधिक खर्च होता था। तुम जानते हो कि सेना और प्रशासन का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश हितो की रक्षा करना था। ब्रिटिश हितों और भारतीय हितो में कोई मेल नही था।

जमींदार, धनी किसान और महाजन भी गाँव के गरीब लोगों का शोषण करते थे। ब्रिटिश सरकार ने शोषण खत्म करने के लिए कोई आमूल परिवर्तन नहीं किए। शोषित जनता ने अपने हितों की रक्षा के लिए किसान सभा, हरिजन लीग आदि की स्थापना की।

बागान और कारखाने के मजदूरों की हालत भी अच्छी नही थी। 1881 ई० से कई कानून काम के घंटे, रोजगार के लिए न्यूनतम उम्र और न्यूनतम मजदूरी के बारे में बने, किंतु उन कानूनों को लागू नहीं किया गया। 1920 ई० में अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेस की स्थापना हुई। इस तरह पहली बार मजदूर देश के पैमाने पर संगठित हुए। उन्होंने संघर्ष कर कई अधिकार प्राप्त किए।

आर्थिक स्थिति में परिवर्तन से सबसे अधिक फायदा मध्यम वर्ग के लोगों को मिला। प्रशासन, व्यापार और उद्योग में उन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान मिले। वकालत, डाक्टरी, इंजिनियरिंग, शिक्षा आदि पेशों में अधिकाधिक लोग जाने लगे। मध्यम वर्ग अपने राजनीतिक अधिकारों के संबंध में जागरूक हो गया। वह समाज-सुधार और आर्थिक

विकास के लिए माँग करने लगा।

शुरू से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस देश की गरीबी और खराब स्थिति के बारे में सचेत थी। उसके नेता सरकार की भू-राजस्व नीति तथा भारत से ब्रिटेन की ओर धन के प्रवाह और भारतीय संसाधनों को विकसित करने मे सरकार की असफलता के प्रति शुरू से ही असंतोष और विरोध प्रकट करने लगे। 1937 ई० में अधिकतर प्रांतों में कांग्रेस ने सरकार बनाई। कांग्रेसी सरकारों ने आर्थिक विकास के लिए कुछ कदम उठाए। किंतु वे सरकारें बहुत कम समय तक चली। 1938 ई० में भारत के आर्थिक विकास के संबंध में सोच-विचार के लिए राष्ट्रीय योजना समिति बनी। भारत के स्वतंत्र होने पर यह काम योजना आयोग के हाथों में सौंपा गया।

अभ्यास (क)

1. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :**
   1. भारतीय कृषि के पिछड़ेपन के कारण बतलाओ।
   2. खाद्यानों के उत्पादन मे कमी क्यों आई ?
   3. भारत में अंग्रेजी राज के समय किसानो की ऋणग्रस्तता के क्या कारण थे ?
   4. भारत में बार-बार अकाल पड़ने के क्या कारण थे ?
   5. अकाल की समस्या को हल करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने क्या कदम उठाए ?
   6. देश की अर्थव्यवस्था और लोगो के सामान्य जीवन पर रेल-परिवहन के प्रारंभ होने से क्या प्रभाव पड़ा ?
   7. अंग्रेजो ने किन दो प्रकार के उद्योगों की स्थापना की ? दोनों की मुख्य विशेषताएँ बतलाओ।
   8. विदेशी प्रतियोगिता से भारतीय उद्योगों के बचाव के लिए ब्रिटिश सरकार ने संरक्षण की नीति क्यो नही अपनाई ?
   9. अंग्रेजी राज के दौरान उद्योगों के विकसित होने के बावजूद भारत आर्थिक रूप से क्यों पिछड़ा रहा ?
   10. बीसवीं शताब्दी के दौरान भारत के विदेश-व्यापार के तेजी से बढ़ने के क्या कारण थे ?

11. अंग्रेजी राज के दौरान कृषि और उद्योगों के क्षेत्र में विकास होने के बावजूद आम लोगों की स्थिति क्यों खराब रही ?

12. अंग्रेजी राज के दौरान कृषि और उद्योगों के विकास से किन लोगो को अधिक फायदा पहुँचा और क्यों ?

2. **सन 1858 से 1947 ई० के बीच भारत के आर्थिक विकास के संबंध में नीचे कुछ कथन दिए गए हैं। जो सही हों उनके आगे (✓) निशान और जो गलत हों उनके आगे (X) निशान लगाओ।**

1. आर्थिक जीवन में आए परिवर्त्तन देश की एकता कायम करने में सहायक हुए।
2. रैयतवारी व्यवस्था मुख्य रूप से दक्षिण और पश्चिम भारत में प्रचलित थी।
3. जमींदारी व्यवस्था के अंतर्गत रहने वाले किसानों की तुलना में रैयतवारी व्यवस्था वाले इलाकों के किसान अच्छी हालत में थे।
4. अंग्रेजों ने भारतीय कपड़ा-उद्योग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कपास के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया।
5. प्रथम महायुद्ध के समय सूती कपड़े के उत्पादन की दृष्टि से भारत संसार के अन्य देशों की अपेक्षा काफी पीछे था।

3. **करने को रुचिकर कार्य :**

1. एक चार्ट बनाओ जिसमें लोगों के जीवन, देश की समृद्धि तथा कृषि पर निम्नलिखित कारकों के प्रभाव को दिखलाओ :
   (क) नकद फसलों की खेती।
   (ख) नहरों का निर्माण।
   (ग) रेलमार्ग का निर्माण।
2. ग्राफ के द्वारा (क) प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय, (ख) जनसंख्या में वृद्धि, (ग) रेल-मार्ग की लंबाई, (घ) खेती की जाने वाली भूमि का क्षेत्रफल, और (ङ) सिंचित भूमि का क्षेत्रफल सन 1858 से 1947 ई० तक दिखलाओ। आँकड़ों और अन्य आवश्यक सूचनाओं के लिए अन्य पुस्तकों का सहारा लो।

खण्ड—ख
सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन

तुम पढ़ चुके हो कि भारत में अनेक धार्मिक और सामाजिक कुरीतियाँ थी। भारत-वासी बड़ी और छोटी जातियों में बँट गए थे। स्त्रियों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार होता था। बाल-विवाह का व्यापक प्रचलन था। कुरीतियों के कारण भारतीय जनता में एकता का अभाव था और वह पिछड़ी हुई थी। कुछ कुरीतियों को धार्मिक नेताओं का समर्थन प्राप्त था और वे धर्म का अंग समझी जाती थीं। तुम पढ़ चुके हो कि मध्यकाल में भक्त संतों तथा अन्य लोगों ने भारतीय समाज को कुरीतियों से मुक्त करने की कोशिशें की थीं। उन्नीसवीं शताब्दी में प्रायः हर समुदाय और देश के हर भाग में धार्मिक और सामाजिक सुधार के लिए आंदोलन शुरू हुए। इन आंदोलनों ने भारतीय जनता को बाँटने वाली दीवालों को तोड़ने में सहायता दी और इस प्रकार राष्ट्रीय जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। शिक्षा के प्रसार से वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में सहायता मिली और इस प्रकार सुधार आंदोलन मजबूत हुए। मध्यम वर्ग के लोग इन आंदोलनों में सबसे आगे थे।

तुम सुधारों के सिलसिले में राजा राममोहन राय की अग्रणी भूमिका के बारे में पढ़ चुके हो। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अन्य विद्वानों और मनीषियों ने सुधार आंदोलनों के द्वारा उनके कार्यों को आगे बढ़ाया। सुधार आंदोलनों ने युगों से चली आ रही कुरीतियों को छोड़ने तथा मूल धार्मिक सिद्धांतों के अनुसरण पर जोर दिया। वे सामाजिक आचार-विचार को मानवीय बनाने के पक्ष में थे। वे चाहते थे कि लोग विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाएँ। यह कोई आसान काम नहीं था क्योंकि देश में रूढ़िवादी तत्त्व काफी मजबूत और बड़ी संख्या में थे। विदेशी सरकार भी काफी हद तक समाज-सुधार के संबंध में उदासीन थी। 1857 ई० के पहले ब्रिटिश सरकार ने समाज सुधार के सिलसिले में कुछ कदम उठाए थे। उदाहरण के लिए अमानवीय सती प्रथा खत्म कर दी गई थी। किंतु 1857 ई० के बाद सरकार समाज सुधार के प्रति उदासीन हो गई। 1857 ई० के बाद भारतीय समाज में जो भी सुधार हुए वे भारतीय सुधारकों के प्रयासों के परिणाम थे।

मध्यम वर्ग के लोग सुधार आंदोलनों में सबसे आगे थे। वे राजनीतिक दृष्टि से जागरूक थे। आर्थिक दृष्टि से भी उनकी स्थिति अच्छी थी। दूसरी ओर भारतीय जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गाँवों में गरीबी, कष्ट तथा पिछड़ेपन की दयनीय हालत में था। वह सुधार आंदोलनों से बहुत कुछ अछूता रहा।

ब्रह्म समाज

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुछ ऐसे आंदोलन हुए जिनका देशव्यापी असर हुआ। उनके नेताओं ने देश के विभिन्न भागों का दौरा किया और अपने विचारों का प्रचार किया। केशव चंद्र सेन ने ब्रह्म समाज को अत्यंत शक्तिशाली बनाया। सारे देश का दौरा कर उन्होंने लोगों को अपने विचारों से परिचित कराया। 1864 और 1868 ई० के बीच उन्होंने सारे मद्रास और बंबई प्रांतों तथा उत्तर भारत के हिस्सों का दौरा किया।

धार्मिक और सामाजिक प्रश्नों पर केशव चंद्र सेन और उनके साथियों के विचार ब्रह्म समाज के अन्य सदस्यों तथा नेताओं के विचारो से अधिक क्रांतिकारी थे। उन्होंने जाति, रीति-रिवाज और धार्मिक रूढ़ियों के बंधनों को तोड़ा। उन्होंने अंतर्जातीय विवाह शुरू किए, औरतों को पर्दा-प्रथा से मुक्त किया, शिक्षा का प्रसार किया और सामाजिक समानता के लिए प्रयास किया। अपने क्रांतिकारी विचारो के कारण केशव चंद्र को पुरानी संस्था से अपने संबंध तोड़ लेने पड़े। उन्होंने 1866 ई० में "भारतीय ब्रह्म समाज" की स्थापना की।

ब्रह्म समाज के सदस्यों की संख्या कभी अधिक नही थी, किंतु वे आधुनिक विचार और राष्ट्रीय तथा उदारवादी दृष्टिकोण के कारण प्रभावशाली थे। उन्होंने जातिगत कट्टरता के उन्मूलन, स्त्रियों की स्थिति में सुधार, बाल-विवाह और बहु-विवाह की समाप्ति, छोटी जाति के लोगों तथा गैर हिंदुओं के साथ खानपान, बिना भेदभाव सबके लिए शिक्षा तथा बेरोकटोक समुद्र-यात्रा के लिए आंदोलन चलाए। उनके कारण हिंदू समाज आधुनिक बनने की दिशा में आगे बढ़ा। ब्रह्म समाज ने आधुनिक भारत को कई बड़े नेता प्रदान किए।

वेद समाज और प्रार्थना समाज

केशवचंद्र सेन के दौरे के फलस्वरूप 1864 ई० में मद्रास में वेद समाज और 1866 ई० में बंबई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। उनके उद्देश्य वे ही थे जो ब्रह्म समाज के थे। वहाँ भी शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय हुआ था। वह धार्मिक और सामाजिक सुधारों की आवश्यकता महसूस कर रहा था।

वेद समाज के पीछे मुख्य शक्ति के० श्रीधरालु नायडू की थी। उन्होंने ब्रह्म समाज की पुस्तकों का तमिल और तेलुगु भाषाओं में अनुवाद किया। उन्होंने संपूर्ण दक्षिण भारत में ब्रह्म समाज के विचारों का प्रचार किया। 1871 ई० में उन्होंने वेद समाज को

दक्षिण भारतीय ब्रह्म समाज में बदल दिया। 1874 ई० में उनकी असमय मृत्यु के कारण आंदोलन को काफी धक्का लगा।

महादेव गोविंद रानाडे प्रार्थना समाज के मुख्य सस्थापक थे। उनके सहायकों में रामकृष्ण भंडारकर जैसे विद्वान थे। समाज के सदस्यों ने कोई नया दर्शन नहीं रखा। उन्होंने हिंदू धर्मग्रंथों और ज्ञानेश्वर तथा तुकाराम जैसे महाराष्ट्र के भक्त संतों की रचनाओं को अपना आधार तथा प्रेरणा स्रोत बनाया। समाज-सुधार की दृष्टि से उन्होंने स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, पर्दा-प्रथा की समाप्ति आदि पर जोर दिया। प्रार्थना समाज में प्रचार कार्य पर अधिक जोर नहीं दिया गया, इसलिए उसका संदेश लोगों के बीच व्यापक रूप से नहीं पहुँच सका।

प्रार्थना समाज का कार्यक्रम क्रांतिकारी नहीं था, क्योंकि वह पुराने विचारों से अपना नाता नहीं तोड़ना चाहता था। रानाडे का विचार था कि समाज सुधार अत्यंत आवश्यक है। समाज की कुरीतियों को हटाना बिल्कुल जरूरी है। समाज सुधार के कार्यक्रमों को सारे देश में व्यावहारिक रूप देने की आवश्यकता उन्होंने महसूस की। इसीलिए 1887 ई० में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन की स्थापना की। उस सस्था की बैठक हर साल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के समय होती थी। उसमें देश की सामाजिक समस्याओं तथा सामाजिक प्रगति के कार्यक्रमों पर विचार किया जाता था। रानाडे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापको में भी थे। राजा राममोहन राय की तरह ही वे उच्चकोटि के विद्वान थे। उनका दृष्टिकोण व्यापक था। वे कई क्षेत्रों में सक्रिय थे। उनका विचार था कि "इस विशाल देश में हिंदुओं और मुसलमानों के एकजुट हुए बिना कोई प्रगति संभव नहीं है"।

आर्य समाज

ये आंदोलन पाश्चात्य विचारों से काफी प्रभावित थे। कई भारतीय समाज-सुधारक इस बात को पसंद नहीं करते थे। फलस्वरूप प्रतिरोध की भावना आई और कई लोगों ने विदेशी विचारों को चुनौती देनी शुरू की। देश के राजनीतिक जागरण ने लोगों में अपने इतिहास और संस्कृति के प्रति अभिमान की भावना भर दी। रूढ़िवादी भारतीय विदेशी विचारों का बहिष्कार कर अपने धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों को बनाए रखना चाहते थे। उनमें वे जहाँ-तहाँ आवश्यक सुधार करना चाहते थे। वे नई व्याख्या कर उन्हें समय के अनुकूल बनाना चाहते थे। उत्तर भारत में इसी

विचारधारा को लेकर एक शक्तिशाली आंदोलन शुरू हुआ। वह आंदोलन उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ। आंदोलन के नेता स्वामी दयानंद सरस्वती थे। उनका जन्म 1824 ई० में काठियावाड़ में हुआ था। शुरू में उनका नाम मूलशंकर था। 14 वर्ष की उम्र में उन्होंने मूर्ति-पूजा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उन्होंने अपना घर छोड़ दिया और वे ज्ञान की खोज में निकल पड़े। सबसे पहले उन्होंने संस्कृत भाषा और साहित्य पर अधिकार प्राप्त किया।

1863 ई० में अध्ययन समाप्त कर उन्होंने अपने सिद्धांतों का प्रचार शुरू किया। उन्होंने कहा कि ईश्वर एक है। उसकी भक्ति मूर्ति के रूप में नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह निराकार है। उनका विचार था कि ईश्वर द्वारा मनुष्य को जो कुछ ज्ञान मिला है वह वेदों में निहित है। उनका ख्याल था कि आधुनिक विज्ञान के मूलतत्त्व भी वेदों में ढूँढे जा सकते हैं। उन्होंने सारे देश का दौरा किया। 1875 ई० में उन्होंने बंबई में आर्य समाज की स्थापना की। दयानंद सरस्वती ने हिंदी भाषा अपनाई। उसी के माध्यम मे उन्होंने अपने विचारों का प्रचार किया। उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" है। हिंदी भाषा अपनाने के कारण उत्तर भारत के आम लोग उनके विचारो को अच्छी तरह जान पाए। आर्य समाज की जड़ें जल्द ही उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और पंजाब में जम गईं। वह उन क्षेत्रों मे महत्त्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक शक्ति बन गया।

आर्य समाज के सदस्यों का मार्गदर्शन "दस सिद्धांतों" से होता था। उनमें पहला सिद्धांत था वेदों का अध्ययन करना। शेष सिद्धांत सद्गुण और नैतिकता संबंधी थे। दयानंद ने एक सामाजिक आचार-संहिता बनाई। उसमें जातिगत भेदभाव और सामाजिक विषमता के लिए कोई स्थान नहीं था। आर्य समाज ने बाल-विवाह का विरोध तथा विधवा-विवाह को प्रोत्साहन दिया।

आर्य समाज के सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए सारे उत्तर भारत में स्कूल-कालिज खोले गए। लाहौर का दयानंद एंग्लो-वैदिक स्कूल जल्द ही पंजाब का एक प्रमुख कालेज बन गया। आर्य समाज के स्कूल-कालेजों में अंग्रेजी और हिंदी के माध्यम से आधुनिक शिक्षा दी जाने लगी। जो शिष्य दयानंद की शिक्षाओं को मूल रूप में रखना चाहते थे, उन्होंने हरिद्वार में गुरुकुल की स्थापना की। उसकी स्थापना प्राचीन आश्रमों की परंपरा के अनुसार हुई।

दयानंद वेदों को अटूट सत्य मानते थे। वे हिंदू धर्म को एक निश्चित दिशा तथा

लड़ाकू चरित्र देना चाहते थे। उन्होंने शुद्धीकरण शुरू किया। जो हिंदू कभी मुसलमान या ईसाई बन गए थे, उन्हें वे फिर हिंदू बना लेना चाहते थे।

रामकृष्ण मिशन

उसी समय भारत में एक अन्य महापुरुष का उदय हुआ। उनका नाम रामकृष्ण था। वे कलकत्ता के समीप दक्षिणेश्वर में एक मंदिर के पुजारी थे। उनका जन्म 1836 ई० में हुआ था। उनका विचार था कि कोई भी व्यक्ति ईश्वर भक्ति के परंपरागत तरीके से आध्यात्मिक शांति प्राप्त कर सकता है। अन्य धार्मिक संप्रदायों के नेताओं के संपर्क में आने के बाद उन्होंने सब धर्मों को एक दृष्टि से देखना शुरू किया। उन्होंने कहा कि सारे धर्म अच्छे और पवित्र हैं। केशव चंद्र सेन और दयानंद सरस्वती सहित सारे तत्कालीन धर्म सुधारक उनसे मिले थे। उन्होंने उनसे धार्मिक विषयों पर चर्चा की थी। रामकृष्ण के विचारों के कारण शिक्षित भारतीयों का विश्वास अपनी संस्कृति में जमने लगा। वे रामकृष्ण को पाश्चात्य चिंतन और विचारों के प्रति विद्रोह का प्रतीक समझने लगे।

1886 ई० में उनकी मृत्यु के बाद रामकृष्ण मिशन की स्थापना हुई। रामकृष्ण मिशन का उद्देश्य उनके विचारों को कार्यरूप देना था। मिशन मनुष्य की सेवा को ही ईश्वर भक्ति का सर्वोत्तम रूप समझने लगा। उनके प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानंद रामकृष्ण मिशन के प्रमुख संगठन कर्त्ता थे। कुछ ही दिनों में मिशन सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गया। बाढ़, अकाल और महामारियों के समय वह राहत कार्य करने लगा। उसने अस्पतालों, स्कूल-कालेजों, आदि की स्थापना की। मिशन ने अन्य देशों में भी अपनी शाखाएँ स्थापित कीं।

विवेकानंद

विवेकानंद का जन्म 1863 ई० में हुआ था। उनका जीवन अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के जीवन से बिल्कुल भिन्न था। बचपन से ही उनमें तत्कालीन व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना थी। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य दर्शन का गहरा अध्ययन किया, किंतु उन्हें मानसिक शांति नहीं मिली। रामकृष्ण से मिलने के बाद ही उनका मन शांत हुआ। वे सिर्फ आध्यात्मिक प्रेरणा और शांति पाकर ही संतुष्ट नहीं हुए। वे भारत की अवनति देखकर दुखी थे। भारत का दौरा करने पर उन्हें हर जगह गरीबी, गंदगी, मानसिक अनुत्साह तथा भविष्य के प्रति निराशा ही मिली। उन्होंने स्पष्ट



विवेकानद

रूप से कहा कि देश की इस स्थिति के लिए देशवासी ही जिम्मेवार हैं। उन्होंने भारत-वासियों को देश की हालत सुधारने के लिए कहा।

उन्होंने देशवासियों को जगाने का बीड़ा उठाया। वे उन्हें सदा उनकी कमजोरियों के प्रति सचेत करते रहे। उन्होंने भारतवासियों को नई समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए परिश्रम करने को प्रोत्साहित किया। उनके अनुसार नई समाज-व्यवस्था में गरीबों को सहानुभूति, भूखों को रोटी और आम जनता को ज्ञान का प्रकाश मिल सकता है। रामकृष्ण मिशन ने निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं का एक समूह तैयार किया। रामकृष्ण मिशन के कार्यकर्त्ताओं ने भारतवासियों में देश-प्रेम की भावना भरी।

भारत के बाहर विवेकानंद के कार्यों से विदेशियों को भारतीय संस्कृति का परिचय प्राप्त हो सका। 1893 ई० में संयुक्त राज्य अमरीका के शिकागो नामक स्थान पर धर्म-संसद में विवेकानंद ने भाग लिया। उनके भाषण से वहाँ उपस्थित विभिन्न देशों के लोग काफी प्रभावित हुए। ससार में भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा बढ़ी। 1902 ई० में विवेकानंद की मृत्यु हो गई।

श्रीमती एनी बेसेंट नामक आयरिश महिला ने भारतवासियों को जागरूक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने भारतीयों में आत्मविश्वास की भावना भरने का प्रयास किया। वे थियोसोफिकल सोसायटी की नेता थीं। उन्होंने भारत की आजादी की लड़ाई में भी भाग लिया।



एनी बेसेंट

मुस्लिम सुधार-आंदोलन

मुसलमानों में उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही जागरण शुरू हुआ। जागरण के नेता बरेली (उत्तर प्रदेश) के सैयद अहमद, बंगाल के शरियत उल्ला, आदि थे। उनको दिल्ली के एक पुराने विद्वान और धार्मिक नेता शाह वल्ली उल्ला की शिक्षाओं से प्रेरणा मिली। उनका ख्याल था कि इस्लाम के ह्रास के कारण ही भारत अंग्रेजों का गुलाम हुआ। वे धर्म और संस्कृति को परिष्कृत कर दृढ़ करने में लग गए।

भारतीय मुसलमानों पर पाश्चात्य विचारों का प्रभाव काफी देर से पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दिल्ली और कलकत्ता के थोड़े से मुसलमानों ने ही अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की थी। किंतु बहुसंख्यक मुसलमान अंग्रेजी शिक्षा से दूर रहे। इस्लाम धर्म के पंडित "उलेमा" अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध थे। उच्चवर्गीय मुसलमान ब्रिटिश शासन को फूटी आँखों भी नहीं देखते थे। अंग्रेजों ने उलेमा लोगों और उच्चवर्गीय मुसलमानों को प्रभावहीन तथा शक्तिहीन बना दिया था। अंग्रेजी शिक्षा तथा उसके सामाजिक-आर्थिक फायदों से वंचित रहने के कारण एक लंबे समय तक मुस्लिम मध्यम वर्ग का उदय नहीं हो सका।

तुम जानते हो कि 1857 ई० के विद्रोह में मुसलमानों ने जोर शोर से भाग लिया था। 1857 ई० के विद्रोह के बाद अंग्रेजों और मुसलमानों के संबंध काफी बिगड़ गए। उसी समय कुछ प्रबुद्ध मुसलमानों ने शासकों के प्रति सहयोग की नीति की आवश्यकता

समझी। वे अंग्रेज शासकों की सहायता से अपनी सामाजिक स्थिति सुधारना चाहते थे। कतिपय आंदोलन भी शुरू किए गए। उनका उद्देश्य आधुनिक शिक्षा का प्रसार और पर्दा-प्रथा तथा बहु-विवाह का उन्मूलन था। 1863 ई० में नवाब अब्दुल लतीफ ने कलकत्ता की मुस्लिम साहित्य सभा (मोहम्मडन लिटरेरी सोसायटी) की स्थापना की। सबसे महत्त्वपूर्ण आंदोलन "अलीगढ़ आंदोलन" था। सर सैयद अहमद खाँ उसके जन्मदाता और मुख्य संगठन-कर्ता थे।



सर सैयद अहमद खाँ

सर सैयद अहमद खाँ

सर सैयद अहमद खाँ का जन्म मुगल दरबार के एक सरदार के परिवार में 1817 ई० में हुआ। उन्होंने एक न्यायिक अफसर के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी शुरू की। वे विद्रोह के दिनों में भी कंपनी के प्रति निष्ठावान रहे। इसलिए ब्रिटिश शासक उनकी बातों पर ध्यान देने लगे। उन्होंने अंग्रेजों को मुसलमानों की बुरी हालत के बारे में बतलाया। काफी कहने-सुनने के बाद सर सैयद अहमद खाँ अंग्रेजों को मुसलमानों की हालत पर ध्यान देने के लिए तैयार कर सके। मुसलमान सिर्फ यही चाहते थे कि कोई भी उनके धार्मिक मामलों में दखल न दे।

उनके सामने सबसे कठिन काम धर्म और शिक्षा संबंधी सुधार का था। उन्होंने मुसलमानों को शुद्धता और सरलता अपनाने को कहा। जो इस्लाम के मूल सिद्धांत थे। भारतीय मुसलमानों के पुनरुत्थान के लिए उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा अपनाने पर जोर दिया। रूढ़िवादी मुसलमानों ने उनका विरोध किया। तुम्हें याद होगा कि रूढ़िवादी तत्त्वों ने राममोहन राय का भी विरोध किया था। साहस और बुद्धिमानी के साथ

उन्होंने बाधाओं को पार किया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने नए स्कूलों की स्थापना शुरू की। उन्होंने 1864 ई० में एक वैज्ञानिक समाज की स्थापना की। इस समाज ने वैज्ञानिक और अन्य विषयों की अंग्रेजी किताबों के उर्दू अनुवाद प्रकाशित किए। समाज सुधार संबंधी उदार विचारों के प्रसार के लिए उन्होंने एक अंग्रेजी-उर्दू पत्रिका भी निकाली। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि 1875 ई० में अलीगढ़ मे 'मोहम्मडन एंग्लो-ओरियंटल कालेज' की स्थापना थी। आगे चलकर वह कालेज भारतीय मुसलमानों का महत्वपूर्ण शिक्षा-संस्थान बन गया। उसने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से मुख्यत: कला और विज्ञान की पढ़ाई का प्रबंध किया। उसमें कई शिक्षक इंग्लैंड से बुलाए गए थे। सारे भारत के प्रमुख मुसलमानों ने कालेज का समर्थन किया। अंग्रेजों ने उसके विकास में काफी दिलचस्पी दिखलाई।

वह कालेज आगे चलकर विश्वविद्यालय बन गया। वह मुसलमानों में आधुनिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने में सहायक हुआ। इस प्रकार भारत के मुसलमानों को जागृत करने और मुस्लिम समाज में सुधार लाने में उसका बडा हाथ रहा।

सर सैयद अहमद खाँ देशभक्त थे। हिंदुओं के साथ उनका मैत्रीपूर्ण संबध था। किंतु वे राजनीति में भाग लेने के खिलाफ थे। उन्होने मुसलमानों को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल न होने के लिए कहा। उनकी इच्छा थी कि मुसलमान ब्रिटिश शासकों से अच्छे संबंध बनाकर अपनी स्थिति सुधार लें।

सर सैयद अहमद खाँ ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विरोध किया, किंतु उन्होंने हिंदू-मुसलमान-एकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि हिंदू और मुसलमान एक देश के होने के कारण एक ही राष्ट्र के अंग हैं। देश की प्रगति दोनों की एकता, पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम पर निर्भर है।

आधुनिक शिक्षा के प्रसार के अतिरिक्त सर सैयद अहमद खाँ ने मुस्लिम समाज से कुरीतियाँ खत्म करने के लिए भी काम किया, जिससे भारतीय समाज प्रगति कर सके।

समाज सुधार की प्रगति

पारसी, सिक्ख और भारतीय ईसाई लोगों ने भी कई सामाजिक और धार्मिक सुधार किए। वे कुरीतियों को दूर करना चाहते थे।

प्रबुद्ध भारतीय धार्मिक और सामाजिक सुधारों में लगे थे, किंतु ब्रिटिश सरकार

उनके प्रति उदासीन थी। 1857 ई० के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार किसी प्रकार का धार्मिक और सामाजिक सुधार नहीं करना चाहती थी। वह समाज के रूढ़िवादी लोगों को खुश रखना चाहती थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दो कानून बने। पहला कानून 1872 ई० में बना। उस कानून ने अंतर्जातीय और अंतर्सामुदायिक शादी-ब्याह को वैध बना दिया। दूसरा कानून 1891 ई० में बना। उसका लक्ष्य बाल-विवाह का उन्मूलन था। वे कानून केशव चंद्र सेन एवं बहराम जी मालबारी के प्रयासों के कारण बने। बाल-विवाह रोकने के लिए काफी दिनों के बाद 1929 ई० में शारदा ऐक्ट बना। उसके अनुसार 14 साल से कम आयु की लड़की और 18 साल से कम आयु के लड़के की शादी नहीं हो सकती।

आगे चलकर लोगों ने उत्साहपूर्वक स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेना शुरू कर दिया। किंतु भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अपना आंदोलन चलाता रहा। वह छोटी जातियों तथा अछूतों की स्थिति सुधारने के लिए लगा रहा। उनकी स्थिति मे सुधार लाना दो कारणों से आसान हो गया। एक तो शिक्षा का प्रसार हो रहा था। दूसरे भारतीयों को धीरे-धीरे प्रशासन में स्थान मिलता जा रहा था। 1921 ई० के मांटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों के बाद प्रशासन में काफी भारतीयों के आ जाने के बाद समाज सुधार के लिए कानून बनाना आसान हो गया। एक विवाह, स्त्रियों को संपत्ति पर अधिकार प्रदान करने और अछूतों के मंदिर-प्रवेश संबंधी कानून बने पर समाज द्वारा स्वीकृति पाने में वे कानून बहुत सफल नहीं रहे। 1937 ई० में संपत्ति पर हिंदू औरतों के अधिकार संबंधी ऐक्ट और बंबई हरिजन मंदिर-पूजा ऐक्ट बने। असहयोग आंदोलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन में बड़ी संख्या में औरतों ने भाग लिया। इस तरह वे आंदोलन औरतों को घरों की चहारदीवारी और पर्दे से निकाल कर बाहर ले आए। इस प्रकार वे औरतों की मुक्ति में सहायक हुए। अछूतोद्धार गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का मुख्य अंग था। गांधी जी हरिजनों की हालत सुधारने के लिए सदा प्रयत्नशील रहे।

शिक्षा

देश में आधुनिक शिक्षा के प्रसार से समाज सुधार के आंदोलन को बल मिला। तुम्हें मालूम है कि कंपनी की सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में क्या किया। 1813 ई० के चार्टर ऐक्ट में हर साल एक लाख रुपए शिक्षा पर खर्च करने का प्रस्ताव रखा गया।

1835 ई० में बेंटिक ने पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार का निर्णय लिया। किन्तु 1854 ई० में जाकर सरकार ने प्राथमिक स्कूल से विश्वविद्यालय तक की उचित शिक्षा-व्यवस्था स्थापित करने का निर्णय लिया। आधुनिक भारत की शिक्षा के इतिहास में यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

प्रांतों में लोक शिक्षा विभागों की स्थापना हुई। कलकत्ता, बंबई और मद्रास में विश्वविद्यालय बने। गैर सरकारी स्कूल-कालेजों के लिए अनुदान की व्यवस्था की गई। भारतीय शिक्षा सेवा की स्थापना हुई, जिससे सरकारी स्कूल-कालेजों को शिक्षक मिलने लगे।

ईसाई तथा अन्य धर्म प्रचारकों ने भी कई स्कूल-कालेज खोले। शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण बढ़ाने की प्रवृत्ति भी शुरू हुई। हर स्तर पर शिक्षा का प्रसार समरूप नहीं था। हाई स्कूल और कालेजों की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया गया। प्राथमिक शिक्षा धन के बिना पूरी तरह विकसित नहीं हो सकी। सरकार ने उसकी ओर कोई खास ध्यान नहीं दिया और देश की जनता गरीब होने के कारण अपने बच्चों की शिक्षा का खर्च नहीं उठा सकी। नतीजा यह हुआ कि भारत में करोड़ों लोग निरक्षर रह गए।

तकनीकी शिक्षा के प्रसार की ओर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। इस कारण देश में इंजिनियरों और डाक्टरों का सदा अभाव रहा।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक 80 प्रतिशत भारतीय गाँवों में प्राथमिक विद्यालय नहीं थे और 75 प्रतिशत बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पाती थी। उच्च शिक्षा पश्चिम का अनुसरण मात्र थी। उसका देश की आवश्यकताओं से कोई संबंध नहीं था। कर्जन ने भारत में उच्च शिक्षा का स्तर ऊपर उठाने के लिए प्रयास किया। आशुतोष मुकर्जी के उपकुलपति होने पर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने कई प्रख्यात विद्वानों को इकट्ठा किया। उन्होंने विश्वविद्यालय का स्तर ऊँचा उठाने के लिए घोर परिश्रम किया। कर्जन की नीति विश्वविद्यालयों को सरकार के नियंत्रण में लाना तथा छात्रों एवं शिक्षकों में देशभक्ति की भावना के प्रसार को रोकना था।

भारत के नेता शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण पसंद नहीं करते थे। 1905 ई० में स्वदेशी आंदोलन ने राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् की स्थापना की। उसके अंतर्गत एक राष्ट्रीय कालेज और कई राष्ट्रीय विद्यालय खोले गए। वे बहुत दिनों तक नहीं चल सके, किंतु भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने आगे चलकर उन्हीं की तरह कई शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित कीं।

नई शिक्षा-पद्धति विकसित करने के लिए कई प्रयास हुए। उदाहरण के लिए,

शांति निकेतन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा स्थापित विश्व भारती, वाराणसी, अहमदाबाद तथा कई अन्य जगहों में स्थापित विद्यापीठों, हरिद्वार एवं अन्य स्थानों में बने गुरुकुलों, और गांधी जी की नई तालीम वाले विद्यालयों के नाम लिए जा सकते हैं। नई तालीम का उद्देश्य शिक्षा के साथ ही दस्तकारियों का प्रशिक्षण देना भी था। इस तरह नई तालीम का उद्देश्य छात्रों को शुरू से ही स्वावलबी बनाना था। तुम डॉ० जाकिर हुसैन के नाम से अवश्य परिचित होगे। वे भारत के तीसरे राष्ट्रपति थे। "नई तालीम" के विकास में उनका बहुत बड़ा हाथ था।

भारतीय शिक्षा-पद्धति छात्रों को सिर्फ किताबी ज्ञान देती थी। वह छात्रों को रटने की मशीन मात्र समझती थी। शिक्षा पद्धति को व्यवसाय-प्रधान बनाने की आवश्यकता थी। कई शिक्षा शास्त्रियों ने सरकार से ऐसी शिक्षा के लिए सिफारिश की। शिक्षा-पद्धति को देश की आवश्यकताओं से जोड़ने की जरूरत थी। शिक्षित लोगों के लिए रोजगार की व्यवस्था करनी थी। प्राथमिक शिक्षा के विस्तार और लोगों को साक्षर बनाने की समस्या थी। 1903 ई० में गोपालकृष्ण गोखले ने कहा कि निरक्षर और अज्ञानी राष्ट्र कभी प्रगति नहीं कर सकता। वह जीवन की दौड़ में पिछड़ जाता है। निरक्षरता मिटाने के लिए गोखले और अन्य लोगों ने 6 वर्ष से 10 वर्ष के लड़कों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करने की माँग बार-बार की। किंतु सरकार ने कुछ नहीं किया। बड़ौदा, मैसूर, और त्रावनकोर-कोचीन जैसे कुछ भारतीय राज्यों में स्थिति थोड़ी अच्छी थी। वहाँ धीरे-धीरे प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क कर दी गई थी। 1947 ई० में देश स्वतंत्र हुआ। उस समय शिक्षा की दृष्टि से देश की स्थिति अच्छी नहीं थी। सिर्फ 24 प्रतिशत पुरुष और 7 प्रतिशत स्त्रियाँ ही साक्षर थीं। इसलिए थोड़े से पढ़े-लिखे और विशाल निरक्षर जनता के बीच बहुत बड़ी खाई थी।

सांस्कृतिक जागरण

स्वामियों और समाज के थोड़े से लोगों तक सीमित होने पर भी आधुनिक शिक्षा का काफी प्रभाव पड़ा।

आधुनिक विचारों का प्रचार हुआ। उनसे प्रेरित होकर भारतीयों ने नए प्रकार के साहित्य की रचना की। नया साहित्य रूप और विषय-वस्तु की दृष्टि से पुराने की तुलना में बिल्कुल भिन्न था। नए साहित्य ने समाज में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट किया। नए साहित्य को देखने से साफ लगता था कि भारतीय वर्तमान विश्व की घटनाओं

और प्राचीन इतिहास के बारे में जानने के लिए लालायित थे।

पहले भारतीय साहित्य में धर्म और पौराणिक कथाओं की प्रमुखता थी। अधिकांश साहित्य काव्य-रूप में था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में साहित्य में एक नया युग प्रारंभ हुआ। उस समय एक सरल गद्य शैली का उदय हुआ। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आदि की रचना सरल गद्य शैली में तेजी से होने लगी। कई यूरोपीय धर्मप्रचारकों और विद्वानों ने भारतीय भाषाओं के अध्ययन और विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किए। उन्होंने भारतीय भाषाओं के व्याकरण और शब्दकोश बनाए। उनमें ग्रियर्सन, विलियम केरी, गिलक्राइस्ट, फ़ादर काल्डवेल, केलॉग आदि प्रमुख थे।

नया साहित्य मानवतावादी था। उसने स्वतन्त्रता और समानता पर जोर दिया। उस समय संसार के विभिन्न भागों में चलने वाले क्रांतिकारी आंदोलनों का यही संदेश था। नया साहित्य देशभक्ति की भावनाओं से ओतप्रोत था। नए साहित्य ने देश में नव चेतना लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। बंकिम चंद्र चटर्जी का गीत "बंदेमातरम्" को उदाहरण के लिए लिया जा सकता है। उसने भारतीय आजादी की लड़ाई में काफी प्रेरणा दी। मैथिलीशरण गुप्त की पुस्तक "भारत भारती" का भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

नया भारतीय साहित्य तेजी से प्रगति करने लगा। रवींद्र नाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिला और इस प्रकार भारतीय साहित्य को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा मिली। उर्दू कवि मुहम्मद इकबाल को देश-विदेश में सम्मान मिला। हिंदी उपन्यासकार प्रेमचंद की रचनाएँ लोग बड़े चाव से पढ़ने लगे। भारतेन्दु हरिश्चंद्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में हिन्दी साहित्यकारों ने विदेशी शासन के शोषण और सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया तथा भारतीयों को जगाया। साहित्यकारों ने आधुनिक विचारों और प्राचीन भारतीय परंपरा का समन्वय करने का प्रयास किया। यही बात चित्रकला और मूर्त्तिकला के क्षेत्र में भी हुई।

विज्ञान के क्षेत्र में भी कुछ भारतीयों ने उल्लेखनीय कार्य किए। भारतीयों ने अनुभव किया कि विज्ञान का अध्ययन कि ए बिना भारत का पिछड़ापन खत्म नहीं हो सकता है। अनेक भारतीय छात्रों ने काफी गंभीरता से विज्ञान का अध्ययन शुरू किया। किंतु देश में उद्योगों के विकास तथा अनुसंधान संबंधी सुविधाओं के अभाव में वे अपने अध्ययन को व्यावहारिक रूप नहीं दे सके। धीरे-धीरे स्थिति में सुधार हुआ। गणित में रामानुजन को कम उम्र में ही बड़ी ख्याति मिली। चंद्रशेखर वेंकट रामन को भौतिक

शास्त्र में शोध कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार मिला। जगदीश चंद्र बोस, प्रफुल्ल चंद्र राय, बीरबल साहनी, मेघनाद साहा, शांतिस्वरूप भटनागर आदि भारतीय वैज्ञानिकों को देश के बाहर भी प्रतिष्ठा मिली।

भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का आधार बुद्धिवाद और उदारतावाद था।

अभ्यास (ख)

1. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :**
   1. **समाज के प्रति भारतीय लोगों के चिंतन पर ब्रिटिश शासन का क्या प्रभाव पड़ा ?**
   2. **जाति-व्यवस्था और समाज में स्त्रियों की स्थिति के संबंध में केशवचंद्र सेन का क्या दृष्टिकोण था ?**
   3. आर्य समाज के सस्थापक कौन थे ? उनकी शिक्षाएँ क्या थीं ?
   4. भारत में शिक्षा प्रसार में आर्य समाज का क्या योगदान था ?
   5. प्रार्थना समाज क्या था ? उसके मुख्य कार्य क्या थे ?
   6. रामकृष्ण मिशन के मुख्य कार्य क्या थे ?
   7. भारतीय जनता को जागृत करने में विवेकानंद का क्या योगदान था ?
   8. शिक्षा प्रसार और मुसलमानो में जागृति लाने में सर सैयद अहमद खाँ का क्या योगदान था ?
   9. ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में स्थापित शिक्षा प्रणाली मे क्या दोष थे !
   10. सन 1853 ई० के बाद की ब्रिटिश सरकार की शिक्षा नीति के बारे में बतलाओ।
   11. बीसवी शताब्दी में शिक्षा प्रसार में भारतीयों का क्या योगदान था ?
   12. आधुनिक भारतीय साहित्य की क्या नवीन विशेषताएँ थीं ?
2. **कालम 'क' में कुछ संगठनों और संस्थाओं तथा कालम 'ख' मे कुछ व्यक्तियों के नाम हैं। कालम 'ख' में दिए गए नामों के इस तरह रखो कि उनका कालम 'क' में दिए गए नामों से सही संबंध हो जाए।**

'क'	'ख'
1 ब्रह्म समाज	1. विवेकानंद
2. आर्य समाज	2. केशव चंद्र सेन
3. प्रार्थना समाज	3. दयानंद
4. रामकृष्ण मिशन	4. सर सैयद अहमद खाँ
5. मोहम्मडन एंग्लो	5. महादेव गोविंद रानाडे

3. **करने को रुचिकर कार्य :**

1. उन्नीसवी शताब्दी के विभिन्न धार्मिक और सामाजिक सुधार-सगठनों के सस्थापकों के चित्र जमा कर उन्हें अपने एल्बम में रखो।
2. जिन लोगों के चित्र तुमने जमा किए है उनमें से कुछ की जीवनियां पढो।
3. कक्षा-भवन के लिए उनके समाज सुधार और शिक्षा सबंधी कार्यो की तालिका बनाओ।

स्वराज्य के लिए संघर्ष

तुम पढ़ चुके हो कि उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय जनता में यह चेतना आने लगी थी कि वह एक राष्ट्र है। उसने महसूस किया कि अपने समान हितों की रक्षा के लिए एक राष्ट्रीय संगठन बनाना चाहिए। इसी के परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस बनी। कांग्रेस शुरू के बीस वर्षों तक प्रशासन में इस प्रकार के सुधार लाने के लिए सक्रिय थी जिनसे जनता को देश के मामलों में अधिकार मिलें।

गरम दल और नरम दल

तुम देख चुके हो कि भारतीय नेताओं की आशाएँ पूरी नहीं हुईं। ब्रिटिश सरकार में उनकी आस्था खत्म हो गई। ब्रिटिश सरकार ने उनकी माँगों पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह उनके प्रति शत्रुतापूर्ण भाव रखने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दिनों में नए नेता सामने आए। उन्होंने जोर देना शुरू किया कि सरकार से सिर्फ अनुनय-विनय कर भारतीय अपने अधिकार नहीं प्राप्त कर सकते। उनका ब्रिटिश सरकार की सद्बुद्धि में कोई विश्वास नहीं था। उन्होंने जनता को आत्म निर्भरता का पाठ पढ़ाया। उन्होंने जनता में देश प्रेम की भावना भर दी। वह अपने देश पर गर्व करने लगी। उन्होंने उसे देश के लिए हर आवश्यक बलिदान करने के लिए प्रेरित किया। "बंदे मातरम्" राष्ट्रगान के रूप में लोकप्रिय बन गया।

नए नेताओं में सबसे प्रमुख बाल गंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल, लाला लाजपत राय और अरविंद घोष थे। वे उग्रवादी या "गरम दल" के नाम से प्रसिद्ध हुए। सुरेंद्र नाथ बनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता आदि पुराने नेता उदारवादी या



1904 ई० में खींचे गए इस फोटो मे उस जमाने के अनेक प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं को देखा जा सकता है। चित्र में बाएँ से दाएँ, बैठे हुए हैं---लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल और केलकर। खड़े हुए लोगों में बीच में हैं---चित्तरंजन दास और सुरेन्द्रनाथ टैगोर। (चित्र---श्री ज्ञानांजन पाल के सौजन्य से)।

"नरम दल" के नाम से विख्यात हुए। नरम दल वालों का विश्वास था कि ब्रिटिश शासकों को भारतीय माँगों के औचित्य को मानने के लिए मजबूर किया जा सकता है। प्रस्तावों और सभाओं द्वारा ब्रिटिश सरकार को भारतीय जनता के हित में सुधार करने के लिए तैयार किया जा सकता है।

विश्व की घटनाओं का प्रभाव

ब्रिटिश सरकार के प्रति निराशा की भावना बढ़ने के साथ गरम दल के नेताओं का प्रभाव भी बढ़ने लगा। भारत के बाहर की घटनाओं ने जनता और गरम दल के लोगों

की अंग्रेज-विरोधी भावनाओं को मजबूत किया। उनमें राष्ट्रीय चेतना बढ़ी। 1896 ई० में इटली ने पूर्वी अफ्रीका स्थित इथियोपिया को जीतने के लिए लड़ाई शुरू की। किंतु उसके सैनिकों को इथियोपिया के लोगों ने हरा दिया। यूरोप के एक देश के सैनिकों की इथियोपिया के लोगों से हार हो जाने के कारण भारतवासियों को बड़ी खुशी हुई।

आगे चलकर जापान और रूस के बीच लड़ाई हुई। 1905 ई० में जापान की विजय हुई। यूरोप में साम्राज्यवाद के उदय के बाद यह पहला मौका था कि एशिया के एक देश ने यूरोप के किसी देश को हरा दिया। इसीलिए जापान की जीत ने भारतीय जनता को बहुत प्रभावित किया। ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीय जनता की घृणा बढ़ती जा रही थी। आगे चलकर जापान स्वयं साम्राज्यवादी बन गया और उसने एशिया के अनेक भागों पर कब्जा जमाने की कोशिश की। किंतु 1905 ई० में जापान की विजय काफी महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि उसने दिखला दिया, कि यूरोप के किसी देश को भी हराया जा सकता है। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष में भारतीयों को बल मिला। उनमें आत्मविश्वास की भावना जगी। उसी साल 1905 ई० में रूस में क्रांति हुई। उन दिनों रूस पर निरंकुश बादशाह का शासन था। वहाँ की जनता को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। रूस के बादशाह को जार कहा जाता था। रूस की जनता जार के खिलाफ उठ खड़ी हुई। क्रांति दबा दी गई, किंतु भारत और अन्य देशों की उत्पीड़ित जनता को उसने संघर्ष के लिए प्रेरित किया। कई अन्य विश्व घटनाओं ने भारतीय जनता को प्रेरणा दी। संसार के अन्य भागों में गुलामी और अत्याचार के विरुद्ध लोगों के संघर्ष ने भारतीय जनता को प्रभावित किया। उदाहरण के लिए, आयरलैंड की जनता ब्रिटिश आधिपत्य से अपने को मुक्त करने के लिए संघर्ष कर रही थी। आयरलैंड की स्वतंत्रता की लड़ाई से भारतीय जनता और उसके नेताओं की विचारधारा काफी प्रभावित हुई। इन सब के कारण नए नेताओं का प्रभाव जनता पर बढ़ गया।

बंगाल का विभाजन

किंतु राष्ट्रीय आंदोलन के लक्ष्यों और तरीकों को प्रभावित करने और बदलने में बंगाल के विभाजन का सबसे अधिक हाथ रहा। उस समय बंगाल भारत का सबसे बड़ा प्रांत था। उसमें संपूर्ण बिहार और वर्तमान उड़ीसा के हिस्से शामिल थे। बंगाल की जनसंख्या 7 करोड़ 80 लाख थी। कई सालों से बंगाल के पुनर्संगठन की बात चल रही थी। कहा जाता था कि इतने बड़े प्रांत का प्रशासन मुश्किल है, इसलिए उसका

विभाजन जरूरी है। किंतु बंगाल से गैर बंगाली क्षेत्रों (बिहार और उड़ीसा) को अलग करने के बदले पूर्व बंगाल को अलग करने का प्रस्ताव था। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर बनाना था। बंगाल राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रणी था। ब्रिटिश शासकों का विचार था कि प्रांत का विभाजन कर वे जनता में फूट डालने में सफल हो जाएँगे। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन कमजोर हो जाएगा। उनका दूसरा उद्देश्य हिंदुओं और मुसलमानों को आपस में लड़ाना था। उन्होंने कहा कि नए प्रांत में मुसलमानों का बहुमत होगा। इस तरह वह उनके हित में होगा। अंग्रेजों का ख्याल था कि इस तरह वे मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन से अलग कर देंगे। जनता और राष्ट्रीय नेताओं ने अंग्रेजों की असली चाल समझ ली। सारे बंगाल में विभाजन के प्रस्ताव के विरोध में सैकड़ों सभाएँ हुईं। बंगाल की सारी जनता ने एक स्वर से विभाजन का विरोध किया।

किंतु गवर्नर-जनरल कर्जन की सरकार ने जनता की भावनाओं का कोई ख्याल नहीं किया। जुलाई, 1905 ई० में विभाजन की घोषणा कर दी गई। बंगाल के पूर्वी हिस्सों को अलग कर असम के साथ मिला दिया गया। इस तरह पूर्वी बंगाल और असम का नया प्रांत बना। बंगाल के विभाजन के प्रस्ताव को 16 अक्तूबर 1805 ई० को कार्य रूप दे दिया गया।

विभाजन के कारण सारे बंगाल में रोष की लहर दौड़ गई। विभिन्न शहरों में बड़ी सभाएँ और विशाल प्रदर्शन हुए। विभाजन के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया गया। गरम दल और नरम दल के नेताओं ने एक साथ आंदोलन का नेतृत्व किया। आंदोलन के कुछ प्रमुख नेताओं में सुरेंद्र नाथ बनर्जी, विपिनचंद्र पाल और अब्दुल रसूल थे। विभाजन का दिन सारे बंगाल में शोक-दिवस के रूप में मनाया गया। सारा कारोबार ठप्प हो गया। महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर के सुझाव पर वह दिन जन-एकता और मैत्री-दिवस के रूप में भी मनाया गया। सारे बंगाल के लोगों ने, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान या ईसाई, एक दूसरे को राखी बाँधी। इस तरह उन्होंने अपनी एकता और बंधुता व्यक्त की।

राष्ट्रीय आंदोलन ने बंगाल के विभाजन को खत्म करना अपना उद्देश्य बना लिया। विरोध करने के नए तरीके अपनाए गए। वे तरीके स्वतंत्रता संग्राम के अभिन्न अंग बन गए। उनमें "स्वदेशी" और "बहिष्कार" मुख्य थे। लोग अभूतपूर्व संख्या में राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए। जल्द ही राष्ट्रीय आंदोलन के लक्ष्य पहले की अपेक्षा अधिक क्रांतिकारी हो गए। इस प्रकार बंगाल के विभाजन के परिणाम सरकार की आशा के विपरीत हुए।

स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन

स्वदेशी और विदेशी माल का बहिष्कार करने के आंदोलन बंगाल के विभाजन को समाप्त करने के लिए शुरू किए गए। किंतु वे जल्द ही आजादी की लड़ाई के प्रमुख अस्त्र बन गए। स्वदेशी का अर्थ है "अपने देश का"। बीसवीं शताब्दी के शुरू में स्वदेशी आंदोलन का उद्देश्य था कि लोग अपने देश की बनी वस्तुओं का ही इस्तेमाल करें। इससे भारतीय उद्योगों को बढ़ावा मिलेगा और राष्ट्र मजबूत बनेगा। देशभक्ति बढ़ाने का यह प्रभावकारी तरीका था।

स्वदेशी आंदोलन के साथ ही विदेशी माल के बहिष्कार की भी बात की गई। लोगों को विदेशी सामान इस्तेमाल न करने का अनुरोध किया गया। इससे जनता में राष्ट्रीय भावनाएँ पनपीं। यह ख्याल था कि विदेशी माल के बहिष्कार से उनकी बिक्री घटेगी। अधिकतर विदेशी सामान इंग्लैंड के बने होते थे। इसलिए लोगों का विचार था कि ब्रिटेन के आर्थिक हितों को धक्का लगेगा और ब्रिटिश सरकार को भारतीय माँगें मानने के लिए मजबूर किया जा सकेगा।

स्वदेशी आंदोलन और विदेशी माल के बहिष्कार से सारे भारत में राजनीतिक गतिविधियाँ बढ़ गईं। लोगों ने इंग्लैंड के कपड़े, चीनी और अन्य सामानों का बहिष्कार किया। लोग झुंड बना कर दुकानों पर जाते और दुकानदारों से विदेशी सामान न बेचने का अनुरोध करते थे। वे दुकानों के बाहर खड़े होकर ग्राहकों से विदेशी सामान न खरीदने का आग्रह करते थे। विदेशी सामान की खरीद-बिक्री करने वालों से लोगों ने अपने संबंध तोड़ लिए। कई जगहों में नाइयों और धोबियों ने उनकी हजामत बनाने और कपड़े धोने से इंकार कर दिया।

इस आंदोलन में स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थियों की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने सिर्फ भारत में बनी वस्तुओं का ही इस्तेमाल शुरू किया। लोगों को विदेशी वस्तुओं का इस्तेमाल न करने के लिए काफी प्रेरित किया। सरकार ने सब प्रकार से आंदोलन का दमन शुरू किया। अनेक विद्यार्थियों को स्कूल-कालेजों से निकाल दिया गया। अनेक लोग पीटे गए और जेल में बंद कर दिए गए।

स्वदेशी और बहिष्कार सिर्फ सामानों तक ही सीमित नहीं थे। स्वदेशी की परिभाषा के अंदर जो कुछ भारतीय था वह सब आ गया। ब्रिटिश शासन से संबद्ध अनेक चीजों का बहिष्कार होने लगा। वे शक्तिशाली अस्त्र बन गए। भारतीय जनता ने उनका ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रयोग किया। शुरू में उनका इस्तेमाल सरकार द्वारा बंगाल

का विभाजन रोकने के लिए किया गया, किंतु बाद में उनका अधिकाधिक प्रयोग विदेशी शासन से देश को आजाद कराने के लिए किया जाने लगा।

कांग्रेस और स्वराज्य का लक्ष्य

बंगाल के विभाजन के खिलाफ आंदोलन और स्वदेशी तथा बहिष्कार आंदोलन की व्यापकता ने कांग्रेस की नीतियों को प्रभावित किया। नरम दल और गरम दल के लोगों सहित पूरी कांग्रेस एक जुट हो गई। कांग्रेस का अधिवेशन 1905 ई० में बनारस में हुआ। गोपालकृष्ण गोखले उस अधिवेशन के अध्यक्ष थे। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन को अपना समर्थन देने का निश्चय किया।

किंतु नरम दल और गरम दल वालों के मतभेद समाप्त नहीं हुए। नरम दल वालों का विश्वास था कि बहिष्कार जैसे तरीकों का प्रयोग विशेष स्थितियों में विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया गया। उनके विचार से बंगाल के विभाजन के विरुद्ध उनका इस्तेमाल सही था। किंतु वे नहीं चाहते थे कि उन तरीकों का इस्तेमाल ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हमेशा किया जाए। वे ब्रिटिश शासन के विरुद्ध देशव्यापी संघर्ष के पक्ष में नहीं थे। ब्रिटेन में उदार दल की सरकार बनी थी। मॉर्ले भारत मंत्री था। नरम दल के नेताओं का विश्वास था कि याचिकाओं और अनुनय-विनय से ब्रिटेन की उदारदलीय सरकार को प्रशासन में सुधार लाने के लिए तैयार किया जा सकता है।

बंगाल के विभाजन के विरुद्ध आंदोलन के कारण गरम दल वालों का असर बढ़ा। उन्होंने अन्य चीजों के बहिष्कार पर जोर दिया। उन्होंने लोगों से सरकारी स्कूल-कालेजों और विश्वविद्यालयों के बहिष्कार के लिए कहा। देशभक्ति की भावना भरने वाली शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना पर जोर दिया गया। संक्षेप में, गरम दल वाले ब्रिटिश शासन के विरुद्ध व्यापक आंदोलन चलाना चाहते थे। आंदोलन के इस तरीके को निष्क्रिय विरोध या "सत्याग्रह" कहा गया। इस आंदोलन में शामिल लोगों ने सरकार के काम काज में सहयोग देना बंद कर दिया। स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन लोगों में आत्म निर्भरता की भावना लाने में सहायक हुए। उनके जरिए लोग ब्रिटिश सरकार की नीतियों को विफल बनाना चाहते थे क्योंकि भारत में ब्रिटिश माल की बिक्री देश के आर्थिक शोषण का एक तरीका था।

कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन 1906 ई० के दिसंबर महीने में कलकत्ता में हुआ। भारतीय जनता के अत्यंत प्रतिष्ठित नेता दादा भाई नौरोजी उसके अध्यक्ष बने। उस

समय तक नरम दल और गरम दल के लोगों के बीच मतभेद काफी बढ़ गया था। किंतु दादा भाई नौरोजी के प्रयासों से नीतियों के बारे में उनमें समझौता हो गया। एक प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने बहिष्कार और स्वदेशी आंदोलन का समर्थन किया। देश की आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा-व्यवस्था लाने पर भी जोर दिया गया। कहा गया कि नई शिक्षा-व्यवस्था की स्थापना और संचालन भारतीय करें। किंतु कांग्रेस का सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णय भारतीय जनता के लक्ष्य के बारे में था। "स्वराज्य" भारतीय जनता का लक्ष्य घोषित किया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए दादा भाई नौरोजी ने इसकी घोषणा की। कांग्रेस ने एलान किया कि स्वराज्य उसका लक्ष्य है। स्वराज्य का मतलब स्वशासित ब्रिटिश उपनिवेशों की शासन-व्यवस्था प्राप्त करने से था। कनाडा और आस्ट्रेलिया ब्रिटिश साम्राज्य के अंग थे, किंतु उनकी सरकारें जनता द्वारा निर्वाचित होती थीं और वे जनता के प्रति उत्तरदायी थी। कांग्रेस के घोषित लक्ष्यों की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण प्रगति थी। तब तक कांग्रेस तत्कालीन सरकारी ढाँचे में ही सुधार के लिए प्रयास कर रही थी। उसका विश्वास था कि उन सुधारों के कारण भारत स्वशासन की ओर बढ़ेगा। किंतु उसने कभी अपने उस लक्ष्य को स्पष्ट रूप से नहीं रखा था। इस दृष्टि से कांग्रेस का यह अधिवेशन हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास मे काफी महत्त्वपूर्ण है।

नरम दल और गरम दल वाले काफी दिनों तक एक साथ नहीं रह सके। 1907 ई० मे कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में हुआ। वहाँ दोनो में खुला संघर्ष हुआ। उनका झगड़ा स्वराज्य-प्राप्ति के तरीकों के ऊपर शुरू हुआ। नरम दल वाले धीरे-धीरे सुधार किए जाने के पक्ष में थे। वे बहिष्कार के तरीके के खिलाफ थे। कांग्रेस पर नरम दल के नेताओं का पूरा कब्जा हो गया। गरम दल वाले कांग्रेस से अलग होकर काम करने लगे। नौ साल बाद 1916 ई० में दोनों दल एक साथ मिल गए। किंतु तब तक नरम दल के पुराने नेतृत्व का प्रभाव बहुत कम रह गया था।

सरकार ने गरम दल के नेताओं के विरुद्ध दमनकारी कदम उठाए। लाजपत राय को गिरफ्तार कर 1907 ई० के शुरू मे देश से निकाल दिया गया, किंतु उन्हें सूरत अधिवेशन के तुरन्त पहले छोड़ दिया गया। विपिनचंद्र पाल को भी 6 महीने के लिए जेल में बंद कर दिया गया। 1908 ई० में तिलक को गिरफ्तार कर 6 वर्षों के लिए बर्मा भेज दिया गया। अनेक अखबारों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। किंतु इन दमनकार्यों के बावजूद गरम दल वालों की नीतियों और तरीकों की लोकप्रियता बढ़ती गई।

मॉर्ले-मिंटो सुधार

1909 ई० में ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार के ढाँचे में कतिपय परिवर्तनों की घोषणा की। उन परिवर्तनों को मॉर्ले-मिंटो सुधार के नाम से पुकारा जाता है। उस समय मार्ले भारत मंत्री था और मिंटो वायसराय था। केंद्रीय विधान परिषद् में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 16 से 60 कर दी गई जिनमे से 27 सदस्यों के चुनाव की व्यवस्था की गई। किंतु चुनाव जनता द्वारा नहीं होना था। अधिकांश सदस्य जमींदारों, उद्योगपतियों और व्यापारियों के संगठनों तथा प्रांतीय विधान परिषदों द्वारा चुने जाने वाले थे। मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व दिया गया। विधान परिषदों मे सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 50 कर दी गई। उनमें से आधे से कम सदस्य चुने जाने वाले थे। वहाँ भी आम जनता को चुनाव में भाग लेने का अधिकार नहीं था। चुनाव में जमींदार, व्यापारियों के संगठन, विश्वविद्यालय तथा स्थानीय संस्थाएं ही भाग ले सकती थी। परिषदों के निर्णयों को मानना सरकार के लिए आवश्यक नहीं था। सेना और विदेश नीति जैसे विषयों के संबंध में वे सिफारिशें भी नहीं कर सकते थे।

स्वराज्य की बात कौन कहे, इन सुधारों से प्रतिनिधि सरकार की स्थापना की दिशा में भी कोई प्रगति नहीं हुई। भारत मंत्री ने तो खुले आम कहा कि भारत में संसदीय सरकार की स्थापना का कोई विचार नहीं है। संसदीय सरकार में संसद सर्वोच्च होती है और वही सारे कानून और नीतियाँ बनाती है। संसद-सदस्य एक निश्चित अवधि के लिए ही चुने जाते है। (भारत में अभी संसदीय सरकार है।)। 1857 ई० के विद्रोह के बाद स्थापित निरंकुश सरकार ज्यों की त्यों रही। सिर्फ यही परिवर्तन हुआ कि सरकार ने अपनी पसंद के कुछ भारतीयों को उच्च पदों पर नियुक्त करना शुरू किया। सत्येंद्र प्रसन्न सिन्हा गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य बनाए गए। बाद में वे लॉर्ड बने। उन्हें बिहार और उड़ीसा का गवर्नर बनाया गया। किंतु संपूर्ण ब्रिटिश शासन के दौरान इतने ऊँचे पद पर पहुँचने वाले एक मात्र भारतीय लॉर्ड सिन्हा ही थे।

मॉर्ले-मिंटो सुधार से कांग्रेस के नरम दली नेताओं को भी निराशा हुई। सब लोग सुधारों के एक खास पहलू से अधिक असंतुष्ट थे। वह पहलू था हिंदुओं और मुसलमानों के बीच फूट डालने का प्रयास। अंग्रेज फूट डालने और शासन करने की अपनी पुरानी नीति का अनुसरण करना चाहते थे। परिषदों के चुनाव के लिए उन्होंने सांप्रदायिक चुनाव-पद्धति अपनाई। उसके अनुसार मुसलमान सदस्यों का चुनाव मुसलमानों को ही करना था। इस तरह अंग्रेज मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन से अलग करना चाहते

थे। वे उन्हें शेष राष्ट्र से अलग रखने लगे और उन्हें बतलाने लगे कि उनके हित शेष हिंदुस्तानियों से अलग हैं। मुहम्मद अली जिन्ना सहित कई महत्त्वपूर्ण मुसलमान नेताओं ने इसका विरोध किया। शायद तुम्हें मालूम है कि आगे चलकर मुहम्मद अली जिन्ना एक ऐसे दल के नेता बने जिसकी मुख्य माँग मुसलमानों के लिए अलग राज्य—पाकिस्तान की स्थापना थी।

जार्ज पंचम के गद्दी पर बैठने के बाद 1911 ई० में दिल्ली में एक दरबार हुआ जिसमें वह सम्मिलित हुआ। इस अवसर पर दो घोषणाएँ की गई—एक तो 1905 ई० में किए गए बंगाल के विभाजन को रद्द कर दिया गया। दूसरे कलकत्ते की बजाए दिल्ली को भारत की राजधानी बनाया गया। तुम्हें याद होगा कि भारत में अंग्रेजी राज के शुरू होने के समय से ही कलकत्ता भारत की राजधानी था।

क्रांतिकारी आंदोलन

कांग्रेस के अतिरिक्त भी ऐसे कई समूह थे जो ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकना चाहते थे। वे बदनाम ब्रिटिश अफसरों, गवर्नरों और वायसरायों के विरुद्ध हिंसात्मक तरीके अपनाते थे। उनमें से कुछ क्रांतिकारियों के नाम से तुम जरूर परिचित होगे। 1908 ई० में खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने मुजफ्फरपुर में एक घोड़ागाड़ी पर बम फेंके। उनका ख्याल था कि उसमें एक अंग्रेज जज जा रहा है। वह जज स्वदेशी आंदोलन में भाग लेने वालों को कड़ी सजाएँ देने के लिए बदनाम था। किंतु उस गाड़ी में दो अंग्रेज औरतें जा रही थीं। दुर्भाग्यवश बम से दोनों मर गई। चाकी ने आत्महत्या कर ली और खुदीराम बोस को फाँसी दे दी गई। इस घटना के बाद कई लोगों को बम बनाने तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र के अभियोग में पकड़ा गया। गिरफ्तार किए गए लोगों में अरविंद घोष भी थे। अरविंद घोष ने जेल से रिहा होने पर सारे राजनीतिक कार्यों से संन्यास लेकर आध्यात्मिक साधना शुरू कर दी। वे पांडिचेरी में जाकर बस गए। उस समय पांडिचेरी फ्रांसीसी उपनिवेश था। 1912 ई० में वायसराय हार्डिंग पर बम फेंका गया, किंतु वह बच गया।

भारतीय क्रांतिकारी संसार के अन्य भागों में भी सक्रिय थे। उनमें से एक दल का नेतृत्व सावरकर कर रहे थे। सावरकर का दल इंग्लैंड और फ्रांस में सक्रिय था। प्रथम महायुद्ध (1914–1918 ई०) के दौरान क्रांतिकारियों ने भारत में चोरी-छिपे हथियार लाकर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह करने की कोशिशें की। अमरीका में

भारतीय क्रांतिकारियों के नेता हरदयाल थे। ब्रिटिश शासन को खत्म करने के लिए कई योजनाएँ बनीं। एक योजना के अनुसार भारत को गणतंत्र घोषित कर महेंद्र प्रताप को राष्ट्रपति और बरकतुल्ला को प्रधान मंत्री बनाना था। किन्तु सारी योजनाएँ विफल हो गईं। अनेक क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें कठिन यातनाएँ दी गईं। वे लंबे समय तक जेल में बंद रहे।

भारतीय क्रांतीकारी अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सके, किंतु उनकी देशभक्ति, दृढ़ता और आत्म-बलिदान भारतीय जनता के लिए प्रेरणा स्रोत बन गए। क्रांतिकारियों की कार्यविधि में कुछ कमजोरियाँ थीं। उदाहरण के लिए, उनका विश्वास था कि कुछ व्यक्तियों को मारकर वे भारत को स्वतंत्र कर सकते थे। वे छोटे-छोटे समूहों में संगठित थे। उन्होंने आम जनता को एकजुट करने और अपने साथ लाने की कोशिश नहीं की। वे यह महसूस नहीं कर सके कि एक शक्तिशाली साम्राज्य को व्यक्तिगत हिंसात्मक कार्यों से नहीं खत्म किया जा सकता। सिर्फ जनता का संगठित आंदोलन ही उसे पराजित कर सकता है। इसी वजह से उन्हें आतंकवादी कहा जाता था। किंतु उनकी निर्भयता भारतीय जनता के लिए प्रेरणा स्रोत थी।

मुस्लिम लीग की स्थापना

"फूट डालो और शासन करो" की ब्रिटिश नीति के बारे में तुम पढ़ चुके हो। इस नीति का एक मुख्य पहलू हिंदुओं और मुसलमानों के बीच फूट डालना था। अंग्रेज उन्हें कहने लगे कि उनके हित एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। शुरू में उन्होंने मुसलमानों को अपना मुख्य शत्रु समझकर उनके प्रति भेदभाव का बर्ताव किया। आगे चलकर जब राष्ट्रीय आंदोलन मजबूत होने लगा, तब उन्होंने उच्चवर्गीय मुसलमानों का पक्ष लेना शुरू किया। वे उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन से अलग करना चाहते थे। उनके प्रयासों के बावजूद बड़ी संख्या में मुसलमान कांग्रेस में शामिल हो गए। कांग्रेस बिना धार्मिक भेदभाव किए सब भारतीयों की माँगों के लिए लड़ती थी। किंतु उच्चवर्गीय मुसलमानों के एक हिस्से को अपने पक्ष में करने में अंग्रेज सफल हो गए। उन्होंने उन्हें अपना अलग संगठन बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। इसका एक मुख्य कारण यह था कि मुसलमान आधुनिक शिक्षा, व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में विलंब से आए। वे हिंदुओं से उन क्षेत्रों मे पीछे थे। तुम शिक्षा के क्षेत्र में सैयद अहमद खाँ के योगदान के बारे में जानते हो। मुसलमानों ने सोचा कि सरकार के प्रति निष्ठावान रहकर ही वे तरक्की कर सकते हैं।

निस्संदेह, ब्रिटिश सरकार ने इस धारणा को बढ़ावा दिया। गरम दल के कुछ हिंदू नेताओं ने धार्मिक विश्वासों और त्यौहारों को राष्ट्रीयता के प्रचार का माध्यम बनाया था। इससे अंग्रेजों के हिमायती मुसलमानों को यह कहने का मौका मिल गया कि राष्ट्रीय आंदोलन सिर्फ हिंदुओं का आंदोलन है और मुसलमानों को उसमें कोई संबंध नहीं रखना चाहिए।

तुम जानते हो कि बंगाल के विभाजन का उद्देश्य हिंदुओं और मुसलमानों को एक दूसरे से अलग करना था। 1906 ई० में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। उसकी स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका आगा खाँ और ढाका के नवाब सलीमुल्ला की थी। आगा खाँ मुसलमानों के एक संप्रदाय के धार्मिक नेता थे। वायसराय मिंटो ने उनकी पीठ ठोंकी। मुस्लिम लीग ने घोषणा की कि उसका लक्ष्य सरकार के प्रति निष्ठा रखना, मुसलमानों के हितों की रक्षा और पूर्ति करना और भारत के अन्य समुदायों के प्रति मुसलमानों में शत्रुता की भावना नहीं पनपने देना है।

धर्म के आधार पर राजनीतिक संगठनों की स्थापना जनता और देश के राजनीतिक जीवन के लिए हानिकारक और खतरनाक होती है। ऐसे संगठन इसलिए हानिकारक होते हैं कि वे लोगों में यह धारणा पैदा करते हैं कि विभिन्न समुदायों के हित एक दूसरे से भिन्न हैं। इस धारणा के कारण लोग यह महसूस नहीं कर पाते कि संपूर्ण राष्ट्र के हितों की रक्षा से ही किसी खास समुदाय के हितों की रक्षा हो सकती है। समुदायों के हितों की भिन्नता का प्रचार करने वाले संगठनों को सांप्रदायिक संगठन कहते हैं। वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अन्य समुदायों के प्रति घृणा उत्पन्न करते और फैलाते हैं। किसी भी राष्ट्र के लोग विभिन्न धर्मों में विश्वास करते हुए भी समान हितों और अधिकारों वाले होते हैं। धर्म हर नागरिक का निजी मामला है। धर्म को राजनीति के साथ नहीं मिलाना चाहिए।

ब्रिटिश सरकार के प्रयासों के बावजूद आम मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए। दो मुसलमान नेता जो काफी प्रसिद्ध हुए वे मौलाना मुहम्मद अली और अबुल कलाम आजाद थे। उन्होंने अपने लेखों द्वारा जनता में राष्ट्रीयता की भावना भरी और उसे स्वतंत्रता-संग्राम में ले आए। मुस्लिम लीग पर भी राष्ट्रीय विचारों का प्रभाव पड़ा। अपनी स्थापना के समय लीग ने घोषणा की थी कि उसका उद्देश्य मुसलमानों को ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठावान बनाना है। किंतु जिस प्रकार कांग्रेस ने 1906 ई० में किया था, उसी प्रकार 1913 ई० में मुस्लिम लीग ने स्वशासन की प्राप्ति को अपना लक्ष्य घोषित किया।

प्रथम महायुद्ध के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन

यूरोप के देशों के दो परस्पर विरोधी साम्राज्यवादी गुटों के झगड़ों के कारण प्रथम महायुद्ध 1914 ई० में शुरू हुआ। वह 1918 ई० तक चलता रहा। वह संसार व्यापी युद्ध था, इसलिए उसे प्रथम विश्व युद्ध कहा जाता है। तुम जानते हो पहले जब भी ब्रिटेन लड़ाइयों में उलझा, उसने भारतीय संसाधनों और सैनिकों का अपने पक्ष में इस्तेमाल किया। प्रथम विश्व युद्ध में भी उसने वैसा ही किया, यद्यपि भारतीय जनता के हितों का ब्रिटिश सरकार के लक्ष्यों से कोई संबंध नहीं था।

लड़ाई के दौरान भारत में राष्ट्रीय प्रचार काफी तेज कर दिया गया। भारत में स्वशासन की स्थापना की माँग होने लगी। यह "होम रूल" आंदोलन के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीमती एनी बेसेंट, तिलक और अन्य नेताओं के नेतृत्व में देश-भर में होम रूल लीगों की स्थापना हुई। होम रूल आंदोलन में भाग लेने वाले नेताओं में मोतीलाल नेहरू और चित्तरंजन दास प्रमुख थे। सरकार ने दमन का सहारा लिया। श्रीमती एनी बेसेंट को गिरफ्तार कर लिया गया और कई समाचारपत्रों पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

इस दौरान सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी, 1916 ई० का लखनऊ समझौता। कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने इस समझौते पर हस्ताक्षर कर एक साथ विधान परिषदों में बहुसंख्यक सदस्यों के चुनाव की माँग करने का निर्णय किया। उन्होंने यह भी माँग की कि वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् के कम से कम आधे सदस्य भारतीय हों। समान लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग का एकजुट होना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उसी साल कांग्रेस के नरम दल और गरम दल में एकता हो गई। तुम्हें मालूम है कि वे सूरत कांग्रेस में एक दूसरे से अलग हो गए थे।

गांधी का उदय

प्रथम महायुद्ध के दौरान भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नेता के रूप में मोहनदास करमचंद गांधी का उदय हुआ। वे आधुनिक भारत के सबसे बड़े नेता थे। उन्होंने भारतीय जनता को जगाया और 30 वर्षों से अधिक समय तक आजादी की लड़ाई में उसका नेतृत्व किया। लोग उनका इतना आदर करते थे कि वे महात्मा के नाम से लोकप्रिय हो गए।

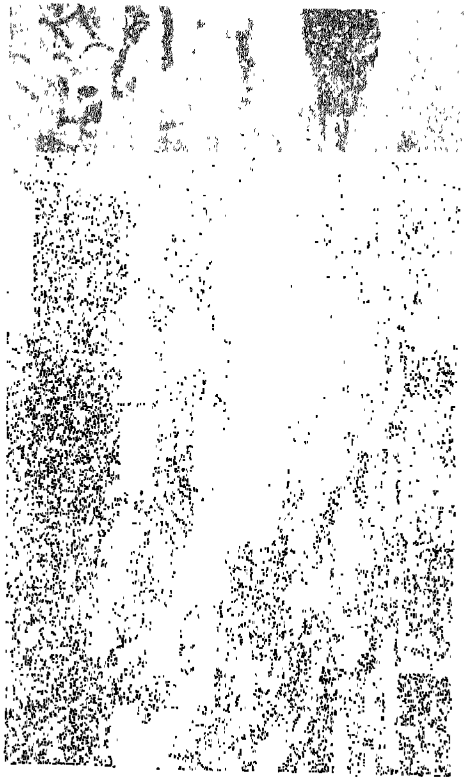
उनका जन्म 1869 ई० में हुआ था। इंग्लैंड में अपनी शिक्षा समाप्त कर वे वकील के रूप में दक्षिण अफ्रीका गए। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए उन्होंने वहाँ के भारतीयों

के ऊपर होने वाले अत्याचार के खिलाफ़ संघर्ष किया। वहीं पर उन्होंने अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष का अपना तरीका विकसित किया। इसी तरीके से भारतीय जनता ने अपनी आजादी की लड़ाई लड़ी। इसे "सत्याग्रह" कहा जाता है। सत्याग्रह करने वाला व्यक्ति जेल सहित हर यातना और दंड के लिए तैयार रहता है। अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष का यह अहिंसात्मक तरीका है।

गांधी जी 1915 ई० में भारत लौटे, वे भारत आकर अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष में लग गए। उन्होंने अत्याचार के विरुद्ध पहला संघर्ष चंपारण (बिहार) में किया। वे गरीब किसानों को निलहों के अत्याचारों से मुक्त कराने के लिए लड़े। चंपारण के मैजिस्ट्रेट ने उन्हें तुरंत जिला छोड़कर बाहर जाने का आदेश दिया, किंतु उन्होंने खुले आम उसके आदेश की अवहेलना की। निलहों के अत्याचार की जाँच के लिए सरकार को मजबूर कर दिया गया।

प्रथम महायुद्ध समाप्त होने के बाद गांधी जी भारतीय जनता के सर्वमान्य नेता हो गए। प्रथम महायुद्ध के बाद का काल अभूतपूर्व जन-आंदोलन का काल था। लाखों लोग आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। गांधी जी ने जनता में निर्भयता की भावना पैदा की और जेल, लाठी और गोली सहित हर प्रकार के दमन का सामना करने की इच्छा-शक्ति उसमें भरी। उनके नेतृत्व में लोगों ने कानूनों की खुलेआम अवहेलना की, कचहरियों और दफ्तरों का बहिष्कार किया, करों की अदायगी नहीं की, शांतिपूर्ण प्रदर्शन किए, कारोबार ठप्प कर दिया और विदेशी माल बेचने वाली दुकानों के सामने धरना दिया। तुम्हें याद होगा कि इनमें से कुछ तरीके बंगाल के विभाजन के विरुद्ध अपनाए गए थे। किंतु गांधी जी के नेतृत्व में ये तरीके बड़े पैमाने पर अपनाए गए क्योंकि आजादी की लड़ाई में समाज के विभिन्न वर्गों से लाखों लोग शामिल हो गए। राष्ट्रीय आंदोलन वास्तव में भारतीय जनता का आंदोलन हो गया। उसमें किसान और अन्य गरीब लोग शामिल हो गए।

राष्ट्रीय आंदोलन का विशाल जन-आधार गांधी जी द्वारा चलाए गए समाज सुधारों और रचनात्मक कार्यक्रमों के कारण भी हो गया। उन्होंने अस्पृश्यता के अमानवीय व्यवहार के खिलाफ संघर्ष में अपने को लगा दिया। तुम जानते हो कि उन दिनों लाखों लोग दलित अवस्था में थे क्योंकि उच्च जाति के लोग उन्हें अछूत समझते थे। गांधी जी का एक सबसे बड़ा योगदान इस बुराई का उन्मूलन है। उनके लिए अछूत "हरिजन" थे। वे और उनके अनुयायी अपने आश्रमों में पखाना साफ करने जैसे काम करते थे,



6 अप्रैल 1919 को बंबई में एक मस्जिद में भाषण करने के बाद नीचे उतरते हुए गांधी जी। साथ में है उमर सोबानी।
(चित्र—नेहरू स्मारक संग्रहालय व लाइब्रेरी के सौजन्य से)

जिन्हें उच्च जाति वाले अछूतों के काम मानते थे।

गांधी जी ने गाँवों के लोगों की हालत सुधारने के लिए प्रयत्न किए। उनका ख्याल था कि गाँवों की हालत में सुधार के बिना भारत में कोई प्रगति नहीं हो सकती, क्योंकि 80 प्रतिशत भारतीय जनता गाँवों में रहती है। उन्होंने गाँवों में छोटे उद्योगों की स्थापना के लिए प्रयास किया। उन्होंने खादी का प्रचार किया। हर कांग्रेसी के लिए खादी पहनना अनिवार्य हो गया। चर्खा ग्रामोद्योगों के महत्त्व का प्रतीक बन गया और वह कांग्रेस के झंडे का अंग बन गया।

गांधी जी आदमी-आदमी के बीच विभेद पैदा करने वाली हर चीज के खिलाफ थे। उन्होंने विश्वबंधुत्व का संदेश दिया। वे हिंदू-मुसलमान-एकता के पक्के समर्थक बन गए। तुम जानते हो कि इसी के लिए वे शहीद भी हो गए।

इस तरह गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन ने एक नए दौर में प्रवेश किया।

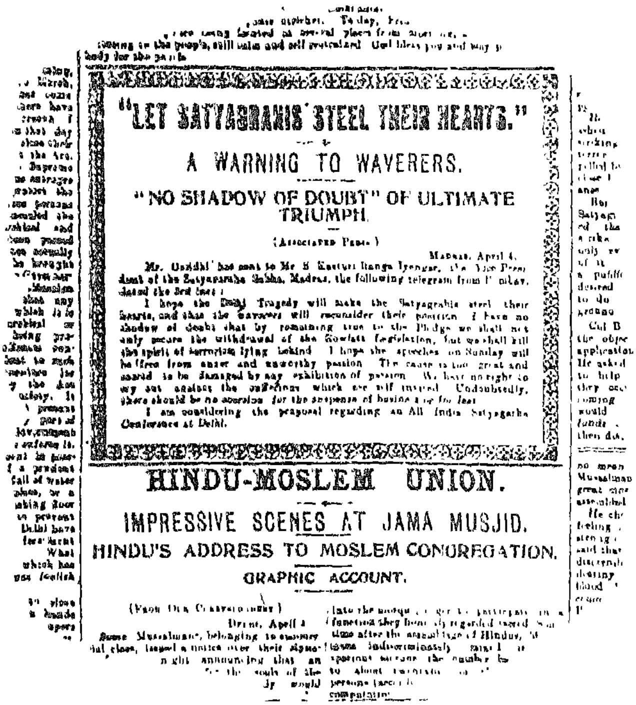
वह स्वतंत्रता के साथ ही भारतीय समाज में सुधार तथा न्याय और बंधुत्व का जन-आंदोलन हो गया।

युद्ध के बाद ब्रिटिश नीति

लड़ाई के दौरान ब्रिटेन और उसके मित्र देशों ने कहा था कि वे राष्ट्रों की आजादी के लिए लड़ रहे हैं। अनेक भारतीय नेताओं का विश्वास था कि लड़ाई खत्म होने के बाद भारत को स्वराज्य मिल जाएगा। किंतु भारतीय जनता की माँगें मानने का ब्रिटिश सरकार का कोई इरादा नहीं था।

1919 ई० में ब्रिटिश सरकार ने भारत की शासन-पद्धति में कुछ परिवर्त्तन किए। वे परिवर्त्तन मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय मांटेग्यू भारत मंत्री और चेम्सफोर्ड वायसराय था। उन परिवर्त्तनों के अनुसार केंद्रीय विधान मंडल के दो सदन बनाए गए। वे दोनों सदन थे--विधान परिषद् और राज्य सभा। दोनों सदनों के बहुसंख्यक सदस्य निर्वाचित किए जाने वाले थे। प्रांतीय विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और बहुसंख्यक सदस्यों के चुने जाने की व्यवस्था की गई। प्रांतों में शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि विभागों के प्रभारी मंत्रियों को परिषद् के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। किंतु सारे महत्त्वपूर्ण विभाग गवर्नर के पास ही रह गए। परिषदों के चुनाव में भाग लेने वाले लोगों की संख्या काफी सीमित थी, क्योंकि सिर्फ संपत्तिवान लोगों को ही मत देने के अधिकार थे। महत्त्वपूर्ण अधिकार गवर्नर-जनरल और उसकी कार्यकारिणी परिषद् के ही हाथों में थे। वे भारतीय जनता के बदले ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी थे। प्रांतों में विधान परिषदें शक्तिहीन थीं, क्योंकि सारे अधिकार गवर्नरों के ही पास थे।

उपर्युक्त परिवर्त्तनों से स्वराज्य प्राप्त होता नजर नहीं आया। लोगों की आशा पर पानी पड़ गया। सारे देश में व्यापक असंतोष हो गया। असंतोष को दबाने के लिए सरकार ने दमन-कार्यों का सहारा लिया। 1919 ई० के शुरू में रौलट ऐक्ट बना। उसके जरिए सरकार को किसी भी व्यक्ति को बिना मुकद्मा चलाए जेल में बंद करने का अधिकार मिल गया। उस ऐक्ट के बनने के कारण लोगों का रोष बढ़ गया। सारे देश में विरोध प्रकट किया जाने लगा। देश भर मे प्रदर्शन और हड़तालें हुई। सरकार ने बर्बरतापूर्वक दमन शुरू किया। कई जगहों पर लाठी-गोली का सहारा लिया गया।



"LET SATYAGRAHIS STEEL THEIR HEARTS."

A WARNING TO WAVERERS.

"NO SHADOW OF DOUBT" OF ULTIMATE TRIUMPH.

(Associated Press.)

Madras, April 4.

Mr. Gandhi has sent to Mr S. Kasturi Ranga Iyengar, the Vice President of the Satyagraha Sabha, Madras, the following telegram from Bombay, dated the 3rd inst :

I hope the Delhi Tragedy will make the Satyagrahis steel their hearts, and that the waverers will reconsider their position. I have no shadow of doubt that by remaining true to the Pledge we shall not only secure the withdrawal of the Rowlatt legislation, but we shall kill the spirit of terrorism lying behind. I hope the speeches on Sunday will be free from anger and unworthy passion. The cause is too great and sacred to be damaged by any exhibition of passion. We have no right to cry out against the sufferings which are self invited. Undoubtedly, there should be no coercion for the suspension of business for fast.

I am considering the proposal regarding an All India Satyagraha Conference at Delhi.

HINDU-MOSLEM UNION.

IMPRESSIVE SCENES AT JAMA MUSJID.

HINDU'S ADDRESS TO MOSLEM CONGREGATION.

GRAPHIC ACCOUNT.

(From Our Correspondent.)

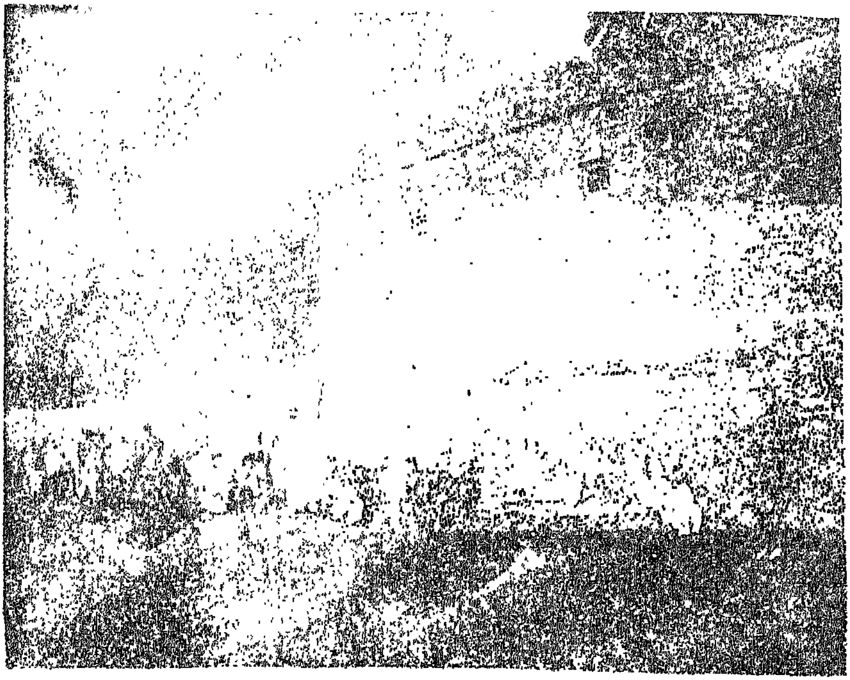
Delhi, April 4.

Some Mussalmans, belonging to a ... class, issued a notice over their signature ... night announcing that an ... for the souls of the ... would ... into the mosque ... participate in a function they ... regarded sacred ... time after the ... of Hindus ... indiscriminately ... spacious ... the number ... to about ... persons ... computation ...

रौलट ऐक्ट के विरोध में सारे देश मे रोषपूर्ण प्रदर्शन हुए जिसको दबाने के लिए सरकार ने दमन चक्र चलाया। दिल्ली में हुए अत्याचार के संबंध में 'इंडिपेंडेंट' में प्रकाशित गांधी जी के एक वक्तव्य मे सत्याग्रहियों को कमर कसने का आह्वान किया गया है। नीचे दिल्ली की जामा मसजिद में हुई एक विशाल जन-सभा का समाचार है जिसमें रौलट ऐक्ट का विरोध हिंदू व मुसलमानों ने एक स्वर मे किया। (चित्र—नेहरू स्मारक संग्रहालय व पुस्तकालय के सौजन्य से)।

जलियाँवाला बाग हत्याकांड

दमन के ही क्रम में अमृतसर में निहत्थे लोगों को अकारण गोली से भून दिया गया। 10 अप्रैल को दो राष्ट्रवादी नेता—सत्यपाल और डा० सैफुद्दीन किचलू गिरफ्तार कर लिए गए। अमृतसर में एक छोटा-सा पार्क है जिसे जलियाँवाला-बाग कहते हैं। यह बाग तीन ओर दीवालों से घिरा है। एक छोटी गली से होकर पार्क में जाने का रास्ता है। 13 अप्रैल को दोनों नेताओं की गिरफ्तारी पर विरोध प्रकट करने के लिए जनता इकट्ठी हुई। सभा शांतिपूर्ण थी। सभा में काफी संख्या में बूढ़े लोग, स्त्रियाँ और बच्चे भी थे



जलियाँवाला बाग, जहाँ अब शहीदी स्मारक बना है। चित्र में दीवाल पर लगी गोलियों के निशान देखे जा सकते हैं। (चित्र—नेहरू स्मारक संग्रहालय व लाइब्रेरी के सौजन्य से)।

एकाएक जनरल डायर नामक अंग्रेज अफसर अपने सैनिकों सहित पार्क में आया। जनता को तितर-बितर होने के लिए बिना कहे या चेतावनी दिए, उसने अपने सैनिकों को गोली चलाने का आदेश दिया। सैनिकों ने 10 मिनट तक निहत्थे लोगों पर मशीनगनों से गोलियाँ चलाईं। उसके बाद वे चले गए। उन 10 मिनटों में लगभग एक हजार आदमी मर गए और दो हजार घायल हो गए। गोलियों के निशान अब भी वहाँ दीवालों पर तुम देख सकते हो।

यह हत्याकांड जानबूझ कर किया गया था। डायर ने शान के साथ कहा कि उसने ऐसा लोगों का नैतिक बल तोड़ने के लिए किया। उसे कोई पश्चात्ताप नहीं हुआ। वह इंग्लैंड चला गया। वहाँ कुछ अंग्रेजों ने उसका सम्मान करने के लिए पैसे इकट्ठे किए। किंतु अन्य अंग्रेजों को इससे बड़ा धक्का लगा। उन्होंने जाँच की माँग की।

जालियाँवाला बाग हत्याकांड से भारतीय जनता का गुस्सा बढ़ गया। किंतु सरकार

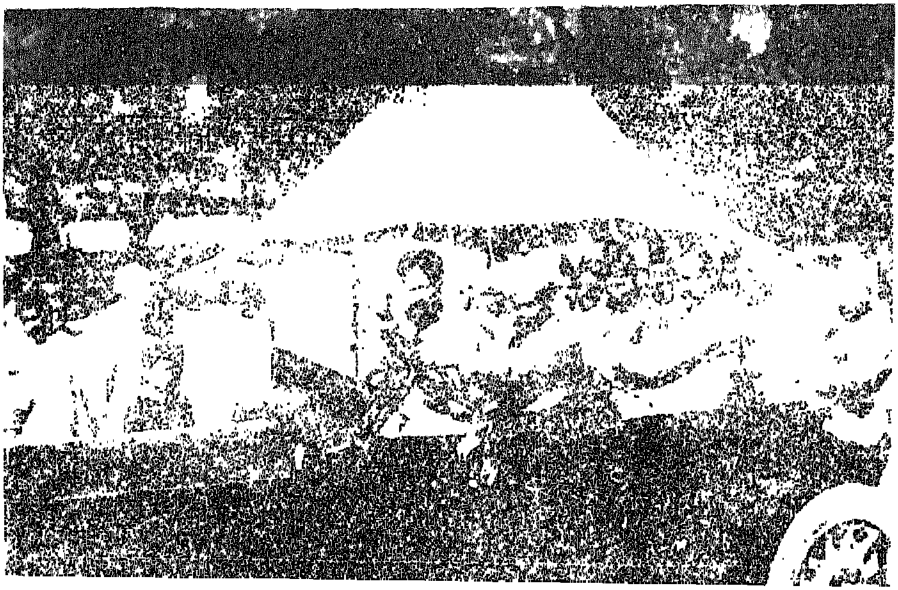
ने भी बर्बरतापूर्ण दमन में वृद्धि कर दी। पंजाब में लोगों को तरह-तरह से सताया गया। उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं। कोड़े लगाए गए और जेलों मे बंद कर दिया गया। दमन का ऐसा वातावरण हो गया कि 1857 ई० के बाद के दिनों की याद आने लगी। किंतु दमन ने लोगों को अधिकाधिक संख्या में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कर दिया। उसने आग में घी का काम किया।

खिलाफत और असहयोग आंदोलन

ब्रिटिश शासन के प्रति बढ़ता हुआ विद्रोह खिलाफत और असहयोग आंदोलनों के रूप में देखने को मिला। प्रथम महायुद्ध में तुर्की ब्रिटेन के विपक्ष में था। लड़ाई में तुर्की की हार हुई। उसे अंग्रेजों के अन्याय का शिकार होना पड़ा। 1919 ई० में भारत में मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली तथा अबुल कलाम आजाद के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार के अन्याय के विरुद्ध आंदोलन चलाया गया। मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली आम जनता में अली बंधु के नाम से प्रसिद्ध थे। वे तीनों नेता लड़ाई के दौरान बंदी बना लिए गए थे। वे लड़ाई के बाद ही जाकर छूट पाए थे। उनके द्वारा

1919 ई० मे अमृतसर में निकले एक जलूस में अली बंधु।

(चित्र—नेहरू स्मारक संग्रहालय व लाइब्रेरी के सौजन्य से)।



चलाया गया आंदोलन पंजाब के दमन-विरोधी आंदोलन और स्वराज्य के आंदोलन के साथ मिल गया।

1920 ई० में गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस ने सरकार के विरुद्ध संघर्ष के लिए नया कार्यक्रम अपनाया। उसे असहयोग आंदोलन कहते हैं। असहयोग आंदोलन के मुख्य लक्ष्य थे : पंजाब और तुर्की के प्रति अन्याय को खत्म करना तथा स्वराज्य प्राप्त करना। आंदोलन में अपनाए गए तरीकों के कारण ही उसे असहयोग आंदोलन कहा गया। आंदोलन कई चरणों में चलाया गया। उसकी शुरुआत भारतीयों द्वारा ब्रिटिश सरकार से प्राप्त उपाधियों को लौटाने के साथ हुई। तुम्हें शायद मालूम है कि अनेक भारतीयो को 'सर', 'रायबहादुर', 'रायसाहब', 'खाँ बहादुर' आदि की उपाधि मिली थी। सुब्रह्मण्य अय्यर और रवींद्र नाथ ठाकुर जैसे लोग अपनी उपाधियाँ पहले ही लौटा चुके थे। अनेक भारतीयों ने असहयोग आंदोलन शुरू होते ही अपनी उपाधियाँ लौटा दीं। भारतीयों के लिए ब्रिटिश सरकार से उपाधियाँ प्राप्त करना और उससे सहयोग करना अब प्रतिष्ठा की बात नहीं रही। विधानमंडलों का बहिष्कार किया गया। अनेक लोगों ने विधानमंडलों के चुनावों में वोट डालने से इंकार कर दिया। हजारों छात्रों और शिक्षकों ने स्कूल-कालेज छोड़ दिए। दिल्ली में जामिया मिलिया और बनारस में काशी विद्यापीठ जैसी शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना हुई। सरकारी नौकरों ने अपनी नौकरियाँ छोड़ीं। वकीलों ने कचहरियों का बहिष्कार किया। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। हड़तालें हुईं और कारोबार ठप्प हो गया।

असहयोग आंदोलन काफी सफल रहा। लाठी-गोली और गिरफ्तारी उसकी लहर को नहीं रोक सकी। 1921 ई० का साल खत्म होने के पहले ही 30,000 लोग जेलों में बंद हो गए। उनमें अनेक प्रमुख नेता शामिल थे। किंतु गांधी जी जेल से बाहर थे और आंदोलन का संचालन कर रहे थे। 1921 ई० में कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष हकीम अजमल खाँ थे। उस अधिवेशन में आंदोलन जारी रखने का निर्णय किया गया। असहयोग आंदोलन का अंतिम चरण शुरू हुआ। लोगों ने सरकारी कर देने से इंकार कर दिया। यह चरण गांधी जी ने बारदोली (गुजरात) में शुरू किया। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण चरण था। लोगों के कर देने से इंकार करने का मतलब था कि वे सरकार की सत्ता को नहीं मानते हैं। उत्पीड़क सरकार से लड़ने का यह शक्तिशाली तरीका था। गांधी जी ने सदा इस बात पर जोर दिया कि आंदोलन शांतिपूर्ण हो। किंतु लोग सदा अपने को नियंत्रित नहीं रख सके। चौरी-चौरा (उत्तर प्रदेश) में लोगों ने गुस्से में आकर

पुलिस-थाने पर हमला कर दिया और उसे जला दिया। कुछ पुलिस वाले मारे गए। इस घटना की खबर सुनते ही गांधी जी ने आंदोलन स्थगित कर दिया। गांधी जी को गिरफ्तार कर जेल में बंद कर दिया गया।

आंदोलन के स्थगन के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन का एक दौर खत्म हो गया। असहयोग आदोलन में देश के लोगों ने बड़ी भारी संख्या में भाग लिया। अब राष्ट्रीय आंदोलन सिर्फ शिक्षित लोगों या शहरी लोगों तक ही सीमित नही रहा। वह गाँवों में भी फैल गया। लोगों ने स्वराज्य प्राप्ति के लिए सरकार की खुलेआम अवहेलना की। आदोलन ने हिंदू-मुसलमान-एकता को मजबूत किया। 'हिंदू-मुस्लिम भाई भाई' एक अत्यंत लोकप्रिय नारा बन गया था।

आंदोलन के बाद कुछ वर्षों तक गांधी जी ने अपने को अस्पृश्यता उन्मूलन जैसे रचनात्मक कार्यों में लगा दिया। राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार में प्रगति हुई। गाँवों को उन्नत बनाने के काम में भी हाथ लगाया गया। वे वर्ष काफी शांतिपूर्ण रहे, किंतु साथ ही आंदोलन के अंतिम दौर के लिए तैयारी जारी रही। गांधी जी द्वारा लोगों को एक सूत्र बद्ध करने तथा आम जनता को आंदोलन में लाने के कारण स्वतंत्रता आंदोलन का मार्ग प्रशस्त हुआ। स्वतंत्रता-आंदोलन का जन-आधार बड़ा हो गया।

अभ्यास

1. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :**
   1 नरम दल और गरम दल में किन बातों को लेकर मतभेद थे ?
   2. बंगाल के विभाजन के बारे में तुम क्या जानते हो ? बंगाल का विभाजन कब और क्यों हुआ ? भारत में राष्ट्रीयता के विकास पर उसका क्या प्रभाव पड़ा ?
   3. स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलनों का क्या मतलब है ? इन आंदोलनों ने भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना कैसे जगाई ?
   4 मॉर्ले-मिंटो सुधार की क्या मुख्य विशेषताएँ थी ? राष्ट्रीय नेताओं ने क्यों उसकी निंदा की ?
   5 प्रथम महायुद्ध के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन के विकास पर प्रकाश डालो।
   6 स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गांधी जी ने किन तरीकों को अपनाने के लिए कहा ?
   7 प्रथम महायुद्ध के तुरंत बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत मे कौन-सी नीति अपनाई ?
   8. खिलाफत और असहयोग आंदोलनों के क्या लक्ष्य थे ? उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कौन-से तरीके अपनाए गए ?

9. क्रांतिकारियों के बारे में तुम क्या जानते हो ? ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उन्होंने कौन-से तरीके अपनाए ?
10 निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो :
(क) लखनऊ समझौता (ख) जालियाँवाला बाग हत्याकांड

2. **नीचे कतिपय कथन दिए गए हैं। जो सही हों उनके आगे (✓) और जो गलत हों उनके आगे (X) निशान लगाओ।**

1. सन 1905 ई० में बंगाल का विभाजन हिंदुओं और मुसलमानों के बीच फूट डालने के लिए किया गया।
2. स्वदेशी आंदोलन की शुरुआत गांधी जी ने सन 1905 ई० में की।
3. सन 1909 ई० के ऐक्ट से भारतीयों की आशाएँ पूरी नही हुई।
4. मुस्लिम लीग की स्थापना सन 1906 ई० मे हुई।
5. होम रूल लीगों की स्थापना प्रथम महायुद्ध के दौरान हुई।
6. पहली बार सन 1910 ई० में कांग्रेस ने स्वराज्य को अपना लक्ष्य बनाया।

3. **नीचे कालम 'क' में कुछ घटनाएँ और आंदोलन तथा 'ख' में उनसे संबद्ध व्यक्तियों के नाम दिए गए हैं। 'ख' में व्यक्तियों के नामों को इस तरह रखो कि 'क' में उल्लिखित घटनाओं और आंदोलनों से उनका सही संबंध स्थापित हो जाए।**

'क'	'ख'
1. मुस्लिम लीग की स्थापना	1. महात्मा गांधी
2. खिलाफत आंदोलन	2. कर्जन
3. जालियाँवाला बाग हत्याकांड	3. दादाभाई नौरोजी
4. असहयोग आंदोलन	4. जनरल डायर
5. बंगाल का विभाजन	5. आगा खाँ
6. सन 1906 ई० का कांग्रेस अधिवेशन	6. अली बंधु

4. **करने को रुचिकर कार्य :**

1 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से संबद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण नेताओं के चित्र एकत्र कर अपने एल्बम में रखो।
2. एक काल-रेखा खीचकर सन 1905 से 1922 ई० के बीच की स्वतंत्रता-आंदोलन की मुख्य घटनाएँ दिखाओ।
3. सन 1905 से 1922 ई० तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षों की सूची तैयार करो।
4. अपने शिक्षक की सहायता से गांधी जी के जीवन के संबंध में सूचनाएँ प्राप्त करो। उनके आधार पर एक लेख तैयार कर अपने सहपाठियों को सुनाओ।

अध्याय 12

स्वतंत्रता-प्राप्ति

असहयोग आंदोलन के समाप्त होने के बाद कुछ दिनों तक लगा कि भारत में शांति हो गई है। उस समय कांग्रेस में दो गुट थे। एक गुट स्वराज्य पार्टी के रूप में था। स्वराज्य पार्टी विधान परिषदों में जाने के पक्ष में थी। तुम्हें याद होगा कि विधान परिषदों का निर्माण मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के कारण हुआ था। चित्तरंजन दास और मोती लाल नेहरू स्वराज्य पार्टी के प्रमुख नेता थे। 1923 ई० में स्वराज्य पार्टी ने केंद्रीय विधान सभा की काफी जगहें प्राप्त कर लीं पर उन्होंने अपने अनुभव से यह समझा कि वे उस समय की स्थिति और सरकारी व्यवस्था में विधान सभा और परिषदों के जरिए कुछ नहीं कर सकते। इसलिए 1926 ई० में उन्होंने केंद्रीय सभा तथा प्रांतीय विधान परिषदों से त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेस का दूसरा गुट गांधी जी द्वारा प्रस्तावित रचनात्मक कार्यक्रम में लग गया था। इस गुट के प्रमुख नेताओं में डा० राजेंद्र प्रसाद, डा० अंसारी और सरदार वल्लभ भाई पटेल थे।

नए नेताओं का उदय

असहयोग आंदोलन के बाद का समय शांतिपूर्ण होने के साथ ही स्वतंत्रता संग्राम के अंतिम दौर के लिए तैयारी का काल था। उसी दौरान राष्ट्रीय आंदोलन के नए नेता सामने आए। वे नेता उम्र में काफी छोटे थे। उन युवा नेताओं के प्रयासों के कारण राष्ट्रीय आंदोलन के लक्ष्य अधिक स्पष्ट हो गए। तुम देख चुके हो कि शुरू में राष्ट्रीय आंदोलन मुख्य रूप से शिक्षित लोगों और मध्यम वर्ग तक ही सीमित था। उसके और इन वर्गों के लक्ष्य बहुत हद तक एक थे। उदाहरण के लिए, दोनों चाहते थे कि उच्च सेवाओं

और सरकार में भारतीयों का अधिकाधिक प्रवेश हो। गांधी जी के नेतृत्व और नए युवा नेताओं के उदय के बाद राष्ट्रीय आंदोलन का जन-आधार बढ़ा। वह आम लोगों के हितों की पूर्ति तथा रक्षा के लिए संघर्ष करने लगा। गांधी जी और नए युवा नेताओं ने कहा कि जनता सार्वभौम है और राष्ट्रीय आंदोलन तभी सफल हो सकता है जब वह आम जनता की आशाओं-आकांक्षाओं को लेकर आगे बढ़े। उन्होंने बतलाया कि भारत की गरीबी और पिछड़ेपन को दूर करने के लिए देश की आजादी आवश्यक है। बिना स्वतंत्रता प्राप्त किए देश आर्थिक प्रगति नहीं कर सकता। उनके अनुसार राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य भारतीय समाज का पुर्ननिर्माण, गरीबी और पिछड़ेपन का उन्मूलन और न्याय तथा समानता पर आधारित समाज की स्थापना था। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए देश की स्वतंत्रता आवश्यक थी। देश की स्वतंत्रता जन-संघर्ष द्वारा ही प्राप्त हो सकती थी।

नए नेताओं का देश के युवकों पर बड़ा प्रभाव था। वे समाजवादी विचारों से प्रभावित थे। देश में समाजवादी विचार फैलने लगे थे। तुम पढ़ चुके हो कि 1917 ई० में रूस में क्रांति हुई। वह संसार की पहली समाजवादी क्रांति थी। क्रांति के बाद रूस में समाजवादी समाज का निर्माण शुरू हुआ। रूसी क्रांति तथा समाजवादी सरकार की स्थापना से भारत काफी प्रभावित हुआ। पुराने रूस के एशियाई भागों में परिवर्त्तन हुए। वे भाग तेजी से विकसित होने लगे और कुछ ही दिनों में काफी विकसित हो गए। भारत के नजदीक होने के कारण रूस के उन क्षेत्रों की प्रगति से भारतीय जनता प्रभावित हुई। क्रांति के बाद रूस को सोवियत संघ कहा जाने लगा। सोवियत संघ की सरकार की विदेश नीति ने साम्राज्यवाद के उन्मूलन की बात की। सोवियत संघ का दृष्टिकोण पश्चिमी देशों से भिन्न था। पश्चिमी देश उपनिवेश बनाकर संसार के अनेक देशों का शोषण कर रहे थे। ऊपर कह चुके हैं कि भारत में समाजवादी विचार फैलने लगे थे। समाजवादी विचारों में संसार के समस्त जनगण की स्वतंत्रता और समानता तथा हर देश में वहाँ की जनता की समानता पर जोर दिया गया था। शोषण और उत्पीड़न का विरोध किया गया था। नए नेताओं ने समाजवादी विचारों का प्रचार किया और उन्हें लोकप्रिय बनाया। सब लोगों की समानता पर आधारित समाज की स्थापना को उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य बनाया। इस प्रकार उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूत बनाया और उसका जन-आधार विस्तृत किया जिससे कि उसे और अधिक जन-सहयोग मिला।



कांग्रेस की एक सभा में भाग लेने के लिए आते हुए जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस। साथ में हैं विजयलक्ष्मी पंडित।
(चित्र—नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं लाइब्रेरी के सौजन्य से)

जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस

नए नेताओं में सबसे प्रमुख जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस थे। जवाहर लाल नेहरू मोती लाल नेहरू के सुपुत्र थे। तुम्हें मालूम है कि मोती लाल नेहरू कांग्रेस के एक प्रमुख नेता थे। जवाहर लाल नेहरू का जन्म 1889 ई० में हुआ था। उनकी शिक्षा इंगलैंड में हुई थी। भारत लौटने पर वे गांधी जी से प्रभावित हुए। वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। असहयोग के दौरान में बंदी बना लिए गए। उन्होंने उत्तर प्रदेश के गांवों का दौरा किया। वे किसानों के संपर्क में आए। उन्होंने उनकी स्थिति और

शोषण को देखा। वे आम जनता की आशाओं-आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए जुट गए। वे उन्हें सुखी बनाना चाहते थे। उनकी दृष्टि में आम जनता को सुखी बनाने का संघर्ष आजादी की लड़ाई का अभिन्न अंग था। उन्होंने भारतीय राजाओं की प्रजा की बुरी हालत पर ध्यान दिया। बहुत थोड़े नेता भारतीय रियासतों की जनता की हालत के बारे में जानते थे। भारतीय रियासतों की जनता की हालत ब्रिटिश भारत की जनता की अपेक्षा बहुत बुरी थी। जवाहर लाल नेहरू भारतीय रियासतों की जनता को शोषण और उत्पीड़न से मुक्त करना चाहते थे। इसके लिए उन्हें कष्ट सहने पड़े। नाभा में अकाली सिक्ख भ्रष्ट महंतों के विरुद्ध संघर्ष चला रहे थे। जवाहर लाल नेहरू उस संघर्ष को देखने गए। उन्हें वहाँ पर अकारण गिरफ्तार कर लिया गया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बिना भारतीय रियासतों की जनता को राष्ट्रीय आंदोलन में लाए, उसे सही रूप में 'राष्ट्रीय' नहीं बनाया जा सकता। भारतीय रियासतें भारत का ही अंग थीं। रियासतों की जनता के हितों को छोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन आगे नहीं बढ़ सकता था। उस समय तक राष्ट्रीय आंदोलन ब्रिटिश भारत तक ही सीमित था। जवाहर लाल नेहरू जैसे नेताओं के प्रयास से रियासतों की जनता के संघर्ष को राष्ट्रीय आंदोलन का अंग बना लिया गया। गांधी जी के बाद जवाहर लाल नेहरू सबसे बड़े राष्ट्रीय नेता बन गए।

सुभाष चंद्र बोस का जन्म 1897 ई० में हुआ था। भारत में अपनी शिक्षा समाप्त कर वे पढ़ने के लिए इंग्लैंड गए। इंग्लैंड से लौटकर वे राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हो गए। उन्होंने असहयोग आंदोलन में भाग लिया और वे चित्तरंजन दास के प्रभाव में आए। 1924 ई० में उन्हें गिरफ्तार कर जेल में बंद कर दिया गया। देश के छात्रों और नौजवानों को संगठित करने में उनका महत्त्वपूर्ण हाथ था। वे उन्हें स्वतंत्रता संग्राम में ले आए। वे राष्ट्रीय आंदोलन के बड़े नेताओं में थे। लोग उन्हें 'नेता जी' कहकर पुकारते थे।

ऊपर कह चुके हैं कि जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस राष्ट्रीय आंदोलन के नए नेताओं में थे। वे ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष तेज करने के पक्षपाती थे। वे सिर्फ 'स्वराज्य' के नारे से संतुष्ट नहीं थे। तुम जानते हो कि कांग्रेस ने 1906 ई० के अधिवेशन में स्वराज्य का नारा दिया था। उसका मतलब 'ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत स्वशासन' था। इस तरह कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण आजादी नहीं था। जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस ने 'पूर्ण स्वतंत्रता' को राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य बनाने पर जोर

दिया। उनका कहना था कि राष्ट्रीय आंदोलन में आम जनता के विशाल बहुमत के शामिल होने पर ही पूर्ण स्वतंत्रता मिल सकती है। उनके प्रभाव में राष्ट्रीय आंदोलन उत्तरोत्तर संघर्षरत बनता गया।

साइमन आयोग

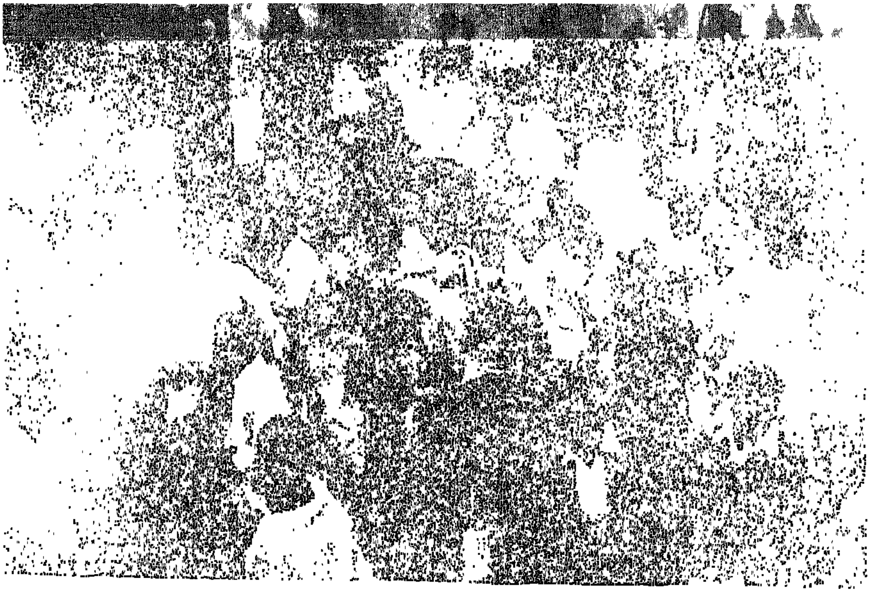
तुम देख चुके हो कि 1922 ई० से देश में कमोबेश शांति हो गई थी। यह शांति 1927 ई० में खत्म हो गई। उसी साल ब्रिटिश सरकार ने एक आयोग की नियुक्ति की। आयोग को कहा गया कि वह बतलाए कि 1919 ई० के ऐक्ट के सुधारों के अंतर्गत भारत की शासन-व्यवस्था में क्या सुधार आवश्यक हैं। साइमन उस आयोग का अध्यक्ष था। इसलिए वह साइमन आयोग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आयोग के सारे सदस्य अंग्रेज थे। कोई भारतीय आयोग का सदस्य नहीं था। भारतीय जनता को इससे गहरा क्षोभ हुआ। उसने आयोग के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया। भारतीय जनता स्वराज्य चाहती थी, किंतु आयोग के गठन से स्पष्ट था कि ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता की माँगों तथा आशाओं की कोई परवाह नहीं करती। 1927 ई० में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन मद्रास में हुआ। वहाँ आयोग का बहिष्कार करने का निर्णय लिया गया। मुस्लिम लीग ने भी आयोग के बहिष्कार का निर्णय लिया।

1928 ई० के शुरू में आयोग भारत पहुँचा। वह जहाँ भी गया वहाँ उसे प्रदर्शन और हड़ताल का सामना करना पड़ा। केंद्रीय विधान सभा ने बहुमत से निर्णय किया कि उसको आयोग से कुछ लेना-देना नहीं है। सारे देश में 'साइमन-वापस जाओ' के नारे सुनाई पड़ने लगे। पुलिस ने दमन शुरू किया। अनेक जगहों पर पुलिस ने लाठियाँ चलाईं और हजारों आदमी पीटे गए। पंजाब के जनप्रिय नेता लाला लाजपत राय पर मार पड़ी। वे 'पंजाब केसरी' (शेरे पंजाब) के नाम से लोकप्रिय थे। मार के कारण उनकी मृत्यु हो गई।

साइमन आयोग के बहिष्कार के समय भारतीय जनता ने एक बार फिर अपनी एकता और दृढ़ता का परिचय दिया। उसने दिखला दिया कि वह आजादी लेकर रहेगी। वह और बड़ी लड़ाई के लिए तैयार हो गई।

पूर्ण स्वतंत्रता की माँग

1929 ई० में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में हुआ। उस समय देश में



1931 ई० मे 26 जनवरी को कलकत्ते में स्वतन्त्रता-दिवस मनाने के लिए एकत्र हुए जन-समुदाय को मारते हुए पुलिस के घुड़सवार। यह फोटो 'न्यूयार्क टाइम्स' के 1 मार्च 1931 के अंक में छपा था। (चित्र—गांधी स्मारक संग्रहालय समिति के सौजन्य से)

एक नया वातावरण था। जवाहर लाल नेहरू अधिवेशन के अध्यक्ष थे। नए नेताओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रहा था। राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में कांग्रेस का यह अधिवेशन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वतंत्रता' की प्राप्ति को अपना लक्ष्य घोषित किया। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाने का निर्णय किया गया। कांग्रेस ने हर वर्ष 26 जनवरी को सारे देश में 'स्वतंत्रता-दिवस' के रूप में मनाने का भी निर्णय लिया। 26 जनवरी, 1930 ई० का दिन सारे देश में स्वतंत्रता-दिवस के रूप में मनाया गया। उस दिन देश के लोगों ने व्रत लिया कि वे ब्रिटिश शासन के सामने अब नहीं झुकेंगे। 26 जनवरी का दिन भारतीय जनता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण बन गया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन

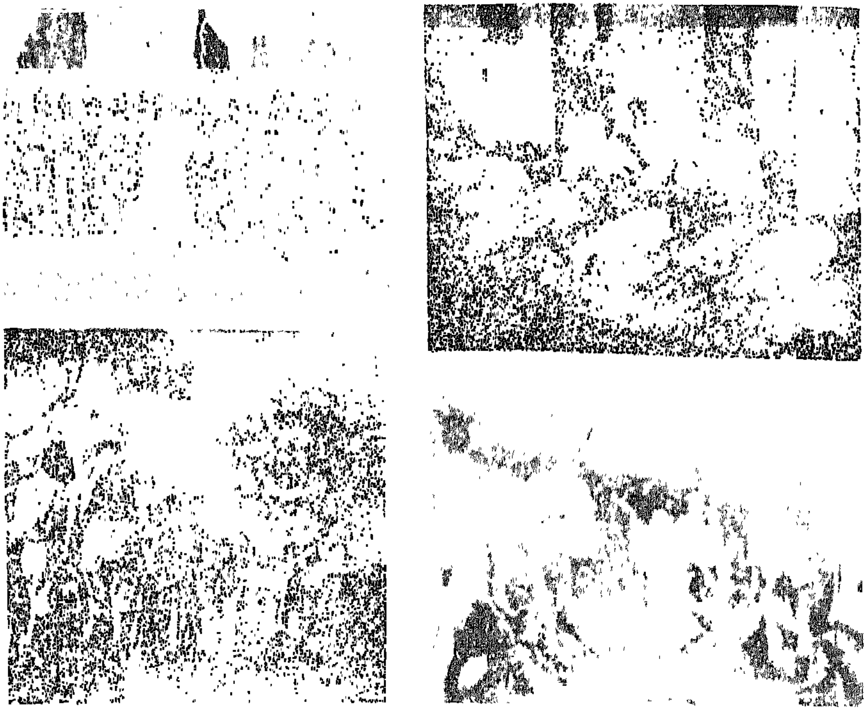
1930 ई० में स्वतंत्रता-दिवस मनाने के बाद सारे देश में गान्धी जी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू हुआ। उसकी शुरुआत गांधी जी की प्रसिद्ध दांडी यात्रा

से हुई। 12 मार्च, 1930 ई० को गांधी जी अहमदाबाद से पैदल ही पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित दांडी नामक गाँव के लिए रवाना हुए। वे वहाँ 5 अप्रैल को पहुँचे। उन्होंने नमक बनाकर सरकारी कानून तोड़ा। उस समय सरकार का नमक बनाने पर एकाधिकार था। दूसरे किसी का नमक बनाना गैरकानूनी था। गांधी जी द्वारा नमक-कानून तोड़ने के बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन सारे देश में फैल गया। देश-भर में प्रदर्शन हुए। हड़तालें हुईं। विदेशी मालों का बहिष्कार हुआ और लोगों ने सरकारी कर देने से इंकार कर दिया। आंदोलन में लाखों लोगों ने भाग लिया। आंदोलन में स्त्रियाँ भी भारी संख्या में शामिल हुईं।



सरहदी गांधी के नाम से विख्यात अब्दुल गफ्फार खाँ जिन्होंने उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत के लोगों में आजादी की चेतना जगाई और आंदोलन के लिए 'खुदाई खिदमतगार' संगठित किए।

पहले की तरह ही सरकार ने आंदोलन के दमन के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी। गांधी जी और जवाहर लाल नेहरू सहित सारे बड़े नेता गिरफ्तार कर लिए गए। सरकार ने लाठी गोली का खुलकर सहारा लिया। हजारों लोगों को अपनी जान गँवानी पड़ी। लगभग 90,000 लोगों को एक साल के अंदर जेल में बंद कर दिया गया। आंदोलन देश के कोने-कोने में फैल गया। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में अब्दुल गफ्फार खाँ आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। वे सरहदी गांधी के नाम से प्रसिद्ध हो गए। आंदोलन



1930 ई० में मद्रास में हुए जन प्रदर्शन पर पुलिस ने जो अत्याचार किए उनको दिखाने वाले कुछ फोटो जो 25 अप्रैल, 1930 ई० के 'हिंदू' अखबार में प्रकाशित हुए थे। (चित्र—नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं लाइब्रेरी के सौजन्य से)

के दौरान वहाँ एक महत्त्वपूर्ण घटना हो गई। पेशावर शहर में गढ़वाली सैनिकों को प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने का आदेश दिया गया। किंतु उन्होंने गोली चलाने से इंकार कर दिया। इससे आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट होता है।

1930 ई० में ब्रिटिश सरकार ने लदन में एक सम्मेलन का आयोजन किया। साइमन आयोग द्वारा सुझाए गए सुधार पर विचार किया गया। कांग्रेस ने सम्मेलन का बहिष्कार किया। इसलिए सम्मेलन विफल रहा। 1931 ई० के शुरू में वायसराय इरविन ने दूसरे गोलमेज सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए गांधी जी को तैयार किया। गांधी जी और इरविन के बीच समझौता हुआ। उसके अनुसार सरकार उन सारे राजनीतिक बंदियों को रिहा करने के लिए तैयार हो गई जिनके विरुद्ध हिंसात्मक

कार्रवाई करने का अभियोग नहीं था। समझौते के अनुसार कांग्रेस को सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित करना था। कई राष्ट्रीय नेता गांधी-इरविन समझौते से दुखी थे। किंतु कराची अधिवेशन में कांग्रेस ने समझौते को अपनी स्वीकृति दे दी, कांग्रेस द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए तैयार हो गई। गांधी जी कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में गोलमेज सम्मेलन में शामिल हुए। सम्मेलन सितंबर, 1931 ई० में शुरू हुआ।

कांग्रेस ने कराची अधिवेशन में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया था। वह 'मौलिक अधिकारों और आर्थिक नीति का प्रस्ताव' था। उसमें देश की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं पर राष्ट्रीय आंदोलन की नीति स्पष्ट की गई थी। प्रस्ताव में उन मौलिक अधिकारों का जिक्र था जो देश के नागरिकों को कांग्रेस धर्म और जाति का भेदभाव किए बिना देना चाहती थी। प्रस्ताव कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों के राष्ट्रीयकरण, मजदूरों और किसानों के कल्याण, भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन देने आदि के पक्ष में था। इस तरह प्रस्ताव ने भारत में कल्याण राज्य की स्थापना का लक्ष्य सामने रखा।

कोई सहमति न होने के कारण गोलमेज सम्मेलन विफल हो गया। गांधी जी भारत लौट आए और सविनय अवज्ञा आंदोलन फिर से शुरू कर दिया गया। गोलमेज सम्मेलन के दौरान भी सरकारी दमन जारी था। सम्मेलन की विफलता के बाद दमन तेज हो गया। गांधी जी और अन्य नेता गिरफ्तार कर लिए गए। एक साल के अंदर ही करीब 1 लाख 20 हजार लोगों को जेल में बंद कर दिया गया। 1934 ई० में सविनय अवज्ञा आंदोलन समाप्त कर दिया गया। उसी साल कांग्रेस ने एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास कर बालिग मताधिकार के आधार पर संविधान सभा बुलाने की माँग की। कांग्रेस ने जोर देकर कहा कि ऐसी संविधान सभा ही भारत का संविधान बना सकती है। उस तरह कांग्रेस ने इस बात पर बल दिया कि सिर्फ भारतीय जनता ही सरकार के रूप के बारे में निर्णय कर सकती है।

आतंकवादी-क्रांतिकारी

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में आतंकवादी क्रांतिकारी फिर सक्रिय हो गए। तुम जानते हो कि उनका विश्वास था कि अत्याचारी और उत्पीड़क अंग्रेज अफसरों के विरुद्ध आतंकवादी कार्यों के द्वारा वे देश को आजाद कर सकते हैं। वे देश की स्वतंत्रता के लिए सदा जान देने के लिए तैयार रहते थे। देशवासियों के सामने वे बहादुरी और देशभक्ति के आदर्श थे। जैसा कि तुमने महसूस किया होगा, व्यक्तिगत आतंकवादी



जेल में पुलिस के कब्जे में बंद क्रांतिकारी भगतसिंह।
(चित्र—नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं लाइब्रेरी के सौजन्य से)

कार्यों से किसी शक्तिशाली साम्राज्य को खत्म नहीं किया जा सकता। सारी जनता के एक साथ संघर्ष करने से ही उसे खत्म किया जा सकता है। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में जब भारत में जन-आंदोलन काफी शक्तिशाली और व्यापक हो गया, तब आतंकवादी कार्रवाइयाँ कम हो गईं। असहयोग आंदोलन समाप्त होने के बाद आतंकवादी फिर सक्रिय हो गए।

1925 ई० में अनेक क्रांतिकारियों को लंबी सजाएँ दी गईं, चार क्रांतिकारियों को फाँसी दे दी गई। फाँसी चढ़ने वालों में प्रसिद्ध क्रांतिकारी अशफाकउल्ला और रामप्रसाद बिस्मिल थे। 1928 ई० में कुछ क्रांतिकारियों ने चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में एक संगठन बनाया। इस संगठन के अन्य सदस्यों में भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव और बटुकेश्वर दत्त थे। तुमने उनके बारे में जरूर सुना होगा। तुम लाला लाजपत राय की मृत्यु के बारे में पढ़ चुके हो। उनकी मृत्यु पुलिस द्वारा लाठी से पीटे जाने के कारण

हुई। इन क्रांतिकारियों ने लाहौर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट की हत्या कर लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लिया। सबसे बड़ा नाटकीय कार्य 1929 ई० में हुआ। भगत सिह और बटुकेश्वर दत्त ने केंद्रीय विधान सभा में बम फेंका। किंतु न कोई घायल हुआ और न किसी को चोट आई क्योंकि बम किसी को मारने के उद्देश्य से नही फेंका गया था। वे सिर्फ विरोध प्रकट करना चाहते थे। उस समय एक जनविरोधी विधेयक पर चर्चा हो रही थी। भगत सिह और दत्त ने भागने की कोई कोशिश नही की। वे खड़े होकर 'क्रांति अमर रहे' का नारा लगाते रहे। वे गिरफ्तार कर लिए गए। चंद्रशेखर आजाद को छोड़कर संगठन के अन्य सदस्य पकड़ लिए गए। जेल में उनके साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया गया। उनमें से एक क्रांतिकारी जतीन दास की मृत्यु जेल में दुर्व्यवहार के विरुद्ध 64 दिनों की भूख-हड़ताल के बाद हो गई। भगत सिह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी की सजा दी गई। उनको रिहा करने के लिए जनता की ओर से जबर्दस्त माँग हुई, किंतु सरकार ने जनता की आवाज की उपेक्षा कर उन्हें 1931 ई० में फाँसी पर लटका दिया। चंद्रशेखर आजाद पकड़े नहीं जा सके। पुलिस के साथ भिड़ंत में उनकी मृत्यु इलाहाबाद में हो गई।

1930 ई० में बंगाल के क्रांतिकारियों ने सूर्य सेन के नेतृत्व में चटगाँव के शस्त्रागार पर आक्रमण किया। बाद में सूर्य सेन को गिरफ्तार कर फाँसी दे दी गई। क्रांतिकारियों ने अपनी आतंकवादी कार्रवाइयों से सरकार को त्रस्त कर दिया।

क्रांतिकारियों ने अपने साहसिक कार्यों और बलिदान से देशवासियों को विदेशी शासन खत्म करने के लिए प्रोत्साहित किया। अधिकतर लोग अहिंसात्मक तरीकों से ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष करते रहे, किंतु क्रांतिकारी उनके लिए प्रेरणा स्रोत बने रहे।

समाजवादी विचारों का प्रचार

औद्योगिक क्रांति के बाद यूरोप में समाजवादी विचारों तथा आंदोलनों के प्रचार-प्रसार के बारे में तुम पढ़ चुके हो। भारत में भी बीसवी शताब्दी के दौरान समाजवादी विचारों और आंदोलनों का उदय होने लगा। तुम राष्ट्रीय आंदोलन के नए नेताओं पर रूसी क्रांति के प्रभाव के बारे में पढ़ चुके हो। मजदूरों और किसानों ने अपने अधिकारों की रक्षा और हितों की पूर्ति के लिए संगठित होना शुरू कर दिया। मजदूर संघों और किसान सभाओं की स्थापना हुई। 1920 ई० में एन० एम० जोशी के नेतृत्व में अखिल

भारतीय मजदूर संघ (आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस) का जन्म हुआ। बहुत सालों तक यही एक मात्र अखिल भारतीय मजदूर संगठन था। मजदूर संघों का उद्देश्य सिर्फ अपने हितों के लिए काम करना ही नहीं था, बल्कि वे देश की आजादी की लड़ाई में भी शामिल हो गए। जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस जैसे नए नेताओं ने मजदूरों को संगठित करने और उन्हें आजादी की लड़ाई में लाने में बड़ा काम किया। 1929 ई० में तीन अंग्रेजों सहित अनेक मजदूर नेताओं पर मुकद्दमा चलाया गया। तीनों अंग्रेजों ने मजदूरों को संगठित करने में सहायता की थी। कई राष्ट्रीय नेताओं ने मजदूर नेताओं के मुकद्दमे की पैरवी की।

किसान सभाएँ भूमि-सुधार के लिए संघर्ष करती रहीं। तुम्हें मालूम है कि अनेक किसानों का अपनी जोत की जमीन पर स्वामित्व नहीं था। वे दूसरों से बटाई या किराए पर जमीन लेकर खेती करते थे, या खेतिहर मजदूर के रूप में काम करते थे। किसानों ने जमींदारी, जागीरदारी तथा ताल्लुकेदारी व्यवस्था खत्म करने तथा वास्तविक जोतदारों को जमीन देने की माँग की। स्वतंत्रता संग्राम में किसान किसी से पीछे नहीं थे। वास्तव में उन्हीं के शामिल होने से राष्ट्रीय आंदोलन जन-आंदोलन के रूप में बदल गया। 1936 ई० में किसानों ने भी अपना अखिल भारतीय संगठन बनाया।

मजदूर और किसान आंदोलन के उदय और समाजवादी विचारों के प्रचार के बाद राष्ट्रीय आंदोलन ने मजदूरों और किसानों की माँगों को अपना लिया। उदाहरण के लिए, कांग्रेस ने अपने कराची अधिवेशन में मजदूरों के लिए आठ घंटे के कार्य-दिवस की माँग की। इसी तरह जमीन के समान वितरण की भी माँग की गई।

भारत में समाजवादी विचारों के प्रचार में जवाहर लाल नेहरू का बड़ा हाथ रहा। उन्होंने स्वतंत्रता की लड़ाई को मजदूरों के सुखी जीवन के लिए संघर्ष से जोड़ने पर बल दिया। वे 1936 ई० में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने भाषण में जोर देकर कहा कि कांग्रेस समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित कर दे। समाजवादी विचारों के बढ़ते प्रभाव के कारण ही कांग्रेस ने समता और न्याय के आधार पर भारतीय समाज के पुनर्निर्माण का लक्ष्य अपना लिया। इस तरह एक न्यायोचित समाज-व्यवस्था की स्थापना कांग्रेस का लक्ष्य बन गई। गांधी जी का लक्ष्य उन्हीं के शब्दों में, 'हर आदमी की आँखों से आँसू पोंछना था'।

समाजवादी विचारों के प्रचार और प्रभाव के कारण भारत में ऐसे दलों की स्थापना हुई जिनका लक्ष्य समाजवाद की स्थापना था। उन दलों में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी

और कांग्रेस समाजवादी दल प्रमुख थे। वे दल आमतौर पर कांग्रेस के अंदर ही काम करते थे और कांग्रेस की नीतियों को समाज के कमजोर वर्गों के हितों में मोड़ने के लिए प्रयत्नशील थे। उनको मुख्य रूप से मजदूरों और किसानों का समर्थन प्राप्त था। वे किसानों और मजदूरों को उनकी आर्थिक माँगों की पूर्ति के लिए संगठित करते थे तथा उन्हें स्वतंत्रता संग्राम में लाने के लिए प्रयत्नशील थे। समाजवादी विचारों के प्रमुख उन्नायक आचार्य नरेंद्रदेव थे।

देशी रियासतों के विरुद्ध आंदोलन

तुम आठवें अध्याय में पढ़ चुके हो कि 1858 ई० के बाद भारत में लगभग 562 देशी रियासतें थीं। ब्रिटिश सरकार ने उनको बनाए रखने की नीति अपनाई। देशी रियासतों के बने रहने से ब्रिटिश शासन सुदृढ़ हो गया। इन रियासतों को कोई वास्तविक स्वतंत्रता नहीं प्राप्त थी। अधिकतर राज्यों में लोगों की हालत ब्रिटिश भारत की तुलना में खराब थी। अनेक देशी राजे रियासतों को अपनी व्यक्तिगत संपत्ति समझते थे। वे भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते थे जब कि प्रजा की गरीबी हटाने और उसकी हालत सुधारने पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। देशी रियासतों के लोगों को कोई नागरिक अधिकार नहीं प्राप्त थे। कई देशी राजे अपनी व्यक्तिगत इच्छा और सनक को ही कानून मानते थे। अधिकांश राज्यों में कई अमानवीय प्रथाएँ प्रचलित थीं। बेगार आम बात थी। बिना मजदूरी दिए लोगों से काम कराया जाता था। राष्ट्रीय आंदोलन के उदय से देशी रियासतों की जनता में भी जागृति आई। उसने जनतांत्रिक अधिकारों और जनतांत्रिक शासन-व्यवस्था की माँग की। उसने राजाओं की फिजूलखर्ची और भोग-विलास की निंदा की।

देशी रियासतों में जनता ने अपने संगठन बनाए। बाद में उनका संगठन अखिल भारतीय प्रजा मंडल बना। देशी राज्यों की जनता को संगठित करने में जवाहर लाल नेहरू का जबर्दस्त हाथ था। धीरे-धीरे देशी राज्यों की जनता का आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन का अंग हो गया। कई देशी रियासतों में आंदोलनकारियों के साथ बड़ा बर्बरता-पूर्ण व्यवहार किया गया। राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने महसूस किया कि देशी रियासतों की जनता की आजादी के बिना भारत की स्वतंत्रता पूर्ण नहीं होगी। राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य सारे देश को स्वतंत्र करना और एकता के सूत्र में बाँधना था। पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव के बाद कांग्रेस ने घोषणा की कि देशी राज्य भारतीय राष्ट्र के अभिन्न अंग हैं।

इसलिए देशी राज्यों के लोगों को देश के अन्य लोगों के समान ही राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त होंगे। इस तरह देशी राज्यों की मुक्ति का आंदोलन राष्ट्रीय स्वतंत्रता और एकता के आंदोलन का अंग बन गया।

1935 ई० का ऐक्ट और राष्ट्रीय आंदोलन

तुम पढ़ चुके हो कि साइमन आयोग के बाद सरकार के ढाँचे पर विचार करने के लिए इंग्लैंड में सम्मेलन हुए। कांग्रेस ने एक सम्मेलन में भाग लिया। तुम जानते हो कि कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया था कि सरकारी ढाँचे और संविधान के रूप के संबंध में सिर्फ भारतीय जनता ही निर्णय कर सकती है। उसने बालिग मताधिकार के आधार पर चुनी हुई संविधान सभा बुलाने की माँग की थी।

ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की माँग पर कोई ध्यान नहीं दिया। अगस्त 1935 ई० में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट की घोषणा की गई। उसके अनुसार देशी राज्यों सहित भारत को एक संघ के रूप में संगठित करना था। देशी राज्यों से भी केंद्रीय विधान मंडल के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव किया जाना था। किंतु संघ संबंधी धारा को लागू नहीं किया गया।

जहाँ तक प्रांतीय प्रशासन का प्रश्न था, 1935 ई० का कानून पिछले कानूनों की तुलना में अच्छा था। उसने "प्रांतीय स्वायत्तता" लागू की। प्रांतीय सरकार के मंत्री विधान सभा के प्रति उत्तरदायी हो गए। विधान सभा के अधिकारों को बढ़ा दिया गया। किंतु पुलिस जैसे कई मामलों में गवर्नर के पास ही अधिकार रहे। मताधिकार भी सीमित था। सिर्फ 14 प्रतिशत जनसंख्या को ही मत देने का अधिकार था। गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की नियुक्ति का अधिकार ब्रिटिश सरकार के हाथों में रहा। वे विधान सभाओं के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट राष्ट्रीय आंदोलन की आशा के अनुकूल नहीं था।

1936 ई० में कांग्रेस ने लखनऊ अधिवेशन में 1935 ई० के ऐक्ट को ठुकरा दिया। उसने संविधान सभा गठित करने की माँग की। किंतु उसने 1937 ई० में होने वाले चुनावों में भाग लेने का निर्णय किया।

तुम्हें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के 1916 ई० के लखनऊ समझौते की याद होगी। समझौते के बाद काफी दिनों तक दोनों दल एक साथ मिलकर काम करते रहे। किंतु असहयोग आंदोलन खत्म होने के बाद वे फिर अलग हो गए। मुस्लिम लीग ने भारतीय

मुसलमानों का प्रतिनिधि होने का दावा किया। तुम्हें मालूम है कि कांग्रेस बिना धार्मिक भेदभाव के सारी भारतीय जनता का संगठन थी। कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में अनेक मुसलमान थे। तुम पढ़ चुके हो कि मॉर्ले-मिंटो सुधारों के अनुसार मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन की बात की गई थी। राष्ट्रीय नेताओं ने उसका विरोध किया था। उनके अनुसार वह भारतीयों में धर्म के आधार पर फूट डालने की ब्रिटिश चाल थी। किंतु 1919 ई० के ऐक्ट में मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन की व्यवस्था की गई। यही चीज 1935 ई० के ऐक्ट में भी रखी गई। इस तरह भारतीय जनता में फूट डालकर राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर बनाने मे अंग्रेज शासक कुछ हद तक सफल हो गए। किंतु उन्हे अपनी आशा के अनुकूल सफलता नही मिली। यह 1937 ई० के चुनावों से स्पष्ट हो गया।

कांग्रेस हर जगह विजयी रही। छः प्रांतो मे उसे पूर्ण बहुमत मिला। वह सबसे बड़ी पार्टी के रूप में सामने आई। मुस्लिम लीग का सारे मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का दावा गलत निकला। उसे मुसलमानो के लिए सुरक्षित स्थानो में से एक-चौथाई से भी कम स्थान मिले। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत मे मुस्लिम लीग का कोई प्रभाव मालूम नहीं पड़ा। तुम जानते हो कि वहाँ अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व मे राष्ट्रीय आंदोलन काफी मजबूत हो गया था। चुनाव के परिणामों से स्पष्ट था कि धर्म का सहारा लेने वाले दलों का कोई असर नही है।

कांग्रेस ने 11 प्रांतो में से 7 में मंत्रिमंडल बनाए। दो अन्य प्रांतो में अन्य दलों की सहायता से उसने सरकार बनाई। उन मंत्रिमंडलो ने कुछ अच्छे काम किए। शिक्षा का प्रसार हुआ तथा किसानों की हालत मे सुधार किया गया। उन्होने राजनीतिक बंदियों को छोड दिया। समाचारपत्रो पर से प्रतिबंध हटा लिया गया। ऐक्ट के अनुसार उनके अधिकार काफी कम थे, इसलिए वे बहुत कुछ नही कर सके।

जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस जैसे कई नेता कांग्रेस के मंत्रिमंडल बनाने के विरोधी थे। वे पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष मे थे और उसके लिए आंदोलन चलाना चाहते थे। किंतु कई उदारवादी नेता तत्काल आंदोलन चलाने के पक्ष में नही थे। 1939 ई० में सुभाष चंद्र बोस एक उदारवादी नेता को हराकर कांग्रेस के अध्यक्ष बन गए। किंतु गांधी जी के साथ मतभेद बढ़ जाने के कारण उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने अपना अलग दल फॉरवर्ड ब्लॉक बनाया। द्वितीय महायुद्ध के दौरान उन्होंने भारत से बाहर आजाद हिंद फौज का निर्माण किया और ब्रिटिश सरकार से युद्ध किया।

सांप्रदायिक दल और उनकी भूमिका

तुम पढ़ चुके हो कि ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता में फूट डालने की लगातार कोशिश की। उसने सांप्रदायिकता को प्रोत्साहन दिया। परिणामस्वरूप मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में सांप्रदायिकता मजबूत होने लगी। कुछ हिंदुओं ने भी अपने सांप्रदायिक संगठन बनाए, किंतु वे प्रभावकारी नहीं हुए। हिंदुओं और मुसलमानों में धर्म-परिवर्त्तन आंदोलन भी शुरू हुए। धर्म के नाम पर दंगे हुए जिनमें अनेक निर्दोष लोगों को जानें गँवानी पड़ीं।

धर्म पर आधारित दलों की स्वतंत्रता-आंदोलन में हानिकारक भूमिकाएँ थीं। वे अपने धर्म के लोगों के हितों की रक्षा करने की बात करते थे, किंतु वे वास्तव में ब्रिटिश शासकों के पिट्ठू थे। जब स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान हजारों लोग जेल जाते थे तब वे अपने को उनसे अलग रखते थे। कभी-कभी वे राष्ट्रीय आंदोलन के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार को सहयोग भी देते थे। उदाहरण के लिए, साइमन आयोग के विरुद्ध आंदोलन के समय उनके कुछ नेताओं ने आयोग का स्वागत किया। गोलमेज सम्मेलन में वे छोटी-छोटी बातों को लेकर आपस में लड़ते और ब्रिटिश सरकार से सौदाबाजी करते रहे। सांप्रदायिक दल सामाजिक सुधारों के भी विरुद्ध थे। उनके अनुसार सारी भारतीय जनता के हित समान नहीं थे। इसलिए संघर्ष करने के बदले वे ब्रिटिश सरकार से अपने धर्म वालों के लिए छोटी-मोटी रियायतें लेने में लगे रहे। वे अपने संप्रदाय के आम लोगों के हितों के लिए नहीं, बल्कि उच्च वर्ग के स्वार्थों के लिए सक्रिय थे। अपने संप्रदाय के आम लोगों की गरीबी हटाने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी।

सांप्रदायिक दलों ने खतरनाक स्थिति तब पैदा की जब उन्होंने कहा कि सारी भारतीय जनता एक राष्ट्र का अंग नहीं है। उन्होंने कहा कि भारत में दो राष्ट्र हैं—हिंदू और मुसलमान। तुम 'प्राचीन भारत' और 'मध्यकालीन भारत' में पढ़ चुके हो कि भारतीय जनता ने कई शताब्दियों में एक समान संस्कृति विकसित की। विविधता के कारण ही भारतीय संस्कृति समृद्ध हुई। भारतीय जनगण में विभिन्न धर्मों, भाषाओं और रीति-रिवाजों वाले लोगों के शामिल होने पर भी हितों की समानता रही है। भारतीय संस्कृति की समृद्धि पर लोग गर्व करते रहे हैं। राष्ट्रीय आंदोलन ने भारतीय जनता की एकता को मजबूत बनाया, किंतु सांप्रदायिक दलों ने उनमें फूट डालने की जी-तोड़ कोशिश की।

'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' भारतीय जनता के संपूर्ण इतिहास का निषेध था। उससे भारतीय

जनता पर बुरा प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे मुस्लिम लीग ने उसको अपना लिया। मुस्लिम लीग ने कहा कि मुसलमान अल्पमत में हैं इसलिए उनके हित शेष जनसंख्या के साथ रहने पर सुरक्षित नहीं हैं। मुहम्मद अली जिन्ना मुस्लिम लीग के सबसे बड़े नेता हो गए। शुरू में वे एक राष्ट्रीय नेता थे। उनके नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के लिए अलग राज्य की बात सोचनी शुरू कर दी।

1940 ई० में मुस्लिम लीग ने लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान के निर्माण की माँग की। बहुत बड़ी संख्या में मुसलमानों ने पाकिस्तान की माँग का विरोध किया। अन्य भारतीयों के साथ मिलकर मुसलमान शुरू से ही स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेते आ रहे थे। अन्य लोगों की तरह उन्होंने भी तरह-तरह की यातनाएँ सही थीं। वे बहुत बड़ी संख्या मे कांग्रेस में शामिल थे। मजदूरों और किसानों के संगठनों ने समान आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक लक्ष्यों के लिए सब धर्मों के लोगों को एकजुट किया था। राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख नेताओं में कई मुसलमान थे। मुसलमानों के अनेक धार्मिक नेता भी मुस्लिम लीग तथा अलग राज्य की माँग के विरुद्ध थे। उनके अनुसार मुसलमानों का भाग्य शेष भारतीयों के भाग्य के साथ बँधा था। तात्कालिक कार्य विदेशी शासन को खत्म करना था। मुसलमानों, हिंदुओं, सिक्खों, ईसाइयों तथा अन्य सबके सामने समान समस्याएँ थीं। वे समस्याएँ थीं—गरीबी; पिछड़ापन तथा विषमता। उनका समाधान देश के आजाद तथा अखंड रहने पर ही हो सकता था। आजादी की लड़ाई में आम जनता ने इस बात को महसूस किया था। इसीलिए मुस्लिम लीग या हिंदू सांप्रदायिक दलों का जनता पर कोई असर नहीं था। उदाहरण के लिए, उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत में मुसलमान काफी बड़े बहुमत में थे, किंतु उन पर मुस्लिम लीग का कोई विशेष प्रभाव नहीं था।

इसके बावजूद सांप्रदायिक दल अपने को कुछ सुदृढ़ कर सके। कुछ क्षेत्रों में सांप्रदायिक घृणा का वातावरण तैयार हो गया और सांप्रदायिक दलों ने दंगे भड़काकर स्थिति काफी खराब बना दी। दो राष्ट्रों के सिद्धांत तथा पाकिस्तान की माँग के खतरनाक नतीजे निकले।

राष्ट्रीय आंदोलन और विश्व

तुम देख चुके हो कि राष्ट्रीय आंदोलन विश्व के अन्य भागों की घटनाओं से प्रभावित हुआ। अन्य देशों के अलावा इंग्लैंड में भी लोग भारतीय स्वतंत्रता का समर्थन कर रहे

थे। विश्व के कई देशों में भारतीय लोगों ने जनता के समर्थन से भारत की स्वतंत्रता के लिए संगठन बनाए। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों के दौरान दादा भाई नौरोजी ने प्रबुद्ध अंग्रेजों की सहायता से इंग्लैंड में एक संगठन बनाया। उनका उद्देश्य भारतीय जनता की माँगों के लिए जनमत तैयार करना था। बाद मे इंग्लैड, अमरीका और कई अन्य देशो में 'इंडिया लीग' की स्थापना हुई। कई मजदूर और समाजवादी नेता और दार्शनिक इंग्लैड में 'इंडिया लीग' से संबद्ध थे। कई मजदूर तथा समाजवादी नेता मजदूर और समाजवादी आंदोलन को संगठित करने के लिए भारत आए।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की खास विशेषता यह थी कि आजादी की लडाई के दौरान ब्रिटेन सहित संसार के अन्य किसी देश के प्रति घृणा की भावना नही उत्पन्न हुई। इसका सबसे अधिक श्रेय गांधी जी को था। गांधी जी ने प्रेम और विश्व-बंधुत्व की शिक्षा दी तथा घृणा पर आधारित कार्यों की निंदा की। भारतीय जनता को पूरा पता था कि भारत में ब्रिटिश शासकों की नीतियो से इंग्लैड की आम जनता का कोई संबंध नहीं है। भारतीय जनता ब्रिटिश शासको और ब्रिटिश जनता मे भेद करती थी। भारतीय जनता का इंग्लैंड के आम लोगों से कोई झगडा नही था। वह भारत की आजादी के लिए उनका समर्थन प्राप्त करने की कोशिश करती रही। राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं को मालूम था कि संसार के सब देशों की आम जनता के हित समान हैं तथा भारतीय स्वतंत्रता की लडाई विश्व के अन्य भागों में स्वतंत्रता, जनतंत्र और सामाजिक समानता के लिए चल रहे संघर्ष का भाग है। इसलिए उन्होने विश्व के अन्य भागो की घटनाओ के ऊपर ध्यान दिया तथा हर जगह जन-संघर्ष का समर्थन किया। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन ने अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया।

अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण के विकास में जवाहर लाल नेहरू का प्रमुख हाथ रहा। अन्य देशों की जनता के जनतांत्रिक संघर्षों तथा स्वतंत्रता-संग्रामों के प्रति उनकी सहानुभूति थी। वे उनको अपना समर्थन देते थे। उन्होंने भारतीय जनता को विश्व की घटनाओं के प्रति जागृत किया और अन्य देशों के जन-संघर्षों से संपर्क स्थापित किए। उन्होंने कहा कि स्वतंत्रता खंडित नही की जा सकती। दूसरे शब्दो में, किसी भी देश की स्वतंत्रता तब तक सुरक्षित नही है जब तक ससार के सब देश आजाद न हों। इसी तरह जनतंत्र, समृद्धि और शांति अविभाज्य हैं। 1927 ई० में उत्पीड़ित जनगण का सम्मेलन ब्रूसेल्स (बेल्जियम) में हुआ। अलबर्ट आइंस्टीन और रोम्याँ रोलाँ जैसे लोगो ने सम्मेलन को बुलाने के लिए प्रयत्न किया था। जवाहर लाल नेहरू उस सम्मेलन में शामिल हुए।

फासिज्म के विरुद्ध लड़नेवाले स्पेन-वासियो के साथ जवाहर लाल नेहरू।
(चित्र—नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं लाइब्रेरी के सौजन्य से)



साम्राज्यवाद विरोधी लीग नामक अंतर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य हर जगह साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकना था। कांग्रेस उससे संबद्ध थी।

तुम देख चुके हो कि जापान एक साम्राज्यवादी शक्ति बन गया था। 1931 ई० में उसने चीन पर हमला किया। भारत के लोगो ने चीनी जनता का समर्थन किया। भारतीय डाक्टर चीन गए और उन्होंने वहाँ लोगों की सेवा की।

यूरोप मे बीसवी शताब्दी के चौथे दशक में फासिज्म काफी मजबूत हो गया। इटली और जर्मन में फासिस्ट सरकारें बनी। उन सरकारों ने अपनी ही जनता के खिलाफ आतंकवादी कार्रवाइयाँ की तथा जनता की मूलभूत स्वतंत्रता और अधिकार खत्म कर दिए। उन्होंने अन्य जनगण के विरुद्ध घृणा का प्रचार किया और कहा कि उन्हे उन पर शासन करने का अधिकार है। हिटलर जर्मनी में सत्तारूढ़ था। उसने यहूदियों का समूल नाश शुरू किया। अन्य देशों के खिलाफ लड़ाई की योजना बनाने में जापान ने जर्मनी और इटली का साथ दिया। स्पेन के फासिस्टों ने वहाँ की जनतांत्रिक सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इटली और जर्मनी ने फासिस्टों की डटकर सहायता की

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन फासिज्म के खतरे को समझता था। उसने फासिज्म के विरुद्ध संघर्ष करने वाले स्पेनवासियों का समर्थन किया। भारत सहित कई देशों के लोग स्पेनवासियों के साथ मिलकर फासिज्म के विरुद्ध लड़ने के लिए गए। जवाहर लाल नेहरू स्पेन गए और उन्होंने फासिज्म के विरुद्ध लड़ने वाले स्पेनवासियों के प्रति भारतीय जनता की सहानुभूति व्यक्त की और उन्हें अपना समर्थन दिया।

पश्चिम के साम्राज्यवादी देशों ने फासिस्ट देशों को आक्रामक नीतियाँ अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया। उनकी आशा थी कि फासिस्टवादी देश रूस को बर्बाद कर अन्य देशों में समाजवादी और कम्युनिस्ट आंदोलनों को खत्म कर देंगे। इटली ने पूर्वी अफ्रीकी देश अबीसीनिया पर हमला शुरू किया। अन्य पश्चिमी देशों के गुप्त सहयोग से हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा जमा लिया। जवाहर लाल नेहरू तथा राष्ट्रीय आंदोलन ने पश्चिमी देशों के दृष्टिकोण की निंदा की। नेहरू ने इटली के तानाशाह मुसोलिनी से मिलने से इंकार कर दिया। मुसोलिनी ने उनसे मिलने की इच्छा व्यक्त की थी। हर देश की जनता की आजादी की लड़ाई के प्रति भारतीय जनता की सहानुभूति थी। स्वतंत्र होने के बाद अन्य देशों की आजादी की लड़ाई का समर्थन करना भारतीय विदेश नीति का अंग बन गया।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन

फासिस्ट देशों की आक्रामक और विस्तारवादी नीतियों के कारण द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हुआ। सितंबर, 1939 ई० में हिटलर की सेना ने पोलैंड पर हमला कर उसकी शुरुआत की। हिटलर तब तक आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा जमा चुका था। ब्रिटेन और फ्रांस ने चेकोस्लोवाकिया के प्रश्न पर जर्मनी के प्रति तुष्टिकरण की नीति अपनाई। वे स्पेन की जनवादी सरकार की सहायता के लिए भी नहीं आए। फासिस्ट आक्रमण को रोकने के लिए उन्होंने सोवियत संघ से संधि करने से इंकार कर दिया। उनको आशा थी कि फासिस्ट देश रूस पर आक्रमण कर उसे बर्बाद कर देंगे। किंतु पोलैंड पर हमला होते ही वे भी लड़ाई में उलझ गए। इस तरह मानव-इतिहास का सबसे व्यापक और बर्बर युद्ध शुरू हुआ।

लड़ाई शुरू होते ही ब्रिटिश सरकार ने बिना भारतीय जनता से पूछे भारत को लड़ाई में फँसा दिया। भारतीय जनता को फासिज्म के खतरे के बारे में पता था। उसने फासिज्म के आक्रमण के शिकार देशों को अपना समर्थन दिया था। किंतु पश्चिमी देशों ने फासिस्ट हमलों की ओर से मुँह मोड़ लिया था। कम्युनिज्म के प्रति उनका घृणा-भाव उनके इस दृष्टिकोण के लिए उत्तरदायी था। वे अपनी स्वतन्त्रता के प्रति फासिज्म के खतरे को नहीं समझ सके। लड़ाई शुरू होने पर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने फासिस्ट देशों की निंदा की। फासिस्ट देश ब्रिटेन से लड़ रहे थे तो भी भारतीय जनता उनको अपना हितैषी नहीं समझती थी। भारतीय जनता को मालूम था कि फासिज्म की जीत

होने पर किसी देश की स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं रहेगी।

लड़ाई शुरू होने के तुरंत बाद कांग्रेस ने अपनी नीति स्पष्ट कर दी। उसने जर्मनी, इटली और जापान की निंदा की और उनके हमले के शिकार देशों के प्रति सहानुभूति प्रकट की। किंतु ब्रिटेन एक ओर स्वतंत्रता के लिए लड़ने का दावा कर रहा था और दूसरी ओर भारतीय जनता को गुलाम बनाए हुए था। उसने बिना भारतीय जनता से पूछे भारत को लड़ाई में घसीट लिया था। कांग्रेस ने तुरत भारतीय सरकार बनाने की माँग की। उसने ब्रिटिश सरकार को यह वायदा करने के लिए कहा कि लड़ाई खत्म होते ही वह भारत को आजाद कर देगी। किंतु ब्रिटेन ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। स्पष्ट हो गया कि ब्रिटेन अपने साम्राज्यवादी हितों के लिए लड़ रहा है। कांग्रेस ने प्रांतीय मंत्रिमंडलों से त्यागपत्र दे दिया।

1941 ई० में जर्मनी ने रूस और जापान ने पर्ल हार्बर के अमरीकी नौसैनिक अड्डे पर हमला किया। इससे रूस और अमरीका को भी लड़ाई मे घसीट लिया गया। फासिज्म के विरुद्ध लड़ने वाले देशों ने अपने लक्ष्य स्पष्ट किए। उन्होंने संसार के सब राष्ट्रों की आजादी तथा मनचाही शासन व्यवस्था चुनने के अधिकार को समर्थन दिया। इस तरह फासिज्म के विरुद्ध उनकी लड़ाई राष्ट्रों की आजादी तथा जनतंत्र की लड़ाई बन गई। किंतु ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि भारत को आत्मनिर्णय का अधिकार नही मिलेगा। जवाहर लाल नेहरू और अबुल कलाम आजाद जैसे भारतीय नेताओं ने फासिज्म को सपूर्ण मानवता का शत्रु माना तथा उसकी निंदा की और कहा कि देश की शासन व्यवस्था सँभालते ही भारतीय जनता फासिज्म के विरुद्ध लड़ाई में जुट पड़ेगी। किंतु ब्रिटिश सरकार ने लड़ाई के बाद भारत को आजादी का वायदा करने से इंकार कर दिया।

अगस्त 1942 ई० में गांधी जी ने 'भारत छोड़ो' का नारा दिया। अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए मजबूर करने के लिए एक विशाल सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने का निर्णय किया गया। तुरंत ही गांधी, नेहरू आदि प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। कांग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। सारे देश की जनता गुस्से में आ गई और 'भारत छोड़ो' का रणनाद हर जगह सुनाई पड़ने लगा। सारे देश में प्रदर्शन हुए। कई लोगों ने विदेशी शासन खत्म करने के लिए हिंसा का सहारा लिया। 'भारत छोड़ो आंदोलन' को दबाने के लिए पुलिस और सेना का सहारा लिया गया। कुछ ही महीनों में सैकड़ों लोगों को मार दिया गया और 70 हजार से अधिक लोगों



7 अगस्त, 1942 ई० को बंबई मे हुई कांग्रेस की मीटिंग में भाग लेते हुए महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू। साथ में आचार्य कृपलानी भी है। (चित्र—नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं लाइब्रेरी के सौजन्य से)

को जेल में बंद कर दिया गया। उसी समय बंगाल में एक भीषण अकाल पड़ा और लगभग 30 लाख लोग मर गए। यह बीसवीं शताब्दी का सबसे भयंकर अकाल था।

तुम सुभाष चंद्र बोस के बारे में पढ़ चुके हो। वे 1941 ई० में छिपकर भारत से निकल गए। उन्होंने बाहर जाकर ब्रिटिश शासन को खत्म करने के लिए आजाद हिंद फौज की स्थापना की। उसमें जापान द्वारा पकड़े गए भारतीय सैनिक और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में रहने वाले भारतीय शामिल हो गए। आजाद हिंद फौज के सैनिक 'जय हिंद' का नारा लगाते हुए भारत की ओर बढ़े। तुम पढ़ चुके हो कि जापान एक साम्राज्यवादी देश बन गया था। उसने जर्मनी और इटली के साथ मिलकर संसार को जीतने का मनसूबा बनाया था। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन जापान की सरकार को भारत का मित्र नहीं समझता था। किंतु नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने जापान की सहायता से आजाद हिंद फौज की स्थापना की। भारत में कई लोग जापान के इरादों को संदेह की नजर से देखते थे, किंतु नेताजी और आजाद हिंद फौज ने अपने कार्यों से भारतीय जनता में देशभक्ति की भावना भरी।

फासिस्ट शक्तियों की हार के साथ ही 1945 ई० में द्वितीय महायुद्ध खत्म हो गया। लड़ाई में लाखों लोग मारे गए। जब लड़ाई समाप्त होने को थी और इटली तथा जर्मनी हार चुके थे, तभी अमरीका ने जापान के दो शहरों—हिरोशिमा और नागासाकी—पर परमाणु बम गिराए। कुछ ही क्षणों में दोनों शहर मिट्टी में मिल गए। लगभग 2 लाख लोग मर गए। इसके साथ ही युद्ध समाप्त हो गया।

युद्ध के बाद राष्ट्रीयता की लहर

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संसार के इतिहास में एक नया युग शुरू हुआ। राजनीतिक स्थिति बदल गई थी। ब्रिटेन काफी लंबे समय से एक बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति था। वह लड़ाई के बाद द्वितीय कोटि की शक्ति हो गया। सोवियत संघ संसार की दो महान शक्तियों में एक हो गया। द्वितीय विश्वयुद्ध स्वतंत्रता और जनतंत्र के नाम से लड़ा गया था। उसके समाप्त होने पर संसार में एक नया राजनीतिक वातावरण आ गया। पूर्वी यूरोप के कई देश समाजवादी हो गए। सभी साम्राज्यवादी देशों की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति कमजोर हो गई। संपूर्ण एशिया और अफ्रीका में स्वतंत्रता का ज्वार आ गया। स्वतंत्रता-आंदोलनों को दबाना अब संभव नहीं रहा। द्वितीय विश्व युद्ध में फासिज्म की हार के साथ ही साम्राज्यवादी देशों को काफी नुकसान उठाना पड़ा। ब्रिटेन में मजदूर दल सत्तारूढ़ हो गया। मजदूर दल में भारत से सहानुभूति रखने वाले अनेक लोग थे। वे भारत की आजादी के पक्ष में थे।

लड़ाई के बाद ब्रिटिश सरकार ने आजाद हिंद फौज के तीन अफसरों पर दिल्ली के लाल किले में मुकद्दमा चलाया। उन पर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लड़ने का अभियोग था। मुकद्दमे के विरुद्ध सारा देश एकजुट हो गया। तीनों अफसरों को सजा दी गई, किंतु उन्हें रिहा कर देना पड़ा सारे देश में उनकी रिहाई के लिए प्रदर्शन, हड़तालें और सभाएँ हुईं। जनता आजादी की आखिरी लड़ाई में लगी थी। नौसैनिकों ने विद्रोह कर दिए। जहाजों पर ब्रिटिश साम्राज्य का झंडा उतार कर राष्ट्रीय झंडे लगा दिए गए। ब्रिटिश शासन के दिन खत्म हो रहे थे। ब्रिटिश शासकों ने महसूस किया कि भारत को बहुत दिनों तक अपने कब्जे में रखना मुश्किल है।

स्वतंत्र भारत का उदय

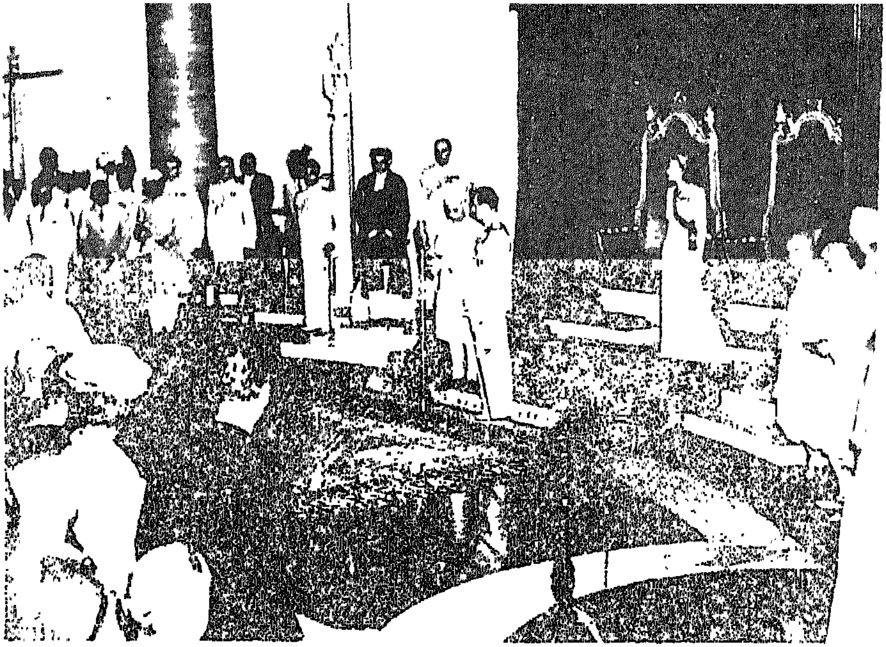
1946 ई० में ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि वह भारत में अपना शासन

समाप्त करना चाहती है। इंग्लैंड से ब्रिटिश मंत्रिमंडल के कुछ सदस्यों का एक समूह भारत आया। उस समूह को कैबिनेट मिशन के नाम से पुकारते हैं। वह भारतीय नेताओं से सत्ता के हस्तांतरण के बारे में बातचीत करने के लिए आया। उसने अंतरिम सरकार के निर्माण तथा संविधान सभा बुलाने के बारे में एक प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव के अनुसार संविधान सभा में प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि और भारतीय राजाओं द्वारा मनोनीत लोग होते। जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में एक अंतरिम मंत्रिमंडल बना। संविधान सभा ने दिसंबर 1946 ई० में अपना काम शुरू किया, किंतु मुस्लिम लीग और राजाओं ने उसमें भाग लेने से इंकार कर दिया।

मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की माँग पर जोर दिया। नए वायसराय माउंटबेटेन ने भारत को दो स्वतंत्र राज्यों—हिंदुस्तान और पाकिस्तान में बाँटने का प्रस्ताव रखा। सन 1946 ई० में बंगाल, बिहार, बंबई तथा अन्य जगहों में सांप्रदायिक दंगे हुए जिनमें हजारों हिंदुओं और मुसलमानों को अपनी जानें गँवानी पड़ीं। विभाजन के प्रस्ताव की घोषणा के बाद और भी दंगे हुए। नए दंगे विशेषकर पंजाब में हुए। कुछ ही महीनों में कुल मिलाकर करीब 5 लाख हिंदू और मुसलमान मारे गए। लाखों लोग बेघरबार हो गए। इस तरह का नृशंस हत्याकांड देश के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था। सांप्रदायिक दलों द्वारा फैलाई गई घृणा का परिणाम सबके सामने था। ब्रिटिश सरकार ने सदा सांप्रदायिक दलों को प्रोत्साहित किया था। मानवता को लोगों ने उठाकर ताक पर रख दिया और वे अत्यंत लज्जाजनक काम करते हुए भी नहीं घबराए। किंतु कई लोगों ने उस सांप्रदायिक आग को बुझाने के लिए जी-तोड़ कोशिश की। सांप्रदायिक दंगों से लड़ने वालों में सब धर्मों के लोग थे। कई लोग दूसरे संप्रदाय के लोगों को बचाने में अपने ही संप्रदाय के लोगों के द्वारा मारे गए।

इसी नर-संहार के बीच 15 अगस्त, 1947 ई० को भारत स्वतंत्र हो गया। एक अलग राज्य के रूप में पाकिस्तान का निर्माण हुआ। पाकिस्तान में पश्चिम पंजाब, पूर्व बंगाल, सिंध और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत चले गए। भारतीय जनता ने लगभग एक शताब्दी के संघर्ष के बाद विदेशी शासन को उखाड़ फेंका। जवाहर लाल नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री बने। नेहरू के शब्दों में आधी रात को जब 15 अगस्त, 1947 ई० का दिन शुरू हुआ, भारत में जीवन और स्वतंत्रता आई।

संविधान सभा स्वतंत्र भारत की संसद के रूप में काम करने लगी। 14 अगस्त 1947 को नेहरू ने संविधान सभा में भाषण देते हुए भारतीय जनता के अगले कार्यों



स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री के रूप में शपथ ग्रहण करते हुए जवाहर लाल नेहरू।
(चित्र—प्रेस इन्फर्मेशन ब्यूरो के सौजन्य से)

और कर्तव्यों के बारे में बतलाया। उन्होंने गरीबी, अज्ञानता, रोग और अवसर की असमानता को दूर करने के लिए लोगों का आह्वान किया। उन्होंने भारत और भारत-वासियों तथा संपूर्ण मानवता की सेवा का व्रत लेने को कहा। उन्होंने देशवासियों से 'स्वतंत्र भारत' का शानदार महल बनाने को कहा, जहाँ भारत माता के सारे बच्चे रह सकें। 15 अगस्त, 1947 की सुबह लाल किले पर स्वतंत्र भारत का झंडा फहराया गया। भारत के लोग अपने भाग्य के स्वयं मालिक हो गए। नए भारत के निर्माण का काम शुरू हुआ।

स्वतंत्र भारत में विकास का कौन-सा मार्ग अपनाया जाए, उसका निर्धारण बहुत कुछ स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान ही हो चुका था। यह पहले ही तय हो चुका था कि स्वतंत्र भारत में जनतांत्रिक शासन-व्यवस्था स्थापित होगी और सारी शक्ति जनता के हाथों में होगी।

भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में सारे देश के लोगों ने एक राष्ट्र के रूप में भाग लिया। भाषा, धर्म तथा रीति-रिवाज की भिन्नता के बावजूद सारे भारतीय एक राष्ट्र के रूप

में संघर्षरत रहे। सांप्रदायिक दल अपनी कोशिशों के बावजूद भारतीय जनता को विभाजित नही कर सके और आजादी सारे देश की जनता को मिली, किसी एक धर्म वालों को ही नहीं। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन एक धर्मनिरपेक्ष आंदोलन था। उसने सब लोगों के समान हितों की रक्षा का प्रयास किया और धर्म को लोगों का निजी मामला समझा। हर आदमी को अपने धर्म में विश्वास रखने की पूरी स्वतंत्रता दी गई। किसी भी धर्म को कोई विशेष स्थान नहीं दिया गया। राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओ को अच्छी तरह मालूम था कि धर्मनिरपेक्षता हर जनतांत्रिक आंदोलन का अभिन्न अंग होती है। जनतंत्र में सब नागरिक बराबर होते हैं। इसका मतलब है कि सबके समान अधिकार होते हैं। जनतांत्रिक अधिकारों में भाषण और अपने धर्म के अनुसरण की स्वतंत्रता शामिल होती है। राष्ट्रीय आंदोलन ने भारत में जनतंत्र की स्थापना को अपना अत्यंत महत्त्वपूर्ण लक्ष्य बनाया था। इसका स्पष्ट अर्थ था कि वह भारत को धर्मनिरपेक्ष देश बनाना चाहता था। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय आंदोलन स्वतंत्र भारत में धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करना चाहता था और धर्म को लोगों का निजी मामला बनाना चाहता था।

राष्ट्रीय आंदोलन ने भारतीय समाज के पुनर्निर्माण को भी अपना लक्ष्य बनाया था। वह भारत में एक न्यायोचित समाज की स्थापना करना चाहता था। समाजवादी विचारों के प्रचार के साथ ही भावी समाज-व्यवस्था की रूपरेखा अधिक स्पष्ट हो गई। उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र भारत ने सामाजिक विषमता के विरुद्ध संघर्ष शुरू किया। तेज आर्थिक विकास के लिए योजनाएँ शुरू की गई। आर्थिक शक्ति के संकेंद्रण को रोकने के लिए कदम उठाए गए।

राष्ट्रीय आंदोलनों ने विश्व के मामलों पर अपना एक दृष्टिकोण विकसित किया था। वह दृष्टिकोण संसार के सब जनगण की समानता पर आधारित था। इसका मतलब था कि स्वतंत्र भारत राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले समस्त जनगण को अपना समर्थन देगा। वह हर प्रकार के उत्पीड़न के विरुद्ध रहेगा। राष्ट्रीय आंदोलन का दृढ़ विश्वास था कि किसी भी देश की स्वतत्रता तब तक सुरक्षित नहीं हो सकती जब तक संसार के सब देश आजाद न हों। उसने शांति की नीति पर जोर दिया था क्योंकि शांति रहने पर ही पुनर्निर्माण का काम पूरा हो सकता है। शांति की नीति इस विश्वास पर आधारित थी कि संसार के आम लोगों के हितों में कोई विरोध नहीं है। इस तरह स्वतंत्रता और शांति स्वतंत्र भारत की विदेश नीति का आधार बन गई।

स्वतंत्र भारत के तात्कालिक कार्य

स्वतंत्र भारत के सामने कई तात्कालिक कार्य थे। पहला कार्य देश में राजनीतिक एकता स्थापित करना था। तुम पहले देशी राज्यों की जनता के संघर्ष के बारे में पढ़ चुके हो। कई देशी राजे भारत के आजाद होने के समय स्वयं-स्वतंत्र शासन होने का स्वप्न देखने लगे थे। किंतु थोड़े ही समय में देशी राज्यों को भारतीय संघ में मिला लिया गया। वे भारतीय संघ का अभिन्न अंग बन गए। देशी राज्यों को भारतीय संघ में मिलाने में सरदार वल्लभ भाई पटेल का प्रमुख हाथ था। वे स्वतंत्र भारत के प्रथम गृह मंत्री थे।

स्वतंत्रता के तुरंत बाद कश्मीर पर पाकिस्तान ने हमला कर दिया। जम्मू और कश्मीर की जनता अपने को भारत का अंग समझती थी। उसने पाकिस्तानी आक्रमण-कारियों का डटकर मुकाबला किया। जम्मू और कश्मीर उस समय एक देशी राज्य था। वह भारत में मिला लिया गया। पाकिस्तानी आक्रमणकारियों को मार भगाने के लिए भारतीय सेना भेजी गई। भारतीय सेना अपने कार्य में काफी सफल रही।

भारत के स्वतंत्र होने के कुछ ही दिनों बाद भारतीय जनता को एक महान विपत्ति का सामना करना पड़ा। 30 जनवरी, 1948 ई० को एक हिंदू धर्मांध ने गांधी जी को प्रार्थना-सभा जाते समय गोली मार दी। गांधी जी की मृत्यु से सारा संसार शोक में डूब गया। गांधी जी ने भारतीय जनता को जगाने में सबसे बड़ी भूमिका अदा की थी। उन्होंने काफी लंबे समय तक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया था। वे आधुनिक भारत के सबसे महान व्यक्ति थे। उनकी गिनती मानव-इतिहास के महान व्यक्तियों में होती है। उन्हीं के नेतृत्व में भारत को स्वतंत्रता मिली। इसीलिए उन्हें 'राष्ट्रपिता' कहा जाता है। हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए उन्होंने जीवन भर प्रयास किया। सांप्रदायिक दंगा शुरू होने पर उन्होंने दंगाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा किया और लोगों को प्रेम और बंधुत्व का संदेश दिया। उन्होंने शांति स्थापना के लिए जी जान से प्रयास किया। हिंदुओं और मुसलमानों की आपसी मारकाट और देश के विभाजन से उन्हें दुख पहुँचा था। कई लोगों को उनका प्रेम और बंधुत्व का संदेश पसंद नहीं आया क्योंकि उन लोगों के दिमाग में सांप्रदायिक जहर भरा था। उनकी हत्या सांप्रदायिक उन्माद के कारण हुई। उनकी मृत्यु से भारतीय जनता दुख के सागर में डूब गई। जवाहर लाल नेहरू ने कहा कि 'हमारे जीवन से प्रकाश गायब हो गया है'। गांधी जी सत्य और अहिंसा के प्रतीक थे। वे सत्य और मानवता को सबसे अधिक महत्त्व देते थे। वे कलह से भरे विश्व में प्रेरणा के स्रोत और प्रकाश के स्तंभ थे। वे सारे संसार में 'महात्मा' के नाम से पुकारे जाते थे। उन्होंने

संसार को दुख और पीड़ा से मुक्त करने का व्रत लिया था। उनके इस व्रत को पूरा करना हर व्यक्ति का कर्तव्य है।

देश के विभाजन से विस्थापित व्यक्तियों को फिर से बसाने की समस्या आ गई। पाकिस्तान के इलाकों से लाखों लोग भारत आए। वे बेघरबार थे। उनको सहायता तथा रोजगार देने और बसाने की समस्या आई। सरकार और जनता ने उन्हें हर प्रकार की सहायता दी। उन्होंने भी अपनी तकलीफ हँसते-हँसते झेल ली। स्थिर होकर उन्होंने नई जिंदगी शुरू की।

देश-विभाजन से भारत की अर्थव्यवस्था असंतुलित हो गई। विस्थापितों के पुनर्वास के साथ ही अन्य समस्याएँ आईं। कई उद्योगों को कच्चे माल का अभाव हो गया। जूट और सूती कपड़े के कारखाने भारत में रह गए और कच्चा जूट तथा कच्चा कपास उत्पन्न करने वाले अधिकांश क्षेत्र पाकिस्तान में चले गए। नतीजा यह हुआ कि जूट और सूती कपड़े के कई कारखाने बंद हो गए। काफी प्रयास के बाद कच्चे माल का अभाव खत्म हो सका। गेहूँ उत्पन्न करने वाला बड़ा भाग पश्चिम पाकिस्तान और चावल उत्पन्न करने वाला एक बड़ा भाग पूर्व पाकिस्तान में चला गया। जनसंख्या की अपेक्षा सिंचित भूमि का बड़ा भाग पाकिस्तान में चला गया। इसलिए कुछ दिनों के लिए भारत में अन्न का अभाव भी हो गया। द्वितीय महायुद्ध और देश-विभाजन के कारण देश की परिवहन-व्यवस्था भी अस्त-व्यस्त हो गई थी।

इसी बीच स्वतंत्र भारत के लिए संविधान बनाने का कार्य भी चल रहा था। संविधान सभा ने अपना काम 26 नवंबर, 1949 ई० को समाप्त कर लिया। संविधान बनाने में भीमराव अंबेदकर का महत्त्वपूर्ण योगदान था। 26 जनवरी, 1950 को भारत गणतंत्र बन गया। डा० राजेंद्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। वे संविधान सभा के भी अध्यक्ष थे। संविधान उसी दिन लागू हो गया। तुम्हें याद होगा कि 26 जनवरी का दिन स्वतंत्रता-दिवस के रूप में 1930 से ही मनाया जा रहा था। उसी दिन भारत को गणतंत्र घोषित किया गया।

अभ्यास

1. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :**

   1. असहयोग आंदोलन खत्म होने के तुरत बाद कांग्रेस ने क्या काम किया? उस समय के कुछ प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं के नाम लिखो।

2. साइमन आयोग क्या था? भारतीय जनता ने क्यों उसका विरोध किया?
3. स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में कांग्रेस के 1929 ई० के लाहौर अधिवेशन का क्या महत्त्व है?
4. दांडी यात्रा के ऊपर एक टिप्पणी लिखो।
5 सविनय अवज्ञा आंदोलन क्यों शुरू किया गया?
6. गोलमेज सम्मेलन क्या था? उसके प्रति कांग्रेस का क्या रुख था?
7. कांग्रेस के कराची अधिवेशन में क्या मुख्य निर्णय लिए गए?
8. आतंकवादी-क्रांतिकारियों के क्या कार्य-कलाप थे? सन 1925 ई० के बाद सक्रिय चार क्रांतिकारियों के नाम लिखो।
9. समाजवादी विचार भारत में कैसे फैले? उनका स्वतंत्रता-संग्राम पर क्या प्रभाव पड़ा?
10. स्वतंत्रता-संग्राम में सांप्रदायिक दलों की क्या भूमिका थी?
11. स्वतंत्रता और जनतंत्र के लिए अन्य जनगण के संघर्ष के प्रति भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का क्या रुख था? अपने उत्तर की पुष्टि के लिए दो उदाहरण दो।
12. सन 1935 ई० के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं? ऐक्ट के प्रति कांग्रेस का रुख क्या था?
13. द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रति राष्ट्रीय आंदोलन का क्या रुख था?
14. देशी राज्यों की जनता के आंदोलन के बारे में लिखो। कांग्रेस का उसके प्रति क्या रुख था?
15. आजाद हिंद फौज की स्थापना क्यों हुई? भारत की स्वतंत्रता के लिए उसने क्या किया?
16. किन परिस्थितियों में भारत को स्वतंत्रता मिली?
17. स्वतंत्रता मिलते ही भारतीय जनता के सामने कौन-सी समस्याएँ आईं?

2. कालम 'क' में कुछ घटनाएँ और कालम 'ख' में कुछ तिथियाँ दी गई हैं। कालम 'ख' को इस तरह व्यवस्थित करो कि तिथियों का घटनाओं से सही संबंध स्थापित हो जाए।

'क'	'ख'
1. मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की माँग की।	1. 1929 ई०
2. कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता के लिए प्रस्ताव पास किया।	2. 1937 ई०
3. ब्रिटिश सरकार ने साइमन आयोग की नियुक्ति की।	3. 1940 ई०
4. राष्ट्रीय आंदोलन ने इसी दिन को स्वतंत्रता-दिवस के रूप में मनाने का निर्णय किया।	4. 1927 ई०
5. कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया।	5. 26 जनवरी, 1930

6. गांधी-हत्या	6. 15 अगस्त 1947
7. प्रांतों में कांग्रेस-मंत्रिमंडलों का निर्माण	7. 1942
8. स्वतंत्रता-प्राप्ति	8. 26 जनवरी 1950
9. भारत गणतंत्र बना।	9. 1946 ई०
10. ब्रिटिश सरकार ने कैबिनेट मिशन की नियुक्ति की।	10. 1937 ई०

3. **करने के लिए रुचिकर कार्य :**

1. स्वतंत्रता-आंदोलन के इतिहास के सन 1925 से 1947 ई० तक की महत्त्वपूर्ण तिथियों और घटनाओं को एक काल रेखा बनाकर दिखाओ।
2. जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस के जीवन और कार्यों पर एक निबंध लिखो। निबंध लिखने के लिए जवाहर लाल नेहरू की आत्मकथा एवं सुभाष चंद्र बोस की जीवनी तथा उन दोनों के भाषणों और लेखों को पढ़ो। अपने निबंधों में लगाने के लिए नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली से चित्रों के लिए अनुरोध करो।
3. अपने शिक्षकों, सहपाठियों और स्कूल के वरिष्ठ छात्रों की सहायता से स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास के संबंध में एक प्रदर्शनी आयोजित करो। प्रदर्शनी में अन्य चीजों के अतिरिक्त नेताओं तथा घटनाओं की तस्वीरें एवं रेखाचित्र तथा पुराने समाचारपत्रों में छपी रिपोर्टों तथा महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों की तस्वीरें शामिल करो।
4. स्वतंत्र भारत का एक मानचित्र तैयार करो।

नागरिक शास्त्र

स्वतंत्र भारत

उपलब्धियां एवं चुनौतियां

सम्पादक :

दिवाकर सी० मुले

अ० च० शर्मा

सुप्ता दास

विषय-सूची

भाग–1

हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य और लोकतंत्र

भूमिका

लोकतंत्र, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य हैं। इस देश के सामने अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएं हैं। अपने प्रमुख राष्ट्रीय लक्ष्यों को ध्यान में रखकर ही हम इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयास कर रहे हैं। हमें इन लक्ष्यों की प्राप्ति लोकतंत्रीय विधि से करनी है। संविधान द्वारा इस देश में लोकतंत्रीय शासन पद्धति की स्थापना की गई है। लोकतंत्र में विचार विमर्श के पश्चात् सामूहिक रूप से निर्णय लिए जाते हैं। लोकतंत्रीय शासन प्रणाली के अन्तर्गत मनमाने ढंग से निर्णय लिए जाने की संभावना नहीं रहती। लोकतंत्र में महत्वपूर्ण निर्णय जनता की सहमति से उनके प्रतिनिधियों द्वारा लिए जाते हैं।

इस प्रकार की शासन प्रणाली में प्रत्येक नागरिक को एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। एक उत्तम सरकार को निर्वाचित करना तथा उसकी गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखना उनका विशेष उत्तरदायित्व है। उन्हें अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहना पड़ता है और अपने अधिकारों का इस प्रकार प्रयोग करना होता है जिससे उनकी सरकार का सफल संचालन हो सके।

अध्याय–1

राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति

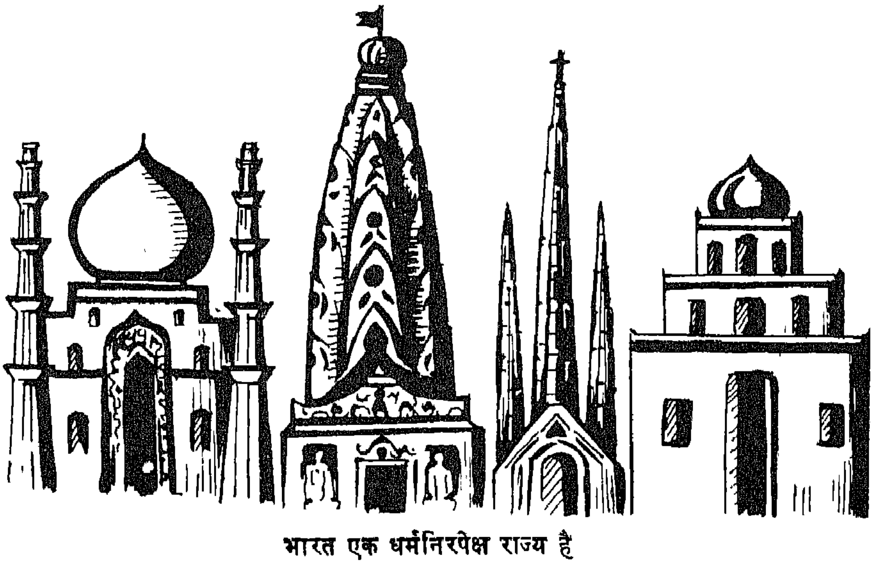
हमारा देश किस ओर जा रहा है ? हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं ? हम किस दिशा में अग्रसर हो रहे हैं ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर हम तभी दे सकते हैं जबकि हमें अपने राष्ट्रीय लक्ष्यों की जानकारी हो जाए। हमारे देश को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं का निराकरण करने तथा देश की बहुमुखी उन्नति करने के लिए हमें भविष्य-निरूपरण करना होगा। हमें अपने सामने कुछ निश्चित आदर्श रखने होंगे अन्यथा हमारा राष्ट्रीय विकास दिशाहीन हो जाएगा। हमारा देश एक विकसित देश के रूप में उभर कर आने के लिए प्रयत्नशील है। इसको प्रगति-पथ पर अग्रसर करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम अपने राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित कर लें। प्रत्येक नागरिक को यह जानना चाहिए कि उसके राष्ट्रीय लक्ष्य क्या हैं ? उन लक्ष्यों का अभिप्राय क्या है ? इन लक्ष्यों की सिद्धि में हमें किन बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है ? हमें ऐसे प्रश्नों का उत्तर जानना ही चाहिए।

कक्षा 7 में तुमने संविधान की प्रस्तावना पढ़ी है। उस प्रस्तावना में हमारे राष्ट्रीय लक्ष्यों का उल्लेख है। तुमने इन लक्ष्यों का अभिप्राय भी समझ लिया होगा। अब हम उनके विषय में कुछ और अधिक जानकारी करेंगे और यह समझने का प्रयास करेंगे कि उन्हें प्राप्त करने में क्या कठिनाइयां हैं और हमारे देशवासी उन कठिनाइयों को दूर करने में कैसा प्रयास कर रहे हैं।

हमारे देश में लोकतंत्रीय शासन है जो जनता के प्रति उत्तरदायी है।

प्रत्येक नागरिक को मत देने तथा चुनाव लड़ने का अधिकार है। हम अपनी सरकार बनाने में स्वतंत्र हैं। यह राजनैतिक लोकतंत्र है।

हमारे देश की लोकतंत्रीय सरकार का उद्देश्य जन-कल्याण है। क्या हमारे देश के सभी लोग वास्तव में स्वतंत्रता का उपभोग कर पाते हैं? दुर्भाग्य से हमारा समाज अनेक जातियों में बंटा हुआ है? देश के बहुत से लोग निम्न जाति के माने जाते हैं? इन जातियों के लोग गरीब और अनपढ़ होते हैं। इन्हें समाज के अन्य वर्गों द्वारा शोषित किया जाता है। यह सब सच है कि हमारे संविधान तथा हमारी सरकार ने इस भेदभाव को मिटाने के लिए अनेक कानून बनाये हैं। किन्तु, क्या वास्तव में हम भेदभाव मिटा सके हैं? जब तक हम समाज के सभी वर्गों को समान अवसर प्रदान करने में समर्थ नहीं हो पाते तब तक हम लोकतंत्र की स्थापना नहीं कर सकते। लोकतंत्र का तात्पर्य तो यह है कि स्वतंत्रता के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए। इसका यह भी अर्थ है कि समाज में ऐसी परिस्थितियां उपलब्ध हों जिसके फलस्वरूप सभी वर्गों के लोग स्वतंत्रता का समान रूप से उपभोग कर सकें। यह सामाजिक लोकतंत्र है।



भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है

सामाजिक लोकतंत्र के अभाव में, केवल राजनैतिक लोकतंत्र के द्वारा देश को प्रगति और समृद्धि के मार्ग पर ले जाने का प्रयास सफल न हो सकेगा।

हमारे संविधान ने घोषित किया है कि हमारा राज्य एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है। प्रत्येक भारतवासी को, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, सिक्ख अथवा ईसाई हो, अपना-अपना धर्म पालन करने का अधिकार है। हमारे देश की सरकार धर्म विशेष के साथ पक्षपात नहीं कर सकती और न ही किसी धर्म के साथ भेद-भाव रख सकती है। हम सब को धार्मिक स्वतंत्रता है।

लेकिन हम देखते हैं कि कुछ लोग अन्य धार्मिक समुदायों के प्रति द्वेष की भावना रखते हैं। प्रत्येक वर्ष साम्प्रदायिक दंगो में अनेक निर्दोष व्यक्ति मारे जाते हैं। ऐसी घटनाएं धर्म-निरपेक्ष की भावना के विपरीत हैं। हमारे सामने समस्या यह है कि लोगों को किस प्रकार शिक्षित करें कि वे धार्मिक दंगे न करें और निर्दोष व्यक्तियों की हत्या न करें। भारत के प्रत्येक नागरिक को यह महसूस होना चाहिए कि धार्मिक विद्वेश हमारे समाज को विभक्त करता है और विकास का मार्ग अवरुद्ध करता है।

आज हमारे समाज के सामने यह एक बड़ा कार्य करने को है। हम कार्य की पूर्ति कहां तक कर पाये हैं ?

सामाजिक असमानताओं के साथ ही हमारे बीच आर्थिक विषमता भी है। अधिकांश लोग गरीब हैं और इसीलिए वे निराश व दुःखी हैं। यह स्थिति मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषित किए जाने का कारण बन जाती है। आर्थिक विषमता असन्तोष को जन्म देती है। इसीलिए समाजवाद को भी एक महत्वपूर्ण लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है। इस लक्ष्य-प्राप्ति हेतु हमें अपने देश में आर्थिक समानता लानी होगी। हमारा देश पंच-वर्षीय योजनाओं के द्वारा आर्थिक विकास में लगा हुआ है। हम इस प्रयास में कहां तक सफल हो सके हैं ? इस क्षेत्र में हमारी क्या उपलब्धि रही है ? अब हमें और क्या करना होगा ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर हम इस पुस्तक में विचार करेंगे।

हमारा देश बहुत विशाल है। भौगोलिक दृष्टि से इसकी सीमा हजारों किलोमीटर तक फैली है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत का संसार में दूसरा स्थान

है। इस देश में अनेक भाषाएं बोली जाती है। यहां विभिन्न प्रकार के आंचलिक प्रदेश हैं और उनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति हैं। हमारे देश में सभी लोगों को अपनी भाषा व संस्कृति विकसित करने का अधिकार मिला हुआ है। भारत के विकास में विभिन्न क्षेत्रों व धर्मों का योग है। तुम अन्यत्र पढ़ चुके हो कि किस प्रकार गत राष्ट्रीय आन्दोलन में विभिन्न जातियां, धर्मों तथा प्रदेशों के लोगों ने अपना सक्रिय योग प्रदान किया। जब कभी देश पर संकट की घड़ी आई देश के



हमारा लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग

सभी लोग अपने देश के प्रति त्याग करने को तत्पर हो गए। इसी कारण से हम बहुधा कहते हैं कि हमारे देश में अनेक विभिन्नताओं के बावजूद मौलिक एकता विद्यमान है। फिर भी कुछ लोग अपने प्रदेश या भाषा के प्रति इतनी अधिक निष्ठा दिखलाते हैं कि वे राष्ट्रीय हितों को भूल जाते हैं। समस्या यह है कि विभिन्न क्षेत्रों तथा विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच एकता की कड़ी को किस प्रकार मजबूत करें जिससे कि वे देश की प्रगति के लिए मिल-जुलकर कार्य कर सकें। राष्ट्रीय एकता की इस दिशा में, जोकि हमारे लिए अति महत्व का राष्ट्रीय लक्ष्य है, हम अब तक कितनी सफलता प्राप्त कर सके हैं।

अपने राष्ट्रीय विकास के लिए हमें न केवल देश में शान्ति चाहिए बल्कि उसके लिए विश्व-शान्ति भी आवश्यक है। यदि हमारे देश के बाहर शान्ति व सुरक्षा न हो तो उसका प्रभाव हमारे देश पर पड़े बिना न रह सकेगा। हम विज्ञान और तकनीकी के युग में रह रहे हैं और दिन प्रतिदिन हम अन्योन्याश्रित होते जा रहे हैं। अब हमारे पास बहुत ही विकसित संचार-साधन हैं। संसार के किसी भाग में जो कुछ भी होता है उसका प्रभाव हम पर भी पड़ता है।

अपने देश के बाहर विशेषकर अपने पड़ोसी देश में जो कुछ होता है उससे हम उदासीन नहीं रह सकते। 1971 में जब भारत-पाक युद्ध हुआ तो उससे हमारे सामान्य आर्थिक विकास में बाधा पहुंची। राष्ट्रीय संसाधन एवं राष्ट्रीय धनराशि को अन्य मदों पर व्यय न करके देश की रक्षा हेतु व्यय करना पड़ा। हमारे पास साधनों की कमी पहले से ही है। यदि इन साधनों का अधिकांश भाग सैन्य प्रयोजनों पर व्यय कर दिया जाए तो हमारे सामाजिक तथा आर्थिक विकास में अवरोध उत्पन्न हो जाएगा।

यही कारण है कि हमारा देश अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। हमारा देश यह चाहता है कि आपसी झगड़ों तथा युद्धों में अपनी शक्ति एवं अपने संसाधनों का अपव्यय करने की बजाय सभी देश पारस्परिक विकास के लिए एक दूसरे से सहयोग करें। इसी कारण से हम अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में विश्वास करते हैं। इसलिए हम संयुक्त राष्ट्र को सक्रिय सहयोग देते हैं जोकि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सहयोग के लिए प्रयत्नशील है।

अभ्यास के प्रश्न

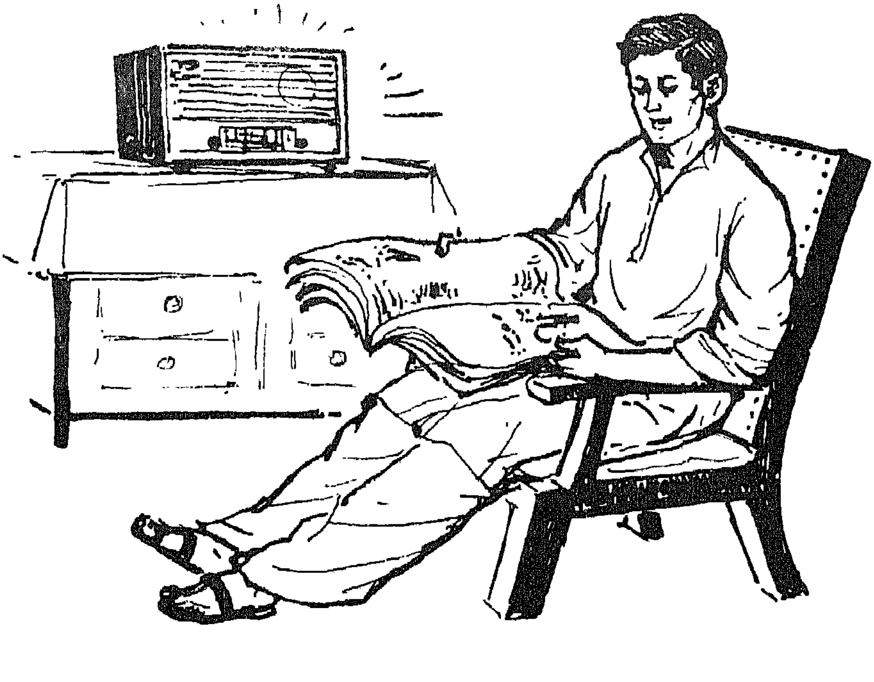
1. हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य क्या हैं ?
2. 'सामाजिक लोकतंत्र' से क्या तात्पर्य है ?
3. 'धर्म निरपेक्ष राज्य' से तुम क्या समझते हो ?
4. हमारे देश के सम्मुख आज मुख्य चुनौतियां कौन-सी हैं ?
5. हमारी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में आस्था क्यों है ?

अध्याय–2

लोकतंत्र और नागरिक

लोकतंत्र में जनता स्वयं अपनी सरकार निर्वाचित करती है। इन निर्वाचनों में देश के वयस्क लोग ही मतदान करने के अधिकारी होते हैं। यदि मतदाता योग्य व्यक्तियों को अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करेंगे तो वे सुखी रहेंगे। प्राचीन-काल में जब विभिन्न देशों में राजा-महाराजाओं का शासन होता था तो प्रत्येक देश किसी व्यक्ति विशेष के नियंत्रण में रहता था। यदि राजा योग्य और ईमान-

अच्छे नागरिक की पहचान समुचित जानकारी



दार हुआ तो उसकी प्रजा खुशहाल रहती थी, अन्यथा नहीं। उस समय कहावत प्रचलित थी—'यथा राजा तथा प्रजा'। किन्तु लोकतंत्रीय सरकार जनता की सरकार होती है। अतः लोकतंत्र के लिए यह कहावत अधिक चरितार्थ होगी, 'यथा मतदाता तथा सरकार'।

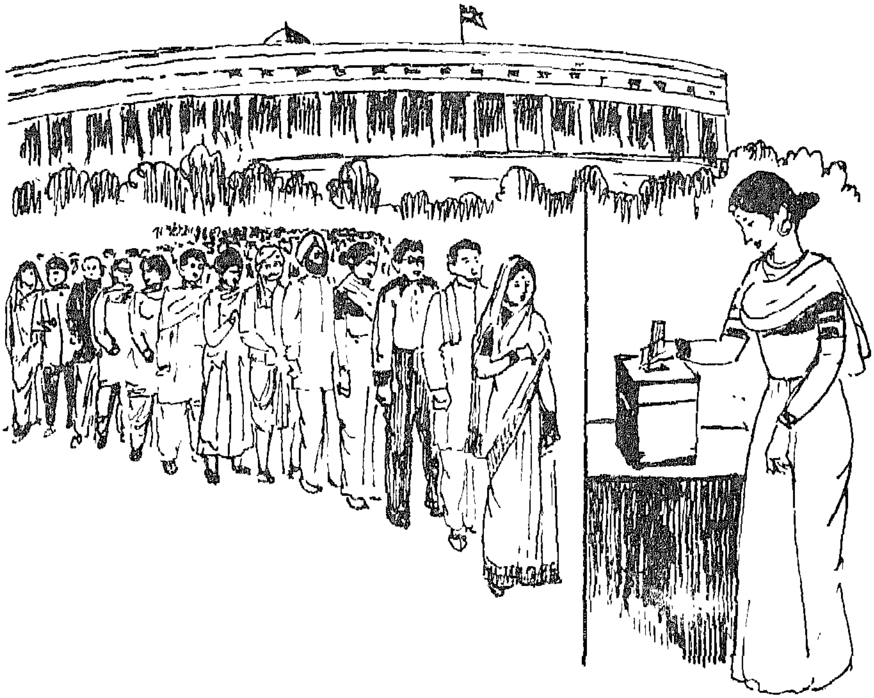
वास्तव में एक उत्तम लोकतंत्रीय सरकार की सम्भावना तभी है जबकि नागरिक योग्य और ईमानदार हो। लोकतंत्र में नागरिकों को अत्यधिक सावधान रहना पड़ता है। अधिकतर उन्हें महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं। यदि उन्हें अपने देश अथवा क्षेत्र का समुचित ज्ञान होगा तो वे सही निर्णय ले सकेंगे। इसलिये नागरिकों को अखबारों, रेडियो, टेलीविज़न, सार्वजनिक सभाओं तथा अन्य साधनों से ज्ञानार्जन एवं ज्ञानवृद्धि करनी चाहिए।

लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक को अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता होती है। तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारी बात समझें, इसी प्रकार अन्य लोग भी चाहते हैं कि तुम उनका दृष्टिकोण समझो। अपने विरोधी के विचार भी धैर्य-पूर्वक सुनने चाहिए क्योंकि लोकतंत्र में विरोधी दल के विचारों को सम्मान का स्थान दिया जाता है।

नागरिकों को सरकार के क्रियाकलापों पर विचार विमर्श और उसकी त्रुटियों की आलोचना करने का अधिकार होता है। उन्हें सरकार की नीतियों का विरोध करने का भी अधिकार है लेकिन ऐसा करने के लिए उन्हें वैधानिक तथा शान्तिपूर्ण उपाय अपनाने चाहिए।

लोकतंत्र में जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है और ये प्रतिनिधि जनता की ओर से कार्य करते हैं। इसीलिए इसे प्रतिनिधि मूलक लोकतंत्र कहते हैं। हमारे देश में प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र है।

प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र में सभी राजनैतिक दल चुनाव में अपने-अपने प्रत्याशी खड़े करते हैं। वे मतदाताओं को अपना कार्यक्रम समझाते हैं। राजनैतिक दलों की प्रजातंत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वे जनता और सरकार के बीच एक कड़ी का कार्य करते हैं। वे जनमत का निर्माण करते हैं। सार्वजनिक हित की विभिन्न समस्याओं पर वे सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों का या तो



लोकतंत्र में जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है

समर्थन करते हैं या विरोध ।

नागरिकों द्वारा निर्वाचित किए गए प्रत्याशियों से विधानमण्डल का निर्माण होता है । जिस राजनैतिक दल को विधान मण्डल में सबसे अधिक स्थान प्राप्त होते हैं वही दल सरकार बनाता है । इस प्रकार प्रतिनिधि लोकतंत्र का तात्पर्य बहुमत के शासन से है । दूसरे राजनैतिक दलों के प्रतिनिधि अल्पमत में होने के कारण विधानमण्डल में विरोधी दल का निर्माण करते हैं । जब कभी किसी राजनैतिक दल का बहुमत नहीं हो पाता तो एक से अधिक राजनैतिक दल मिलकर सरकार बनाते हैं । जब एक से अधिक दल मिलकर सरकार बनाते हैं तो उस सरकार को संयुक्त सरकार कहते हैं ।

बहुमत के शासन का अर्थ अल्पमत के विचारों की अवहेलना करना नहीं होता। बहुमत दल का यह कर्तव्य है कि वह अल्पमत वालों की भावनाओं को ठेस न पहुंचाए। दूसरी ओर अल्पमत वालों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे बहुमत के निर्णयों का पालन करें। वास्तविक बात तो यह है कि दोनों को ही जनसाधारण के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए।

अब तक हमारे देश में कई सामान्य निर्वाचन हो चुके हैं। यद्यपि सार्वभौम वयस्क मताधिकार के द्वारा प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को मतदान करने का अधिकार है किन्तु देश के सभी नागरिक इस अधिकार का प्रयोग नहीं करते। कुछ लोग अपनी लापरवाही या सुस्ती के कारण मतदान करने का कष्ट नहीं करते। कुछ ऐसे भी लोग है जो यह सोचते हैं कि मतदान न करने से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। कोई मतदाता ऐसा सोचने लगता है कि चूंकि चुनाव के प्रत्याशियों में से कोई भी उसका परिचित नहीं है इसलिए उसे उसकी हारजीत से क्या लेना-देना। इन सब बातों का परिणाम यह होता है कि कभी-कभी नागरिकों की कुल संख्या के आधे भी अपने मताधिकार का प्रयोग नहीं करते। वे यह महसूस नहीं करते कि चुनाव में मतदान करना उनका अधिकार ही नहीं है बल्कि कर्त्तव्य भी है। उन्हें इस कर्त्तव्य का पालन अवश्य करना चाहिए अन्यथा स्वार्थी तथा अयोग्य व्यक्ति निर्वाचित हो जाएंगे।

जब मतदाता के सामने अनेक प्रत्याशी होते हैं तो उसे उनमें से किसी एक का चुनाव करना पड़ता है। यह मतदाता की बुद्धिमत्ता, देश भक्ति तथा नि:स्स्वार्थ भावना की परीक्षा का समय होता है। बहुत सोच-विचार के पश्चात् ही उसे ऐसे व्यक्ति को अपना मत देना चाहिए जो जनता की भलाई का कार्य अधिकाधिक निष्ठा से कर सके। मतदाता को प्रत्याशी के गुणों तथा उसके सामाजिक कार्यों से सम्बन्धित जानकारी होनी चाहिए। बहुत से प्रत्याशी किसी न किसी राजनैतिक दल के सदस्य होते हैं। इन राजनैतिक दलों के उद्देश्यों एवं कार्यक्रम का विवरण निर्वाचन के समय उनके द्वारा प्रकाशित चुनाव घोषणा पत्रों में दिया रहता है। नागरिकों को चाहिए कि वे ऐसे राजनैतिक दलों के प्रत्याशियों के पक्ष में मतदान करें जो देश की एकता बनाए रखने और देश के सभी लोगों के हितों की रक्षा

करने के लिए तत्पर हों।

जाति, धर्म या प्रदेश की भावनाओं से प्रेरित होकर मतदान करने से लोकतंत्र शक्तिहीन हो जाता है। ऐसी भावना राष्ट्रीय एकता पर कुठाराघात करती है तथा सामाजिक-जीवन को प्रदूषित करती है। कभी कभी भाषा या जाति के नाम पर अयोग्य व्यक्ति मतदाताओं को बहका देते हैं। यदा-कदा ऐसा करने में वे सफल हो जाते हैं और चुनाव में जीत जाते हैं। उसके बाद में वे समाज के हितों की रक्षा करने के बजाय स्वार्थ-सिद्ध में लग जाते हैं।

अपने पक्ष में मत प्राप्त करने के लिए कभी-कभी प्रत्याशी लोग मतदाताओं को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देते हैं। उदाहरण के लिए वे मतदाताओं को अपनी सवारी गाड़ी पर मतदान केन्द्रों पर ले जाते हैं, उनके भोजन की व्यवस्था करते हैं और अन्य प्रकार से आतिथ्य सत्कार करते हैं। किसी प्रत्याशी के लिए ऐसा करना न तो वैधानिक है और न उचित ही।

निर्वाचन में जो भी प्रत्याशी सफल हो जाए उसे दलगत संकीर्ण भेद-भाव भुला देने चाहिए और उसे अपने निर्वाचन-क्षेत्र के सभी लोगों के सामान्य उत्थान में दत्त-चित्त हो जाना चाहिए। निर्वाचित होने के बाद किसी को अपना दल छोड़कर दूसरे दल में शामिल होना उचित नहीं है। ऐसा करने से देश का राजनैतिक जीवन भ्रष्ट हो जाता है। दल-बदल से निजी स्वार्थ मुख्य हो जाता है और जन-हित गौण हो जाता है। अतः हमें इन बातों से सदा सावधान रहना चाहिए और लोकतंत्र की रक्षा करनी चाहिए। लोकतंत्र की सफलता कठोर परिश्रम, पारस्परिक सहयोग और लोगों की ईमानदारी पर निर्भर है। जातीयता, राजनैतिक गतिविधियों से उदासीनता और शिक्षा में पिछड़ापन लोकतंत्र के प्रबल शत्रु हैं। लोकतंत्र की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि लोगों की इस प्रणाली में आस्था हो। उन्हें यह विश्वास होना चाहिए कि अन्य लोकतंत्रीय देशों की भांति वे भी लोकतंत्रीय ढंग से अपने देश की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। लोकतंत्र में बहुमत द्वारा लिए गए निर्णयों का पालन किया जाता है और अपेक्षित परिवर्तन शान्तिपूर्ण ढंग से किए जाते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

1. लोकतंत्र में सरकार का निर्माण किस प्रकार होता है ?
2. एक अच्छे मतदाता को वोट डालने के पूर्व किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?
3. क्या कारण है कि अपने देश में बहुत से लोग वोट डालने नहीं जाते ?
4. लोकतंत्रीय शासन में नागरिक सरकारी नीतियों का विरोध किन तरीकों से कर सकते हैं ?
5. अपने देश की लोकतंत्रीय व्यवस्था की सफलता में प्रमुख बाधाएं कौन-सी हैं ?
6. निम्नलिखित कथनों में लोकतंत्र से संबंध रखने वाले कथनों के सामने (√) का चिन्ह लगाओ—
   (क) विपक्षियों की भावनाओं का आदर किया जाता है ।
   (ख) बहुमत वाले राजनैतिक दल देश की सरकार बनाते हैं ।
   (ग) विद्वानों तथा स्त्रियों को विशेष अधिकार दिए जाते हैं ।
   (घ) अधिक संपत्ति वालों को विशेष अधिकार नहीं दिए जाते हैं ।
   (ङ) ग्रामवासियों को नगरवासियों की अपेक्षा कम अधिकार होते हैं ।
   (च) सभी नागरिकों को सरकार का विरोध करने का अधिकार होता है ।

कुछ करने को

1. अपने पड़ोसियों से मिल कर यह ज्ञात करो कि उनमें कितने लोग वोट डालने नहीं गए । इसका कारण भी पता लगाकर एक छोटा सा विवरण तैयार करो ।
2. मान लो कि तुम्हें अपने विद्यालय की छात्र—सभा के अध्यक्ष-पद के लिए वोट देना है । वोट देने के पूर्व तुम किन बातों का ध्यान रखोगे, इसकी एक सूची बनाओ ।

भाग–2

भारतीय समाज

लगभग 32,80,483 वर्ग किलोमीटर भारत देश के क्षेत्रफल में फैले हुए भू-भाग पर रहने वाले निवासी भारतीय समाज की रचना करते हैं। इस विस्तृत फैलाव के कारण भारतीय समाज के इन सदस्यों में, खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन के ढग तथा भाषायी आधार पर अनेकों विभिन्नताएं पाई जाती हैं।

भारतीय समाज में शामिल सदस्य, मुख्य रूप से हिन्दू तथा इस्लाम धर्म को मानने वाले हैं। किन्तु ईसाई, सिक्ख, बौद्ध तथा जैन धर्मों को मानने वालों की संख्या भी लाखों में है।

भारतीय समाज के सदस्य प्रायः पंजाबी, गुजराती, बंगाली, तमिलभाषी, बिहारी आदि नामों से भी जाने जाते हैं। यह कोई बुरी बात नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण भारतीय समाज के हित के स्थान पर क्षेत्रीय भावना के हित से सोचना गलत है।

भाषायी आधार पर भी भारतीय समाज अनेक प्रकार के वर्गों में बंटा हुआ है। चौदह राष्ट्रीय भाषाओं के अतिरिक्त लगभग 220 उप-भाषाएं हैं और बोलियों की संख्या तो हजारों में है।

चीन के बाद जनसंख्या की दृष्टि से भारतीय समाज का स्थान विश्व में दूसरा है। यह एक बड़े ही भयंकर खतरे का सूचक है जिसकी रोकथाम के लिए हर सम्भव उपाय किया जाना चाहिए।

यों तो संसार के सभी समाजों में किसी न किसी प्रकार का वर्ग भेद है किन्तु जाति प्रथा के आधार पर ऐसा कठोर विभाजन शायद ही किसी देश में दिखाई पड़े। भारतीय समाज हज़ारों प्रकार की जातियों तथा उपजातियों में बंटा हुआ है। जिसके कारण भारतीय समाज को सभी क्षेत्रों में बड़ी हानि उठानी पड़ी है।

जाति प्रथा की सबसे बुरी बात तो यह है कि कुछ जातियों को उच्च जातियां माना जाता है तथा कुछ को निम्न।

भारतीय समाज को ग्रामीण और शहरी समाज में भी बांटा जाता है। ग्रामीण निवासियों की संख्या 80% के लगभग है। इनका मुख्य पेशा खेती है। इनका रहन-सहन शहर के निवासियों की अपेक्षा नीचे स्तर का है। ग्रामों में रोजगार की भी कमी है। यही कारण है कि रोज़गार की तलाश में लोग शहरों की ओर भाग रहे हैं।

रूढ़िवादिता, अंधविश्वास तथा कुप्रथाओं ने भारतीय समाज को दुर्बल बना रखा है। जन्म, विवाह तथा मृत्यु के समय होने वाले संस्कारों पर अनावश्यक धन खर्च होता है। कदाचित इसका कारण निरक्षरता और अज्ञान है। आज के जागृत युग में भी 70% भारतवासी, पढ़ना तथा लिखना नहीं जानते।

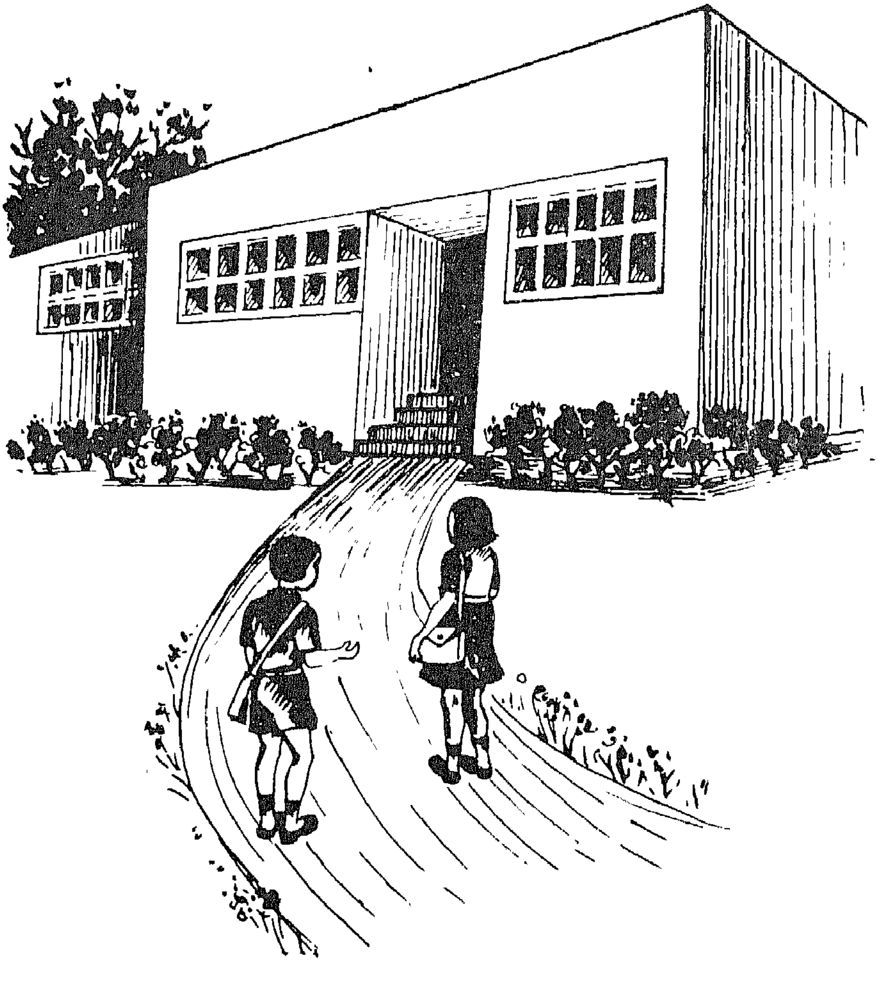
भारतीय समाज की सबसे बड़ी कमी आर्थिक पिछड़ापन है। इस समाज के करोड़ों व्यक्तियों को आज भी जीवन की और सुख-सुविधाएं तो दूर, दो समय का भरपेट भोजन तक नहीं मिल पाता। समाज अति अमीर तथा अति गरीब वर्गों में बंटा हुआ है।

उपरोक्त कही गई, सभी बातों का सम्पूर्ण समाज की प्रगति से सीधा संबंध है। आगे के अध्यायों में इन सब पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

अध्याय—3

लोकतंत्र और शिक्षा

राष्ट्र की उन्नति के लिए शिक्षा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है



लोकतंत्रीय सरकार को सुचारु रूप से चलाने के लिए शिक्षित होना जरूरी है। शिक्षित नागरिकों को अशिक्षित की अपेक्षा अपने अधिकारों और कर्तव्यों की अधिक जानकारी होती है। वे सार्वजनिक समस्याओं पर अधिक गंभीरता से विचार कर सकते हैं। उन्हें राजनीति के प्रश्नों की अधिक जानकारी हो सकती है। वे देश-विदेश की समस्याओं को भी समझ सकते हैं और उनके प्रति अपनी राय कायम कर सकते हैं।

हमारे देश में आज भी लगभग 70% लोग अशिक्षित हैं। स्त्रियों में शिक्षितों की संख्या तो और भी कम है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद शिक्षा के प्रसार पर बल दिया जा रहा है जिसके फलस्वरूप शिक्षितों की प्रतिशत संख्या बढ़ती जा रही है। लेकिन साथ ही जनसंख्या इतनी बढ़ रही है कि अशिक्षितों की संख्या घटने की बजाय बढ़ ही रही है।

भारत में शिक्षा का उत्तरदायित्व मूलत: राज्य सरकारों पर है। केन्द्र सरकार भी कुछ सुविधाएं प्रदान करती हैं। हमारे देश के संविधान में राज्यों को यह भी निर्देश दिया गया है कि राज्य चौदह वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करे। सभी राज्य सरकारों ने प्रारंभिक शिक्षा नि:शुल्क कर दी है किन्तु अनिवार्य शिक्षा की दिशा में अभी थोड़े ही राज्यों में ठोस कदम उठाए हैं।

सीमित साधन

शिक्षा के महत्व को सभी समझते हैं किन्तु देश के साधन इतने सीमित हैं कि शिक्षा की प्रगति अधिक तेजी से नहीं हो पा रही है। यदि सभी अशिक्षितों को कम से कम समय में शिक्षित करने की योजना बनाई जाए तो हमको बहुत बड़ी संख्या में स्कूल खोलने पड़ेंगे और वहां शिक्षा से संबंधित सामान जुटाना पड़ेगा। लाखों की संख्या में प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता होगी। इन सबके लिए हमें बहुत अधिक धन की आवश्यकता होगी।

शिक्षा

किसी देश की उन्नति के लिए शिक्षा का विशेष महत्व होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारत में शिक्षित व्यक्तियों की संख्या बहुत कम थी। विदेशी शासकों ने हमारे देश के उद्योग-धंधों को भी बढ़ावा नहीं दिया और इसीलिए तकनीकी शिक्षा तो नाममात्र को ही थी। एक ओर हमें शिक्षा प्रसार के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता पड़ी, दूसरी ओर उद्योग-धंधों के विकास के लिए प्रशिक्षित मैकेनिक, फिटर, ओवरसीयर तथा इंजीनियरों आदि का भी अभाव था। ऐसी दशा में शिक्षा के क्षेत्र में सीमित साधनों के कारण यह संभव नहीं हो सका कि हम संविधान की इच्छा पूरी कर सकें। अपने देश की आय हमें और भी बहुत से कामों में खर्च करनी होती है।

शिक्षा में प्रगति

फिर भी हमारी सरकार ने शिक्षा का प्रसार काफी बड़ी मात्रा में किया है। छठी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के ऊपर काफी बड़ी मात्रा में धन खर्च करने का विचार किया जा रहा है। उच्च शिक्षा के लिए नए विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई है तथा पुराने विश्वविद्यालयों की संख्या लगभग 115 तक पहुँच गई है।

व्यावसायिक तथा तकनीकी उन्नति के लिए विशेष प्रकार की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई है। इस प्रकार की शिक्षा से देश के उद्योग-धंधों के लिए प्रशिक्षित संस्थाएँ खोली गई हैं, जिन्हें "इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी" का नाम दिया गया है। ये संस्थान दिल्ली, कानपुर, खड़गपुर, मद्रास तथा बंबई में हैं। इसके अतिरिक्त देश के अनेक भागों में "क्षेत्रीय इंजीनियरिंग कालेज" भी खोले गए हैं। छोटे-छोटे उद्योग-धंधों के लिए प्रशिक्षित करने को देश के प्रमुख नगरों में "औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, इंडस्ट्रियल ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट" बड़ी संख्या में स्थापित हुए हैं। चिकित्सा, कृषि आदि विषयों के अध्ययन हेतु अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई है और उनकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि की जा रही है।

प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र



राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा

शिक्षा की अन्य समस्या उन वयस्क लोगों से संबंधित है जिन्हें अपनी बाल्यावस्था में शिक्षा का अवसर नहीं मिला या जिसकी पढ़ाई का क्रम गरीबी अथवा किसी अन्य कारण से टूट गया हो। इस ओर सरकार तथा निजी संस्थाओं ने विशेष प्रयत्न किए हैं, जैसे रात्रि-शालाओं तथा पुस्तकालयों की व्यवस्था करना और ग्रामवासियों के लिए उनकी समस्याओं के संबंध में उपयोगी वार्ताएं प्रसारित करना। इसके अतिरिक्त भजन-कीर्तन-नाटक आदि के माध्यम से भी प्रौढ़-शिक्षा का आयोजन किया जाता है। 2 अक्टूबर 1979 को विशाल और व्यापक रूप से राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा का कार्यक्रम लागू किया गया था।

अनौपचारिक शिक्षा

इस समय देश में 9-15 आयु वर्ग के करोड़ों ऐसे बालक तथा बालिकाएं हैं, जिन्हें नाम मात्र की शिक्षा भी नहीं मिली है। इस प्रकार के बालक तथा बालिकाओं को शिक्षित करने का एक व्यापक कार्यक्रम बनाया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 6,000 के लगभग केन्द्रों में कार्य हो रहा है।

इन सब प्रयत्नों के बाद भी निरक्षरता की समस्या बनी हुई है। लगभग दो तिहाई लोग अब भी निरक्षर हैं। नगरों की अपेक्षा ग्रामों में यह समस्या अधिक जटिल है। आवश्यकता इस बात की है कि चाहे नगरवासी हो चाहे ग्रामवासी, सभी को शिक्षित बनाना है। यदि हमारे देश के अधिकांश नागरिक अशिक्षित रहेंगे तो उनमें राजनैतिक चेतना का अभाव होगा। ऐसी दशा में वे न तो अपने अधिकारों का समुचित प्रयोग कर सकेंगे और न ही अपने कर्तव्यों की पूर्ति कर सकेंगे। स्वार्थी लोग भी उसके भोलेपन, उनकी निरक्षरता तथा अंधविश्वासों से लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे।

शिक्षा के प्रसार की गति को और अधिक तीव्र करने की आवश्यकता है। छ: वर्ष से ग्याहर वर्ष की आयु तक के प्रत्येक बालक को किसी न किसी प्रकार स्कूल में भेजा जाना चाहिए। यह भी ध्यान रखा जाए कि जब बालक शिक्षा पूरी कर चुके तो वह केवल नौकरियों की ओर ही न दौड़े अपितु उसमें अपना

स्वतंत्र व्यवसाय चलाने की क्षमता भी हो। शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी ऐसे सुधार हों कि शिक्षित नवयुवक बेरोजगार न रहें। शिक्षा का स्तर उठाने के लिए अधिक से अधिक शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। शिक्षकों के वेतन-क्रम में भी सुधार होना चाहिए जिससे देश के योग्यतम व्यक्ति शिक्षक का कार्य करने के लिए आकर्षित हों।

शिक्षा लोकतंत्र की प्राण है। शिक्षित नागरिक ही लोकतंत्र को आगे बढ़ा सकते हैं। वे ही उसे वास्तविक रूप से जनता का राज्य बना सकते हैं जिसमें सबके हितों की रक्षा समान रूप से हो और जिसका एकमात्र ध्येय जनकल्याण हो।

अभ्यास के प्रश्न

1. लोकतांत्रिक देश के नागरिकों का शिक्षित होना क्यों आवश्यक है। तीन कारण बताइए।
2. भारत में शिक्षा की समस्या दूसरे देशों से किस प्रकार भिन्न है ?
3. हमारे देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रगति हुई है उस पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।
4. प्रौढ़-शिक्षा के क्षेत्र में क्या-क्या कदम उठाए गए हैं ?
5. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर केवल एक वाक्य में दो :
   (क) छठी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर कितना धन खर्च होगा ?
   (ख) स्कूली पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त शिक्षा देने के और कौन-कौन से साधन हैं ?
   (ग) 9-14 आयु वर्ग के बालकों के लिए अनौपचारिक शिक्षा के कितने केन्द्र भारत में खोले गए हैं।

कुछ करने को

1. अपने अध्यापक की सहायता से, यदि आवश्यक हो तब, एक चार्ट बनाओ जिसमें शिक्षा विभाग के मुख्य-मुख्य पदाधिकारियों का पद तथा कार्य का उल्लेख हो।
2. शिक्षा के प्रसार में सहायक पांच शिक्षा सहायक सधानों का नाम लिखो।

अध्याय–4

जाति-प्रथा

जाति-प्रथा, भारतीय समाज का एक प्रमुख अंग है। जन्म के अनुसार जाति तथा एक निश्चित व्यावसाय को अपनाया जाना जाति की प्रमुख विशेषताएं हैं। दूसरे देशों में जाति का स्थान नगण्य है, जबकि हमारे देश में जाति-प्रथा ने समान व्यवस्था तथा सभी को प्रभावित कर रखा है। परन्तु आज परिस्थिति बदल चुकी है और हमें भी बदलना पड़ेगा।

जाति-प्रथा या वर्ण व्यवस्था, भारत में बहुत पुरानी है। इतिहासकारों का कहना है कि पूर्व वैदिक काल में, भारत निवासियों का मुख्य पेशा खेती था। खेती के लिए कुछ प्रारंभिक औजारों जैसे हल, बैलों के लिए जुआ आदि की आवश्यकता होती है, जिन्हें बनाने के लिए लुहार तथा बढ़ई आदि की आवश्यकता होती है। कपड़ा तैयार करने के लिए जुलाहों की आवश्यकता होती है। जेवरात के लिए सुनारों की आवश्यकता होती है। चमड़ा कमाने के लिए चर्मकार की आवश्यकता होती है और रोगों के उपचार के लिए वैद्य की आवश्यकता होती है। अतः पूर्व वैदिक काल में किसान, लुहार, बढ़ई, जुलाहा, सुनार, चमार तथा वैद्य मुख्य पेशे थे। इनमें आपस में विवाह सम्बन्ध स्थापित हो सकते थे। किसी प्रकार की ऊंच-नीच नहीं थी। किन्तु ज्यों-ज्यों आर्यों ने भारत भूमि पर धीरे-धीरे आगे फैलना प्रारंभ किया तथा यहां के मूल निवासियों को दस्यु बनाना प्रारंभ किया तभी इसी काल में पुरोहित तथा राजनय नाम के दो वर्गों का समाज में उदय

हुआ । पुरोहित आगे चलकर ब्राह्मण तथा राजनय क्षत्रिय कहलाए । इन्होंने अपने आप को अन्य पेशे वाले लोगों से ऊपर माना । इसी क्रम में आगे चलकर वैश्य और शूद्र बने ।

आज तो भारत का हिन्दू समाज हज़ारों की संख्या में जातियों तथा उप-जातियों में बंटा हुआ है । इनमें से कुछ जातियां ऊंची तथा कुछ नीची जातियां समझी जाती हैं । जो बालक जिस जाति में जन्म लेता है वह उसी जाति का समझा जाता है । वह अपनी जाति छोड़कर दूसरी जाति में नहीं जा सकता । प्रायः उसका रहन-सहन और रीति-रिवाज भी उसकी जाति में प्रचलित व्यवहारों के अनुसार निर्धारित होता है । ऐसा भी होता है कि अगर वह जाति के रीति-रिवाजों का उल्लंघन करे तो इससे उसकी जाति वाले अप्रसन्न हो जाते हैं । कभी कभी गांवों में उसे दंड भी भुगतना पड़ता है ।

जाति-व्यवस्था को जन्मजात बनाने में धर्म की रूढ़ियों ने बड़ी सहायता की है । यह कहा जाता था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मानुसार उच्च या निम्न परिवार, कुल अथवा जाति में जन्म लेता है । धीरे-धीरे इस विचार ने धर्म का बाना ही पहन लिया ।

धर्म से संबंधित होने के कारण, जाति व्यवस्था के नियम भी धर्म की ही भांति पवित्र बन गए । अतः जाति के बाहर विवाह करना, या अपने से नीची जाति वाले सदस्यों के साथ खाना-पीना धर्म विरुद्ध घोषित कर दिए गए । जाति-व्यवस्था के आधार पर ही, क्या खाने योग्य है और क्या नहीं, निर्धारित होने लगा ।

ऐतिहासिक दृष्टि से जाति-व्यवस्था देश के आर्थिक विकास में बहुत बाधक सिद्ध हुई । जो बालक जिस जाति में जन्म लेता, वह उस जाति के व्यवसाय को ही अपनाता था, चाहे देश को उस व्यवसाय की उतनी आवश्यकता होती अथवा नहीं । वस्तुओं की माँग बढ़ने के साथ-साथ लोग अपना व्यवसाय नहीं बदल सकते थे क्योंकि एक जाति से दूसरी जाति में जाना आसान नहीं था । प्रत्येक नवयुवक को अपने पूर्वजों के व्यवसाय को ही अपनाना पड़ता था, चाहे उसे वह व्यवसाय पसंद हो अथवा नहीं । जाति-प्रथा ने व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता पर

गहरी चोट की। इसका फल यह हुआ कि कार्यक्षमता घट गई और व्यक्तिगत साहस और उत्साह बहुत कुछ समाप्त हो गया। ये बातें अब धीरे-धीरे कम हो रही हैं, आशा है कि शिक्षा प्रसार के साथ-साथ, जातीय बंधन भविष्य में और सरल होते जाएंगे।

जाति-प्रथा ने भारतीय समाज को अलग-अलग वर्गों में विभाजित कर दिया। इससे राष्ट्रीय एकता को गहरी ठेस लगी। जातीयता की संकीर्ण भावना से प्रेरित होकर बहुत से लोग संपूर्ण भारतीय समाज के हित को भूल गए और अपनी श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए आपस में जूझते रहे। दुर्भाग्य से अब भी चुनाव आदि अवसरों पर जनता में ये भावनाएं देखने में आती है जो लोकतंत्र के सफल संचालन में बाधक हैं।

जाति-व्यवस्था के इन दोषों की ओर अनेक समाज-सुधारकों का ध्यान गया। स्वामी रामानंद, कबीर, राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर और दयानंद सरस्वती, महात्मा फुले आदि ने जाति-प्रथा की तीव्र आलोचना की। महात्मा गांधी ने अछूतों के साथ किए जाने वाले सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई।

आधुनिक काल में शिक्षा, विज्ञान तथा अनेक स्थितियों के फलस्वरूप जाति-व्यवस्था के बंधन ढीले पड़ने लगे हैं। पाश्चात्य शिक्षा ने लोगों का ध्यान इस व्यवस्था की बुराइयों की ओर आकर्षित किया। देश के औद्योगीकरण से इसमें सुधार आया। यातायात के साधनों ने भी इस दिशा में बहुत कार्य किया है। रेल, बस आदि में एक साथ यात्रा करने तथा नगर-जीवन के विकास ने इसका प्रभाव कम कर दिया है। गांधी जी के नेतृत्व में सभी भारतवासियों ने बिना जाति-पांति का विचार किए स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लिया।

स्वतंत्रता मिलने के बाद हमारे देश का संविधान बना। अस्पृश्यता को अवैध घोषित कर दिया गया और यह व्यवस्था की गई कि जाति-पांति के आधार पर राज्य द्वारा कोई भेद-भाव न किया जाए तथा शिक्षा, रोजगार आदि में सबको समान अवसर प्राप्त हों। कुओं, तालाब, मंदिर, होटल, रेस्तरों, सिनेमाघर अथवा अन्य सार्वजनिक स्थानों में जाति के आधार पर किसी को रोका न जाए। इस

प्रकार हमारे संविधान में सामाजिक समानता पर जोर दिया गया है। छुआ-छूत संविधान की नजर में उचित नहीं है। हमें भी इसे अपने समाज से निकाल ही देना चाहिए।

इन सब के होते हुए भी देश में जाति-प्रथा के कड़े बंधन कायम हैं। अंतर्जातीय विवाह व खान-पान अभी भी सीमित हैं। गांवों में जाति-प्रथा का प्रभाव बहुत अधिक दिखाई पड़ता है। जातीयता के आधार पर आज भी पक्षपात-पूर्ण व्यवहार होता है। इसके प्रति भी हमारे क्या कर्तव्य हैं, इस पर हमें विचार करना चाहिए।

राष्ट्रीय उन्नति के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता, क्षमता और शिक्षा के अनुसार राष्ट्रीय जीवन में स्थान प्राप्त हो। मतदान, नियुक्तियों, शिक्षा-संस्थानों में प्रवेश यदि जाति-पांति को देखकर होगा तो न केवल योग्य व्यक्ति उचित स्थान पाने से वंचित रह जाएंगे, वरन् अयोग्य व्यक्ति इन स्थानों में पहुंच जाएंगे। अत: लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए इस प्रकार की जातीयता की मनोवृत्ति का अंत करना ही होगा।

इस समस्या का समाधान सरल नहीं है। इसे मिटाने के लिए उचित शिक्षा का प्रसार आवश्यक है। अच्छी शिक्षा से ही मनुष्य की मनोवृत्ति उदार बनती है। गरीबी का भी बड़ा हाथ रहा है। जब नौकरियां मिलनी कठिन हों तो जाति-पांति का नाम लेने वाली स्थितियां नौकरी देने वाले को प्रभावित करती हैं। नौकरी देने वाला भी सजातीय बंधुओं की सहायता करने की सोचता है। यदि रोजगार की कमी न हो तो कोई इसका सहारा क्यों लेगा। आर्थिक समृद्धि से जातीयता की भावना को मिटाने में सबसे बड़ी सहायता मिलेगी।

अभ्यास के प्रश्न

1. प्राचीन काल में हिन्दुओं के मुख्य वर्ण कौन-कौन से थे ?
2. वंशगत आधार पर जाति-प्रथा की चार बुराइयों का उल्लेख करो।

3. जाति-प्रथा धर्म से किस प्रकार संबंधित है ?
4. भारतीय संविधान में अस्पृश्यता निवारण के लिए किस प्रकार के प्रावधानों का उल्लेख किया गया है ?
5. उन तीन धार्मिक सुधारकों का नाम बताइए जिन्होंने जाति-प्रथा की बुराइयों को दूर करने के लिए अथक प्रयास किए।
6. उन वक्तव्यों पर सही का चिन्ह अंकित करो जिन्हें तुम सही मानते हो।
   (क) अति प्राचीन काल में मुख्यत: चार वर्ण ही थे।
   (ख) जाति-प्रथा कोई प्रकृति प्रदत्त व्यवस्था नहीं है अपितु इसका निर्माण मनुष्यों ने किया है।
   (ग) जाति-प्रथा, आर्थिक उन्नति में सहायक होती है।
   (घ) अस्पृश्यता को ग़ैरकानूनी घोषित कर दिया है।
   (च) निम्न जाति में जन्म हमारे पिछले जन्म के पापों का फल है।

अध्याय–5

भारतीय समाज का कलंक—अस्पृश्यता

जाति भेद ने हिन्दू समाज को जो समस्याएं प्रदान की हैं, उनमें सबसे अधिक विनाशकारी और मानवीय समस्या अस्पृश्यता या छूत-अछूत की है। राष्ट्रपिता गांधी जी ने इसके संबंध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा था—"अस्पृश्यता या छुआछूत जिस रूप में आज हिन्दू धर्म में प्रचलित है, वह भगवान और मनुष्य दोनों के विरुद्ध है। अतः यह एक विष की तरह है जो हिन्दू धर्म को खाये जा रहा है। मेरी राय में हिन्दू शास्त्रों में इसके लिए स्वीकृति नहीं है।"

हमारे देश की जनसंख्या के लगभग 21 प्रतिशत लोग आज भी इस अस्पृश्यता रूपी कलंक से दुखी हैं। इतनी बड़ी संख्या को हीन समझकर आज भी काफी बड़ी संख्या में लोग उन्हें समाज से बाहर मानते हैं। हमारे लोकतंत्र को यह भावना दुर्बल बनाती है। इस प्रकार का भेद-भाव वास्तव में लोकतंत्र के आदर्शों के विरुद्ध है। अनेक समाज-सुधारकों ने इस सामाजिक कुरीति के विरुद्ध आवाज उठाई। महात्मा गांधी ने तो अछूत शब्द का ही प्रयोग करना बंद कर दिया। उन्होंने अछूतों को 'हरिजन' कहकर पुकारा तथा छुआछूत की भावना को अनैतिक बताया। वे स्वयं प्रायः दिल्ली हरिजन बस्ती में आकर रहते थे। उनके आश्रम में छुआछूत का भेद-भाव नहीं रखा जा जाता था। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए सबको, बिना जाति-पांति का भेद-भाव किए, शामिल होने के लिए बुलाया। राष्ट्रीय आंदोलन के द्वार सबके लिए खुले



अस्पृश्यता
अपराध है

थे। जगह-जगह पर सामाजिक भोज आयोजित किए गए, वहां जाति-पांति के बंधन तोड़कर हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र सभी सम्मिलित होते थे।

इस प्रकार जाति-पांति के बंधन ढीले पड़ते गए तथा अछूतों के प्रति भी लोगों का दृष्टिकोण उदार होता गया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे संविधान में समानता के आदर्श को स्वीकार किया। जाति, रंग, लिंग, धर्म आदि के आधार पर भेद-भाव किया जाना संविधान द्वारा वर्जित है। अस्पृश्यता के व्यवहार को संविधान ने निषिद्ध घोषित कर दिया है। साथ ही यह व्यवस्था भी की गई है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उद्धार के लिए उन्हें विशेषाधिकार और सुविधाएं दी जाएंगी, उदाहरणार्थ विधान सभाओं और लोक सभा में कुछ स्थान इनके लिए सुरक्षित होंगे। इसी प्रकार सरकारी नौकरियों में भर्ती करते समय उनका विशेष ध्यान रखने का आदेश संविधान देता है। इस आदेश का पालन करते हुए सरकारी नौकरियों में कुछ स्थान इनके लिए सुरक्षित हैं। अस्पृश्यता का व्यवहार करने वालों के लिए 1955 के कानून द्वारा दंड की व्यवस्था की गई है।

इन सब बातों के होते हुए भी तथा पिछड़े वर्गों के विकास पर की गई भारी रकम और कानूनों के बावजूद भी अस्पृश्यता हिन्दू समाज में अभी तक बनी हुई है। कुछ स्थानों पर तो आज भी उच्च वर्ण कही जाने वाली जातियां अपनी पूरी हिंसात्मक शक्ति से पिछड़े वर्गों पर हमला कर देती हैं। उच्च वर्ण के लोग, कभी-कभी तो घातक हथियारों का भी प्रयोग करते हैं। हम सभी देशवासियों के लिए, यह बड़े शर्म की बात है। ऐसा लगता है कि केवल महान व्यक्तियों के विचार और कानूनों से अस्पृश्यता के कलंक को नहीं मिटाया जा सकता। अस्पृश्यता को दूर करने के लिए सरकारी और स्वयंसेवी संस्थाओं के द्वारा अनेक प्रयत्न किए गए, किन्तु अस्पृश्यता अभी तक निर्मूल नहीं हो पाई है।

डा० भीमराव अम्बेडकर ने कहा था "हिन्दुओं का अछूतापन" एक अनहोनी घटना है, संसार के किसी दूसरे हिस्से में मानवता ने आज तक कभी इसका अनुभव नहीं किया, किसी दूसरे समाज में इस जैसी कोई चीज है ही नहीं।

अस्पृश्यता क्या है ?

यों तो 'अस्पृश्यता' शब्द बहुत प्रचलित और सामान्य है तथा इसके अर्थ

से हम सभी परिचित हैं, किन्तु इसकी निश्चित परिभाषा करना कठिन है। फिर भी अस्पृश्यता के अंतर्गत निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया जा सकता है।

(अ) जब कभी भी समान धर्म मानने वाले कुछ व्यक्तियों को मन्दिर या इसी प्रकार के पूजास्थल में जाने से रोका जाए तो हम कहेंगे कि यह अस्पृश्यता है।

(ब) किसी पवित्र जलाशय, कुआँ, झरने या जलस्रोत के प्रयोग की कुछ लोगों को तो सुविधा हो और कुछ को नहीं, जिन व्यक्तियों को इनका प्रयोग वर्जित हो, वे अछूत कहलाते हैं।

(स) दूकान, होटल, सार्वजनिक जलपान गृह, सार्वजनिक मनोरंजन स्थल या सार्वजनिक आवागमन के साधन, अस्पताल, औषधालय, शैक्षणिक संस्था में पहुंचने के प्रयोग से कुछ व्यक्तियों को रोकना भी अस्पृश्यता है।

अस्पृश्यता का दुष्परिणाम

अस्पृश्यता की सबसे दुखद बात यह हुई कि करोड़ों की संख्या में हरिजन लोग अपनी दीन-हीन दशा के लिए, उच्च वर्ण समझे जाने वाले हिन्दुओं से घृणा और द्वेष करने लगे। कहीं-कहीं तो उनकी प्रतिक्रिया बहुत भयंकर रूप में व्यक्त हुई। उदाहरण के लिए दक्षिण भारत में पारिया लोग ब्राह्मण को शत्रु के रूप में देखते हैं।

अंग्रेजों ने भी भारतीय समाज की इस कमजोरी से लाभ उठाकर अछूतों को हिन्दुओं की धारा से अलग करना चाहा। गांधी जी ने अपने अनशन द्वारा अंग्रेजों की एक न चलने दी।

हिन्दू समाज की इस बुराई के कारण ही इतिहास साक्षी है कि करोड़ों व्यक्तियों ने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया था।

अस्पृश्यता निवारण के प्रयत्न

भारत देश की जनसंख्या का पांचवां भाग अनुसूचित जातियों, आदिम

जातियों एवं पिछड़े वर्ग का है। उच्च जाति समझे जाने वाले लोग इनसे खान-पान का व्यवहार नहीं रखते। भारतीय संविधान में इन वर्गों की सुरक्षा एवं संरक्षण की व्यवस्था की है। संविधान में लिखा है कि केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या उनमें से किसी आधार पर राज्य किसी नागरिक के प्रति भेद-भाव नहीं बरतेगा। अस्पृश्यता का उन्मूलन किया जाना है, और किसी भी रूप में उस पर आचरण करना निषिद्ध है। सार्वजनिक हिन्दू धार्मिक स्थानों का द्वार सभी वर्गों के हिन्दुओं के लिए खुले रहेंगे। सरकारी नौकरियों में स्थान सुरक्षित रखे गए हैं। संसद तथा राज्यीय विधान मण्डलों में विशेष प्रतिनिधत्व दिया गया है।

सरकार ने अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए केवल कानून ही नहीं बनाए हैं, बल्कि हरिजनों का सामाजिक स्तर ऊंचा उठाने के लिए अनेक व्यावहारिक कदम उठाए हैं। पत्र-पत्रिकाओं में अस्पृश्यता के विरुद्ध लेख लिखवाए हैं। चलती-फिरती गाड़ियों द्वारा प्रचार कार्य किए गए हैं। अस्पृश्यता के विरुद्ध फिल्में तैयार की गई हैं। देश के वहुत से राज्य हरिजन सप्ताह और हरिजन दिवस मनाते हैं। इन अवसरों पर अस्पृश्यता विरोधी प्रचार भी किया जाता है। हरिजन बस्तियां साफ करने, सहभोज, हरिजनों के साथ कुओं से पानी पीने, मन्दिर में प्रवेश करने आदि के कार्यक्रम सम्पन्न किए जाते हैं। कुछ राज्यों में हरिजन कल्याण थानों की स्थापना भी की गई है। कुछ राज्य सरकारें उन गांवों को पुरस्कार देती हैं जो अस्पृश्यता निवारण के कार्य में अच्छी प्रगति करते हैं। सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में हरिजन उत्थान के लिए काफी बड़ी मात्रा में धनराशि व्यय की है।

अस्पृश्यता निवारण के इन सरकारी प्रयत्नों के फलस्वरूप इस दिशा में उतनी प्रगति नहीं हुई है, जितनी होनी चाहिए। अब भी हरिजनों को बहुत ही थोड़े मन्दिरों में प्रवेश मिल सका है। अब भी उनको कुओं, होटलों आदि में घुसने नहीं दिया जाता है। काम के बदले में पूरी-पूरी मजदूरी नहीं मिल पाती है।

अस्पृश्यता निवारण कैसे हो ?

(क) अस्पृश्यता, समझे जाने वाले लोगों की आर्थिक दशा सुधारी जाए। गृह उद्योग-धंधों के विकास में और अधिक मदद की जाए।

(ख) चल-चित्रों, नाटकों, गीतों, भजनों, भाषणों, पुस्तकों आदि के द्वारा जनमत जागृत किया जाए।

(ग) नगरों और गांवों में ऐसी बस्तियां बसाई जायें जिनमें सभी जातियों के निवासी मिल-जुलकर रहते हों।

(घ) बालक देश के भावी नागरिक हैं। उनके हृदय परिवर्तन के लिए ऐसी शिक्षा दी जाए जिसमें अस्पृश्यता की गन्ध न हो। समय-समय पर ऐसे कैम्प लगाए जायें, जिनमें विभिन्न जातियों के बालक एक-दो सप्ताह साथ-साथ रह सकें। उच्च जाति माने जाने वाले बालकों को, हरिजन बालकों को अपने परिवार में मिलने के लिए बुलाना चाहिए।

(ङ) अस्पृश्यता की जड़ें गांवों में गहरी हैं, अतः सरकार उन गांवों को पुरस्कार देने की व्यवस्था करे, जिनमें अस्पृश्यता की भावना समाप्त हो गई है।

अभ्यास के प्रश्न

1. उन परिस्थितियों का उल्लेख करो जिनके कारण अस्पृश्यता का प्रचलन भारतीय समाज में हुआ।
2. अस्पृश्यता के कलंक को धोने में गांधी जी ने किस प्रकार योगदान दिया ?
3. भारतीय संविधान में अस्पृश्यता के कलंक को मिटाने के लिए किस प्रकार के प्रावधानों का उल्लेख किया गया है ?

4. उन दो बुराइयों का उल्लेख करो जिन्होंने जाति प्रथा के कारण, भारतीय समाज को कलंकित कर रखा है।
5. अस्पृश्यता को दूर करने के लिए, भारतीय सरकार ने कौन-कौन से व्यावहारिक पग उठाए हैं ?
6. निम्नलिखित का संक्षिप्त उत्तर दो।
   (क) हमारे देश के अस्पृश्य समझे जाने वाले व्यक्तियों को गांधी जी ने कौन-सा नया नाम दिया।
   (ख) उच्च वर्ण मानी जाने वाली जातियों ने निम्न जाति समझी जाने वाली जातियों को किस प्रकार की साधारण सुविधाओं से वंचित कर रखा है ?
   (ग) भारतीय जनसंख्या के कितने प्रतिशत लोग परिगणित जाति तथा परिगणित जनजाति के अन्तर्गत आते हैं।

कुछ करने को

(क) उन पांच जनजातियों के नाम बताओ जो मध्य प्रदेश और बिहार राज्यों में पाई जाती हैं।

(ख) उन दो कारणों का उल्लेख करो जिनके कारण हरिजनों और जनजातियों पर अत्याचार किए जाते हैं।

अध्याय–6

अन्य सामाजिक समस्याएं

पिछले अध्यायों में भारतीय समाज के विभिन्न अंगों का वर्णन किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त, भारतीय समाज का भिखमंगी, मद्यपान, दहेज प्रथा, साम्प्रदायिकता, तथा बालकों के साथ होने वाले अत्याचारों जैसी समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है।

भिखमंगी

भारतीय समाज पर भिखारियों का बहुत बड़ा भार है। भारत में यह समस्या प्राचीन काल से ही चली आती है। अनेकों कानूनों के बावजूद भी इस समस्या का अन्त नहीं हुआ है। लाखों की संख्या में पुरुष, स्त्री और बालक, नगरों तथा गांवों में भीख मांगते दिखाई पड़ते हैं। भारत में दिखाई देने वाले भिखारियों को मुख्यत: निम्न भागों में बांटा जा सकता है। कुछ तो घोर दरिद्रता के कारण भीख मांगते हैं, कुछ शारीरिक रूप से अन्धे, लूले-लंगड़े, कोढ़ी तथा रोग ग्रस्त हैं। कुछ लोग बेकारी के कारण भी भीख मांगने लगते हैं। परन्तु काफी बड़ी संख्या में ऐसे भी लोग हैं जो शरीर से पूर्णत: हृष्ट-पुष्ट होने पर भी भीख मांगते हैं। उस समय तो हमारा सिर शर्म से बहुत ही झुक जाता है, जब हम ऐतिहासिक स्थानों पर, विदेशी पर्यटकों को इनसे चारों ओर से घिरा हुआ तथा भीख मांगते देखते हैं। तीर्थस्थानों में तो इनकी संख्या लाखों में होती है।



भिखमंगी और मद्यपान सामाजिक बुराइयां हैं

समस्त भारत में भिखारियों की संख्या एक करोड़ के लगभग है। भारत के प्रत्येक बड़े शहर में तो भिखारियों के संगठन भी पाये जाते हैं। इन संगठनों का एक सरदार या पूंजीपति होता है और अनेक मध्यजन होते हैं जो अपने संगठन के भिखारियों के रहने तथा खाने-पीने की व्यवस्था भी करते हैं।

भिक्षावृत्ति को निरोधात्मक विधि तथा उपचारात्मक विधि के द्वारा समाप्त किया जा सकता है। निरोधात्मक विधि का अर्थ है सरकार भिखमंगी के विरुद्ध कानून बनाए तथा उन कानूनों का कठोरता से पालन करवाए। उपचारात्मक विधि के अंतर्गत भिखारी गृहों की स्थापना तथा भिखारियों को उनके उपयुक्त धन्धे सिखाकर, सम्मानपूर्ण जीवन जीने योग्य बनाना। भारत देश के अनेक राज्यों ने भिखारियों के पुनर्वास के लिए इस प्रकार के गृहों की स्थापना की हुई है।

मद्यपान

एक अन्य महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या मद्यपान की है। इसको सुलझाने का गांधी जी ने बहुत प्रयास किया था। उन्हीं के उपदेशों के फलस्वरूप मद्य-निषेध को राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में सम्मिलित किया गया।

इसको कार्यान्वित करने के लिए 1954 में एक मद्यनिषेध-जांच-समिति की नियुक्ति की गई। 1956 में जांच-समिति की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए लोक सभा में इस कार्यक्रम को देश के विकास-कार्यक्रम के अंतर्गत शामिल करने का प्रस्ताव पारित किया। सभी पंचवर्षीय योजनाओं में भी इस पर बहुत बल दिया गया है।

अनेक राज्यों में मद्यपान पर पूर्ण या आंशिक रूप से नियंत्रण लगाए गए हैं। किन्तु कानून के द्वारा सामाजिक दोषों को पूर्णतया बंद करना संभव नहीं है। इन्हें जन-सहयोग तथा जनमत के द्वारा दूर किया जा सकता है। उसके लिए भी जनता को शिक्षित किया जाना चाहिए। लोगों को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि मदिरापान से आदमी का स्वास्थ्य गिर जाता है तथा उनमें चरित्रगत दुर्बलताएं आ जाती हैं। ये राष्ट्र की उन्नति में बाधक हैं।

इसलिए सरकार और जनता दोनों का ही कर्तव्य है कि जनता के स्वास्थ्य

की रक्षा की जाए। उन्हें चाहिए कि अनाचारों और दुर्व्यसनों को रोकने तथा भाईचारे की भावना से प्रेरित होकर समाज की उन्नति करें। हमें यह न भूलना चाहिए कि लोकतंत्र की सफलता सच्चरित्र, सदाचारी और शिक्षित नागरिकों पर ही निर्भर है।

दहेज प्रथा

दहेज उस सम्पत्ति या उपहारों को कहते हैं, जो कन्या के अभिभावक विवाह के अवसर पर कन्या और वर को देते हैं। हिन्दुओं में आजकल इस प्रथा का बहुत प्रचार है। किसी समय यह प्रथा, हिन्दुओं में उच्चकुल समझे जाने वाले लोगों तक ही सीमित थी। किन्तु आज तो इस प्रथा ने सभी जातियों को बुरी तरह प्रभावित कर रखा है। आजकल तो हिन्दू धर्मावलम्बी ही नहीं, अन्य धर्मावलम्बी भी इस प्रथा की बुराइयों में फंसते चले जा रहे हैं।

वास्तव में दहेज का जो रूप आज प्रचलित है, उसे दहेज न कहकर 'वर-मूल्य' कहना ठीक होगा। दहेज को लेकर आजकल पूरी सौदेबाजी होती है। दहेज का वर्तमान रूप अत्यंत भयंकर हो गया है। यही कारण है कि हिन्दुओं में लड़के का होना वरदान और लड़की का होना अभिशाप माना जाता है। इंजीनियर, डाक्टर, राजपत्रित अधिकारी का मूल्य तो कहीं-कहीं लाखों में आंका जाता है। दहेज की इस व्यवसाय वृत्ति के परिणामस्वरूप अनेकों सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं।

(1) दहेज की कुप्रथा के कारण कभी-कभी लड़कियां आजन्म अविवाहित रह जाती हैं।

(2) दहेज के कारण, लड़कियों के लिए लड़के खोजने में बहुत कठिनाई होती है। चार-छ: वर्ष तक किसी लड़की के लिए लड़का न मिलना बहुत ही सहज बात होती है। प्राय: वर खोजने में लोगों का बहुत अधिक धन तथा समय नष्ट हो जाता है।

(3) दहेज प्रथा के कारण विवाह के पुण्य अवसर पर संघर्ष की नौबत आ जाती है, कभी-कभी तो बारातें तक लौट जाती हैं।

(4) जो लड़कियां विवाह में अधिक दहेज नहीं ला पातीं उनको ससुराल में अनेक प्रकार के कष्ट दिए जाते हैं। अनेकों विवाहित लड़कियों की हत्या और आत्महत्या के समाचार, समाचार पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं।

(5) कम दहेज के कारण, लड़कियों को अपनी ससुराल में सास-ससुर की अपमानजनक बातें सुननी पडती हैं। परिवार में तनाव बना रहता है।

दहेज प्रथा के विरुद्ध सरकार ने कानून बना रखा है। इस कानून को कुछ और भी शक्तिशाली बनाया जा रहा है। जिससे दहेज की बुराइयों को रोका जा सके। किन्तु कानून के साथ-साथ हृदय परिवर्तन भी होना चाहिए। जब तक स्वयं आम जनता को इस प्रथा से घृणा नहीं होगी, तब तक इसका उन्मूलन संभव नहीं है। कितने ही कानून और नियम बने, लोग गोपनीय रूप से दहेज लेते-देते रहेंगे। अतः प्रचार और प्रसार के साधनों द्वारा जनमत को दहेज के विरुद्ध किया जाय। अंतर्जातीय विवाहों का प्रचलन भी दहेजप्रथा की बुराई के उन्मूलन में सहायक सिद्ध हो सकता है।

भारतीय समाज में नारी का स्थान

यों तो अनेकों धर्मग्रन्थों ने नर और नारी को सामाजिक दृष्टि से समान बनाया है, किन्तु वास्तविकता इससे हटकर रही है। भारतीय नारी सामाजिक और धार्मिक कुप्रथाओं के कारण प्रायः दुखी रही है। बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, विधवा जीवन आदि अनेकों काले स्थलों ने भारतीय नारी के जीवन को अत्यंत दयनीय अवस्था में रखा है। ऐसा कहना शायद सच ही होगा कि भारतीय नारी दासों की दास रही है।

भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई के समय भी देश के नेताओं ने भारतीय नारी का सहयोग मांगा। इन नेताओं से प्रेरणा पाकर, भारतीय महिला आगे आई और स्वतंत्रता के आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। श्रीमती सरोजनी नायडू, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय, राजकुमारी अमृत कौर आदि के नाम तो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजी राज्य के समय राजाराममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, महर्षि



स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहना चाहिए

दयानन्द सरस्वती, महर्षि कर्वे, जोतिराव फुले, पंडिता रमाबाई आदि ने नारी उत्थान के कार्यों में उच्च कोटि की भूमिका निभाई।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात्, भारतीय समाज में नारी की दशा सुधारने के अनेकों कार्य किए गए।

1. लड़कों के साथ लड़कियों की शिक्षा के लिए भी देश के अनेक भागों में शिक्षा संस्थाएं खोली गई।
2. हिन्दुओं में बहु पत्नी-विवाह को समाप्त कर दिया गया।
3. 'हिन्दू विवाह तथा तलाक कानून' बनाकर विवाहित नारी के जीवन को अधिक निडर और सुखी बनाने का प्रयास किया गया। एक पत्नी के जीवित रहते, कोई भी पुरुष दूसरा विवाह नहीं कर सकता। हिन्दू उत्तराधिकार नियम में परिवर्तन करके, कन्याओं को भी पिता की सम्पत्ति में हिस्सा बांटने का अधिकार दिया गया।

4. दहेज प्रथा के विरुद्ध कानून बनाया गया।
5. वेश्यावृत्ति को समाप्त कर दिया गया।
6. केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना की गई। यह बोर्ड स्त्री कल्याण के लिए विशेष रूप से कार्य करता है।
7. स्त्रियों की प्रौढ़ शिक्षा के लिए केन्द्र खोले गए।

राष्ट्रीय स्तर के अलावा, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी नारी उत्थान के कार्य किए गए हैं। संयुक्त राष्ट्र ने सन् 1978 को 'नारी वर्ष' घोषित किया। इसका उद्देश्य पुरुष और स्त्री को समाज में एक दूसरे के समान मानना है।

इन सब प्रयासों के बावजूद भी भारत में पुरुष की अपेक्षा नारी का स्थान बहुत नीचा है। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि सभी क्षेत्रों में स्त्रियां पुरुषों से पीछे हैं।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि भारत देश को समृद्धिमान बनाने में स्त्रियां पुरुषों से पीछे रही हैं। खेतों, चाय बागानों, कल-कारखानों, कोयले और लोहे की खानों, सड़क मार्ग निर्माण, भवन निर्माण, बांध निर्माण, नर्स, डाक्टर, अध्यापिका आदि सभी क्षेत्रों में भारतीय नारी का ठोस योगदान रहा है। जितना नारी ने भारतीय समाज को दिया है उसकी तुलना में उसे समाज में समुचित स्थान नहीं मिला है। हमारे देश में आज भी पुरुषों की तुलना में विज्ञान, शिक्षा, सरकारी नौकरियों आदि के क्षेत्र में स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। आशा की जानी चाहिए कि इस प्रकार का भेदभाव निकट भविष्य में समाप्त हो जाएगा।

भारतीय समाज और बालक

सन् 1979 की अनुमानित भारतीय जनसंख्या के अनुसार भारत में चौदह वर्ष तक की आयु के बालक तथा बालिकाओं की संख्या 26 करोड़ के लगभग है। इतनी बड़ी संख्या के बालकों को उचित भोजन, उचित रहन-सहन की सुविधा, उचित शिक्षा आदि का प्रबंध करना समाज के लिए बड़ा ही कठिन कार्य है। जिन माता-पिता की आर्थिक तथा सामाजिक दशा ठीक होती है, वे तो अपने बालकों को सभी प्रकार की सुविधा तथा शिक्षा के अवसर प्रदान करते हैं। किन्तु इस

देश में अधिकतर ऐसे माता-पिता हैं, जो अपने बालकों को दो समय का भरपेट भोजन तक नहीं दे पाते। वे ऐसे स्थानों में रहते हैं जहां चारों ओर गन्दगी फैली रहती है।



1979 अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष

ऐसी दयनीय अवस्थाऐं प्राय: बाल अपराधों को जन्म देती हैं। बाल अपराध दो शब्दों से मिलकर बना है, बाल और अपराध। बाल का अर्थ है लड़कपन, तरुण, किशोर तथा अपराध का अर्थ है समाज विरोधी कार्य।

ऐसी बात नहीं है कि बाल-अपराध, केवल भारत में ही पाया जाता है। संसार के लगभग सभी देशों में बाल अपराध होते हैं। यह भी जान लेना आवश्यक है कि कोई भी बालक जन्म से ही अपराधी नहीं होता। बाल अपराध के मुख्य कारणों में भगोड़ापन, अवारापन, पारिवारिक दशाऐं अर्थात् परिवार के सदस्यों का एक दूसरे से लड़ना-झगड़ना शामिल है। समाज शास्त्रियों ने इसके अतिरिक्त भी अनेकों कारण बताए हैं। बाल अपराधों की रोकथाम के लिए भारत सरकार पूरे-पूरे प्रयास कर रही है। इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् 1979 'बालवर्ष' के रूप में घोषित किया। इसका अर्थ है कि विश्व के सभी देशों की सरकारें बालकों के सभी रूपों में विकास के लिए भरसक प्रयास करेंगी और ऐसी योजनाऐं बनाएगीं, जिससे बालकों को एक ऐसा सुखद वातावरण मिलेगा जो उन्हें अपने देश तथा विश्व का सुयोग्य नागरिक बना सकेगा।

साम्प्रदायिकता

भारतीय देशवासियों और राष्ट्रवादी नेताओं के प्रयास से 1947 में भारत स्वतंत्र हो गया। सन् 1920 ई० के बाद का भारत स्वतंत्रता आन्दोलन मुख्यत:

गांधी जी के नेतृत्व में चला । गांधी जी हिन्दू धर्मावलम्बी थे, किन्तु इस देश में प्रचलित सभी धर्मों को बड़े आदर से देखते थे । सभी धर्मावलम्बियों के कार्यकर्त्ता गांधी जी के साथ थे क्योंकि ये लोग जानते थे कि गांधी जी एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र तथा राज्य की स्थापना के लिए स्वतंत्रता का आन्दोलन चला रहे हैं । गांधी जी एक ऐसे राज्य की स्थापना के लिए संघर्ष कर रहे थे जो बिना किसी पक्षपात के सभी धर्मों को समान रूप से विकसित होने का अवसर प्रदान करे । धर्मनिरपेक्ष-वाद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति किसी भी धर्म को अपनाने में, पूजा-पाठ में सरकार की ओर से स्वतंत्र है, किसी भी धर्म को या किसी भी व्यक्ति को किसी विशेष धर्म का होने के नाते ऊंचा स्थान नहीं दिया जाता ।

ऐसा सब कुछ होने के पश्चात् भी हमारे देश के विभिन्न धर्मों के बीच दूरी अभी भी बनी हुई है । इतना ही नहीं, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश में अनेकों साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं । हिन्दू-मुसलमानों के बीच, मुसलमानों में भी शिया और सुन्नियों के बीच, दंगे हुए हैं । सिक्खों में अकाली और निरंकारियों आदि के बीच इन साम्प्रदायिक दंगों के कारण जन और धन दोनों की अपार हानि होती है ।

आज भी देश में सम्प्रदायों के आधार पर राजनैतिक दल बने हुए हैं । कभी-कभी इनके नेता अनजान लोगों की भावनाओं को बहका तथा भड़काकर साम्प्रदायिक दंगे करा डालते हैं ।

साम्प्रदायिक दंगों से किसी भी समुदाय या वर्ग को लाभ नहीं पहुंचता इन दंगों से सामाजिक जीवन, अस्त-व्यस्त हो जाता है । साम्प्रदायिक दंगों के कारण देश का उत्पादन गिर जाता है । सरकार को सद्‌भाव और शान्ति बनाए रखने के लिए करोड़ों रुपए खर्च करने पड़ते हैं ।

साम्प्रदायिकता के नाम पर लोकतंत्र में वोट मांगे जाते हैं । धर्म के आधार पर चुनाव लड़े जाते हैं । इस प्रकार लोकतंत्र में कोढ़ पैदा हो जाता है जो उसके स्वरूप को गन्दा कर डालता है ।

आज संसार के मानचित्र पर कितने ही ऐसे देश हैं, जहां विभिन्न धर्मों के मानने वाले लोग रह रहे हैं । किन्तु ये लोग धर्म को व्यक्तिगत विश्वास की बात

मानते हैं। धर्म को राजनीति से अलग रखते हैं। अपने देश में भी ऐसा ही विश्वास जगाना होगा, तभी इस साम्प्रदायिक विष से मुक्ति पा सकेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

1. भिखमंगी की बुराइयां बताइए।
2. भिखमंगी को दूर करने के कौन-कौन से उपाय किए गए हैं?
3. मद्यपान को भारत में एक सामाजिक बुराई माना जाता है। ऐसा क्यों है? तीन कारण बताइए।
4. "मद्यपान" को रोकने के लिए हमारे देश की राज्य सरकारों ने कौन-कौन से पग उठाए हैं।
5. "दहेज प्रथा" से समाज पर क्या बुरा प्रभाव पड़ता है?
6. उन चार भारतीय सामाजिक प्रथाओं का उल्लेख करो जिनके कारण भारतीय नारी की दशा शोचनीय बन गई है।
7. भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात, भारतीय नारी की अवस्था को सुधारने के लिए दो चार पग उठाए गए हैं, उनका संक्षिप्त में उल्लेख करो।
8. उन तीन आधारभूत सुविधाओं का उल्लेख करो जो हमारे देश के सभी बालकों को उपलब्ध होनी चाहिए।
9. "बाल अपराध" के तीन मुख्य कारणों का उल्लेख करो। इन्हें रोकने के लिए कौन से दो तात्कालिक पग उठाए गए हैं?
10. "साम्प्रदायिक दंगे" सामाजिक जीवन को किस प्रकार अस्त-व्यस्त कर देते हैं?

कुछ करने को

(अ) उन राज्यों के नामों का पता लगाओ जहां "पूर्ण मद्यनिषेध" लागू किया हुआ है।

(ब) "हिन्दू विवाह कानून" की मुख्य-मुख्य बातों का पता लगाओ।

भाग– 3

आर्थिक पुनर्निर्माण

भूमिका

1947 के पूर्व भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक उपनिवेश था। ब्रिटिश शासन में इस देश का अत्याधिक आर्थिक शोषण किया गया। ब्रिटिश शासकों की नीतियों के फलस्वरूप यह देश बहुत निर्धन हो गया। आर्थिक क्षेत्र में यह पिछड़ गया। ब्रिटिश सरकार ने यहां के निवासियों की समस्याओं को सुलझाने की कोई चिन्ता नहीं की।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् आर्थिक समस्याओं से जूझने का उत्तरदायित्व हमारे अपने कन्धों पर आ पड़ा। अनेक प्रकार के आर्थिक दोषों को दूर करने तथा देश को पूर्णरूप से समृद्ध बनाने के उद्देश्य से हमने नियोजित आर्थिक विकास की नीति का अनुशरण किया। अब तक हमने छः पंच-वर्षीय योजनाएं पूर्ण कर ली हैं। सातवी पंच-वर्षीय योजना प्रारम्भ होने वाली है। इन योजनाओं के अन्तर्गत कृषि तथा उद्योग के क्षेत्र में की गई विभिन्न प्रकार की प्रगति या उपलब्धियां उल्लेखनीय हैं।

अध्याय–7

आर्थिक चुनौतियां

स्वतंत्र होने के साथ ही अपने देश को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। उसके सामने कुछ समस्याएं ऐसी थीं जिनका समाधान तत्काल होना था और कुछ ऐसी जिन्हें सुलझाने में अपेक्षाकृत लम्बी अवधि की आवश्यकता थी। इनमें आर्थिक चुनौतियां सर्व प्रमुख थीं जिन पर तुरन्त ध्यान देना था। तुम यह पढ़ चुके हो कि अंग्रेजों द्वारा हमारे देश का आर्थिक शोषण किस प्रकार किया गया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद नियोजित विकास हेतु किए गए अनेक प्रयासों के बावजूद हमारे देश को अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

निर्धनता

निरक्षरता के साथ ही हमारे देश में गरीबी की विकट समस्या है। बहुत से आदमी इतने गरीब हैं कि वे भोजन, कपड़ा तथा रहने के लिए मकान जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं कर पाते। हमारा समाज दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। एक वर्ग में वे लोग आते हैं जो अपने जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने में समर्थ हैं, और दूसरा वर्ग उन लोगों का है जो अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने में असमर्थ हैं। इन दो वर्गों की विभाजन-रेखा को निर्धनता-रेखा कहते हैं। देश के 46 प्रति-शत लोग इस निर्धनता-रेखा के नीचे हैं। वास्तव में ऐसे लोग निराश्रित होते हैं।

यद्यपि हमने कृषि और उद्योग में महत्वपूर्ण प्रगति की है, तथापि इस प्रगति का लाभ गरीबों तक नहीं पहुंच सका है। जो व्यक्ति भरपेट भोजन नहीं पा सकता वह भला कठोर परिश्रम क्या कर पायेगा ? इसी कारण हमारे देश की उत्पादिता कम है। प्रगतिशील देशों की तुलना में हमारे देशवासियों का जीवन-स्तर नीचा है। उदाहरणस्वरूप, 1975 में हमारे देश के प्रतिव्यक्ति की औसत आय 110 डालर, सोवियत रूस में 1400 डालर और संयुक्त राज्य अमरीका में 5160 डालर थी। भारत में प्रति 48 व्यक्तियों पर एक रेडियो है जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में प्रत्येक व्यक्ति के पास एक रेडियो है। इसी प्रकार, भारत में प्रति 4795 व्यक्तियों पर एक डाक्टर है जबकि रूस में प्रति 421 व्यक्तियों पर एक डॉक्टर है और अमरीका में प्रति 645 व्यक्तियों पर एक डॉक्टर है।

रहन-सहन के प्रति निम्न स्तर के अतिरिक्त भारतवासी, विशेषकर ग्रामवासी, अनेक बुराइयों से ग्रसित हैं। पिछले अध्यायों में तुम पढ़ चुके हो कि सामान्यतः हमारे देश के ग्रामवासी किस प्रकार पिछड़े हुए हैं।

जन साधारण के उत्थान हेतु हमने आर्थिक विकास के व्यापक कार्यक्रम स्वीकार किए है। चूंकि देश के 80 प्रतिशत लोग गांव में ही रहते हैं अतः ग्रामीण विकास पर अपेक्षाकृत अधिक जोर दिया गया है। ग्रामीण विकास को देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास का मेरुदण्ड माना गया है। 1952 में सामुदायिक विकास का वृहद कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। इस दिशा में अनेक कदम उठाए गए, जैसे भूमि सुधार, छोटे एवं सीमान्त किसानों की उन्नति तथा पिछड़े क्षेत्रों का विकास करना इत्यादि। सर्वोच्च वरीयता कृषि सुधार को दी गई जो कि ग्रामीणों का मुख्य उद्यम है। यह सोचा गया कि कृषि की समुन्नति से किसानों को अधिक आय होने लगेगी। इसके लिए अनेक उपाय किए गए। परिणामस्वरूप, 1950 और 1975 के बीच पच्चीस वर्षों में कृषि उत्पादन दुगुना हो गया। अनाज का उत्पादन 550 लाख टन से बढ़कर 1200 लाख टन हो गया।

बेरोजगारी

फिर भी हमें कुछ विषम आर्थिक समस्याओं का सामना अभी भी करना पड़

रहा है। उनमें से एक समस्या बेरोजगारी की भी है। साधारण शब्दों में बेरोजगारी से तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें लोग काम करने को तत्पर हों किन्तु विभिन्न कारणों से वे काम पाने में असमर्थ रहते हैं। हमारी सरकार का यह दायित्व है कि वह लोगों को पर्याप्त काम दिलाए। सरकार रोजगार के नए मार्ग खोलने का प्रयास कर रही है। सरकार ने अनेक स्थानों पर रोजगार-कार्यालय स्थापित किए हैं, जहां रोजगार के इच्छुक अभ्यार्थी अपना नाम पंजीकृत करा लेते हैं। ये कार्यालय रोजगार देने वालों और रोजगार चाहने वालों के बीच सम्पर्क स्थापित कराने का कार्य करते हैं। इस देश में रोजगार पाने के इच्छुक व्यक्तियों की संख्या संसार के कुछ देशों की सम्पूर्ण जनसंख्या से अधिक है। ग्रामीण क्षेत्रों में कितने ही बेरोजगार ऐसे हैं जो रोजगार के कार्यालय में अपना नाम पंजीकृत कराने ही नहीं जाते। इससे तुम यह अनुमान लगा सकते हो कि रोजगार की समस्या कितनी विकट है!

मूल्य वृद्धि

दूसरी समस्या मूल्य वृद्धि की है। तुमने यह अनुभव किया होगा कि गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष तुम्हारी कापी, पेंसिल इत्यादि की कीमतें बढ़ गई हैं। जिन वस्तुओं को तुम कुछ वर्ष पूर्व एक रुपए में खरीद सकते थे उनकी कीमत अब तीन या चार रुपए हो गई है। हमारी सरकार उचित मूल्य पर बेचने वाली दुकानें तथा सहकारी भण्डार खोल रही है। लेकिन इतने से ही मूल्यों पर नियंत्रण पाना सम्भव नहीं है। इसलिए सरकार आवश्यक वस्तुओं की जमाखोरी रोकने का प्रयास कर रही है। सरकार लोगों में बचत करने की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहित कर रही है।

मूल्य वृद्धि के फलस्वरूप लोग हताश होने लगते हैं क्योंकि सीमित आय होने के कारण उन्हें अपनी खरीदारी में कटौती करनी पड़ती है। हमारे देश में अब तक जो प्रगति हुई उसके लाभ से हम वंचित हो जाते हैं। तीव्र मूल्यवृद्धि के कारण उनके रहन-सहन का स्तर लगभग पूर्ववत बना रहता है।

पंचवर्षीय योजनाएं

लोगों का जीवन-स्तर कैसे ऊपर उठाया जाए ? गरीबी किस प्रकार दूर की जाए ? ऐसी गम्भीर समस्याओं के समाधान हेतु सुनियोजित उपायों की आवश्यकता होती है। अतएव इस देश में एक योजना आयोग गठित किया गया। योजना आयोग का मुख्य कार्य देश के सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग किए जाने के उपाय खोजना है। इसके लिए वह पंच-वर्षीय योजना तैयार करता है। पंचवर्षीय योजनाएं क्या हैं ?

पंचवर्षीय योजनाएं देश के विकास हेतु विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम प्रस्तुत करती हैं। ये कार्यक्रम देश की चतुर्मुखी प्रगति से संबंधित होते हैं तथा उनका मुख्य लक्ष्य सामाजिक एवं आर्थिक विकास है। इन योजनाओं का एक उद्देश्य यह भी है कि देश के आर्थिक साधन गिने-चुने व्यक्तियों तक ही सीमित न रह जाएं बल्कि जनसाधारण में समुचित रूप से बंट जाएं। हमारी सरकार ने महत्वपूर्ण मिलों एवं कारखानों को अपने अधिकार में ले लिया है, जिससे कि उनसे प्राप्त होने वाला लाभ अनेक लोगों को मिल सके। ये योजनाएं निजी उद्योगों को भी प्रोत्साहित कर रही हैं। ऐसी व्यवस्था, जिसमें निजी उद्योग क्षेत्र तथा सार्वजनिक उद्योग क्षेत्र दोनों ही के विकास को प्रोत्साहन दिया जाए, मिश्रित अर्थव्यवस्था कहते हैं। इस प्रकार नियोजन में तीन बातें निहित हैं :

1. लक्ष्य निर्धारित करना तथा उनकी वरीयता निश्चित करना।
2. उपलब्ध साधनों का यथासम्भव अधिकतम उपयोग करना।
3. नियोजित विकास के फलस्वरूप उत्पादित वस्तुओं और उनसे अर्जित लाभ का न्यायोचित वितरण करना।

भारत ने अपने आर्थिक विकास के लिए नियोजन-पद्धति अपनाई है। ये योजनाएं पांच वर्ष के लिए अपना लक्ष्य निर्धारित करती हैं। अतः इन्हें पंचवर्षीय योजनाएं कहते हैं।

इन योजनाओं के अंतर्गत हमारे देश के कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है, विभिन्न प्रकार के उद्योगों का विकास हुआ है, नए कारखानों की स्थापना हुई है,

बांधों का निर्माण हुआ है तथा बिजली के उत्पादन एवं सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि हुई है। अगले अध्याय में हम इन योजनाओं की उपलब्धियों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

1. पंचवर्षीय योजना से तुम क्या समझते हो ?
2. भारत को नियोजन-पद्धति क्यों अपनानी पड़ी ?
3. स्वतंत्रता के पश्चात् भारत को जिन आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा उनमें से किन्हीं दो का वर्णन करो।
4. निम्नलिखित पदावली से तुम क्या समझते हो :
   (अ) निर्धनता रेखा
   (ब) रहन-सहन का स्तर

कुछ करने को

अपने जिले के नियोजन कार्यालय में जाकर उनके द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तिकाओं का अवलोकन करो।

अध्याय–8

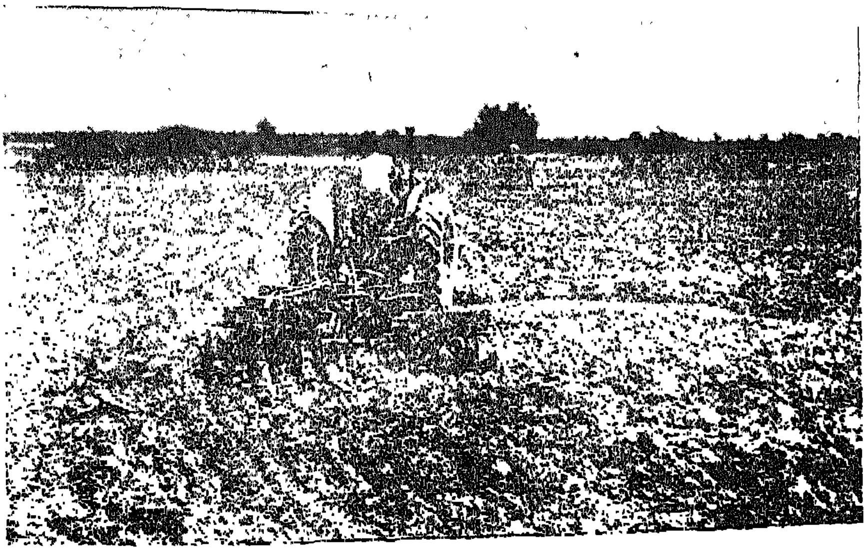
पंचवर्षीय योजनाएं और कृषि

भारत मुख्यत: एक कृषि प्रधान देश है। कृषि हमारे देश का मुख्य उद्यम है। देश की कार्यरत जनसंख्या का 70 प्रतिशत भाग इसमें लगा हुआ है। हमारे गांवों के प्रत्येक पांच व्यक्तियों में से चार व्यक्ति कृषि-कार्य को अपनाए हुए हैं। काफी प्रयत्नों के बाद अब हम अपने देशवासियों के लिए पर्याप्त अनाज उत्पादन करने में समर्थ हो सके हैं। सभी पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि को अत्यधिक महत्व दिया गया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1951 से प्रारम्भ हुई और 31 मार्च 1956 को पूरी हुई। इस समय छठी पंचवर्षीय योजना चल रही है जो कि 1 अप्रैल 1978 से प्रारम्भ हुई थी और 31 मार्च 1983 को पूरी होगी। प्रथम पंच-वर्षीय योजना में 758 करोड़ रुपये की धनराशि कृषि के लिए निर्धारित की गई थी। उसके पश्चात् की प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में इस धनराशि में वृद्धि होती गई। छठी योजना में कृषि के लिए 5800 करोड़ रुपए की धनराशि स्वीकृत की गई है। इससे यह पता चलता है कि उत्तरोत्तर योजनाओं में कृषि को कितना अधिक महत्व दिया जाता रहा। देश के विकास के लिए यह आवश्यक भी है। इन योजनाओं ने कृषि योग्य भूमि के सुधारों पर भी बल दिया विशेषकर जमीं-दारी उन्मूलन, कृषि-सुधार चकबन्दी, सहकारी खेती तथा बहु-उपज प्रणाली पर। उत्तम खेती के लिए सुधरे हुए बीज की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार के बीजों

से अधिक अच्छी उपज होती है। विशेषज्ञों का कथन है कि सुधरे बीजों के द्वारा उपज में 10 प्रतिशत से लेकर 15 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत बीजों की सुधरी हुई किस्मों के उत्पादन हेतु कृषि-क्षेत्र तैयार कराने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया।

हमारे पुराने कृषि यंत्र जैसे हल और खुरपा अब पहले की तरह उपयोगी नहीं रहे क्योंकि उनके प्रयोग से समय व शक्ति दोनों ही का अधिक अपव्यय होता



ट्रैक्टर द्वारा खेतों की जुताई

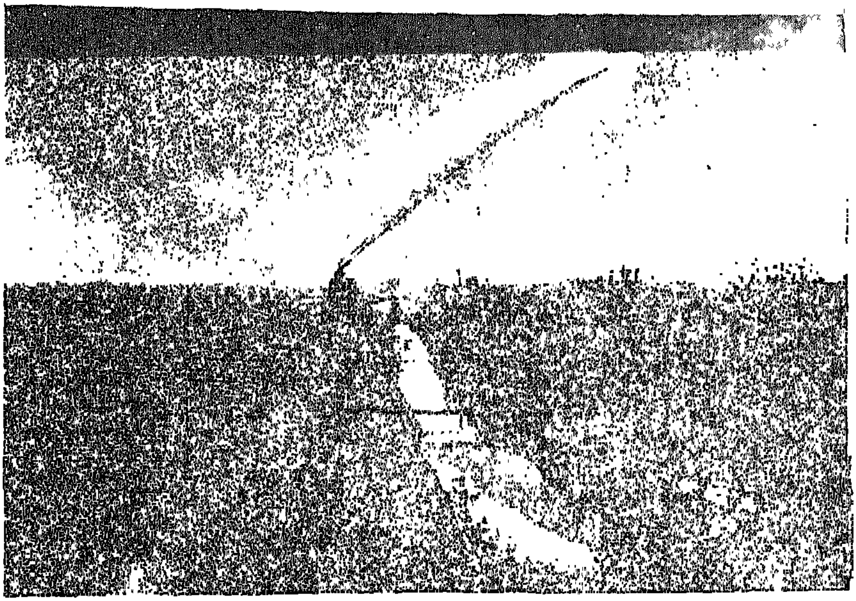
है। इन यंत्रों द्वारा कृषि-उत्पादन में वृद्धि होना बहुत कठिन है। अतः हमें ट्रैक्टर, ट्राली, भूसी निकालने व बीज बोने की मशीन जैसी अनेक आधुनिक समुन्नत कृषि-यंत्रों की आवश्यकता है। इस समुन्नत कृषि-यंत्रों की सहायता से हम अपने देश की कृषि का यंत्रीकरण कर सकते और सघन खेती का भी समारम्भ किया जा सकता है। आधुनिकतम कृषि यंत्रों के निर्माण हेतु देश के कई भागों में अनेक उद्योग स्थापित किए गए हैं।

एक ही भू-खण्ड पर लगातार खेती होने पर उस भू-खण्ड की उत्पादन शक्ति घट जाती है। खाद तथा उवर्रक के प्रयोग से इसकी शक्ति को न केवल मूलरूप में पुनः स्थापित किया जा सकता है अपितु उसमें वृद्धि भी की जा सकती है। गोबर की खाद कृषि के लिए अच्छी होती है लेकिन गोबर का अधिकांश प्रयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। खाद को ईंधन के रूप में प्रयुक्त किए जाने के कारण यह आवश्यक हो गया है कि रासायनिक उर्वरक के उत्पादन में वृद्धि की जाए। हमारी सरकार ने धनबाद के निकट सिन्दरी नामक स्थान पर एक बहुत बड़ा कारखाना खोला है। इसकी गणना आधुनिकतम एवं एशिया के विशालतम रासाययिक उर्वरक कारखानों में की जाती है। इसके अलावा रासायनिक उर्वरक के कारखाने नांगल, राउरकेला, नवैली और ट्राम्बे में भी स्थापित किए गए हैं। अन्य स्थानों पर भी अनेक कारखाने खोले जा रहे हैं।

अच्छी खाद, रासायनिक उर्वरक और परिष्कृत बीजों का पूरा लाभ तभी मिल सकता है जब खेतों की सिंचाई के लिए समुचित व्यवस्था हो। कृषि के विकास में सर्वाधिक योगदान सिंचाई के साधनों का होता है। हमारे देश में सिंचाई योग्य भूमि के केवल 18 प्रतिशत भाग की ही सिंचाई कुंओं, चरस, तालाबों एवं नहरों द्वारा हो सकती है।

वर्षा की अनिश्चितता के कारण भारत में कृषि एक जुआ मात्र है। इस देश में वर्षा संबंधी व्यापक भिन्नताएं हैं। कभी-कभी वर्षा लगभग 7.5 से० मी० से अधिक नहीं होती जिससे फसलें नष्ट हो जाती हैं और किसानों को मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। फसलों की पैदाबार के लिए नियमित रूप से और पर्याप्त मात्रा में पानी मिलते रहना आवश्यक है किन्तु पानी सदैव उपलब्ध नहीं हो पाता।

इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई-साधनों में अभिवृद्धि किए जाने की व्यवस्था की गई है। नदियों पर बांध बनाए तथा सहस्रों हेक्टेयर भूमि की सिंचाई करने हेतु नहरों का निर्माण किया गया। इन बांधों के पानी का उपयोग विद्युत उत्पादन के लिए भी किया जाता है। क्या तुम कुछ नदी-घाटी योजनाओं के नाम जानते हो? तुम उन्हें मानचित्र पर दिखा सकते हो। इन नदी-घाटी



नहरों द्वारा सिंचाई

योजनाओं में भाखड़ा नांगल, दामोदर, तुंगभद्रा, कोसी, तथा चम्बल घाटी योजनाएं प्रमुख हैं। सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि करने के उद्देश्य से नल-कूपों की व्यवस्था की गई। पंच-वर्षीय योजनाओं ने देश में नलकूपों का जाल बिछा दिया है। सारांश में हम यह कह सकते हैं कि कृषि विकास के लिए देश भर में विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों एवं प्रयोगों की नितान्त आवश्यकता है।

अभ्यास के प्रश्न

1. पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत खाद्यान्न के उत्पादन क्षेत्र में क्या प्रगति हुई ?

2. उत्तम खेती के लिए परिष्कृत बीजों एवं उत्तम खाद का क्या महत्व है ?
3. उत्तम खाद की व्यवस्था के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत क्या उपाय किए गए ?
4. नदी-घाटी योजनाओं से क्या लाभ हुए ?
5. निम्नलिखित स्थान क्यों प्रसिद्ध हैं ?
   (अ) सिन्दरी (ब) ट्राम्बे (स) भाखड़ा नांगल

कुछ करने को

1. भारत के मानचित्र में नदी-घाटी योजनाओं के प्रमुख प्रभावकारी क्षेत्र दिखलाओ ।
2. किसी नदी योजना का एक मिट्टी का माडल बनाओ । इस कार्य में तुम अपने अन्य साथियों और अध्यापकों से भी सहायता ले सकते हो ।

अध्याय–9

पंचवर्षीय योजनाएं और औद्योगिक विकास

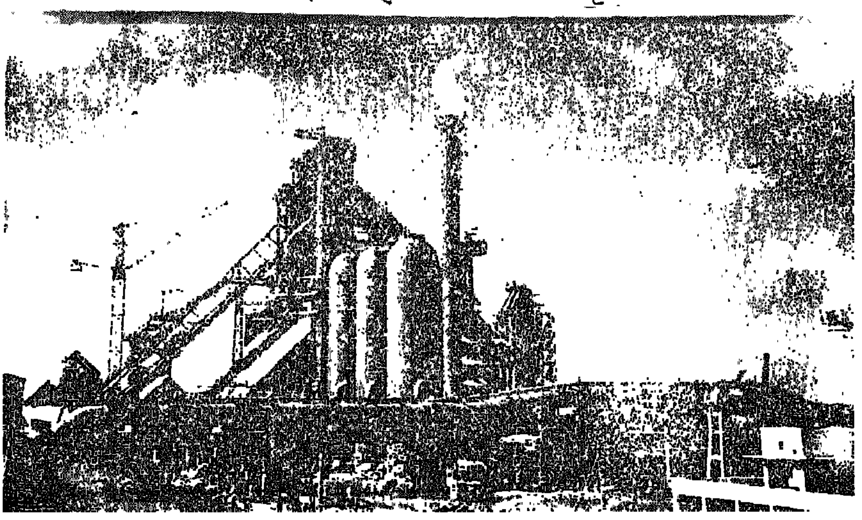
पिछले अध्याय में तुम पढ़ चुके हो कि पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत कृषि विकास को सर्वोच्च वरीयता दी गई। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि हमारे देश में खाद्यान्न की बहुत कमी थी। अतएव इस ओर हमें तत्काल ध्यान देना पड़ा। किन्तु आधुनिक विश्व का कोई राष्ट्र औद्योगिक विकास के बिना प्रगति नहीं कर सकता। किसी व्यक्ति के जीवन को सुखमय बनाने के लिए खाद्यान्न के अतिरिक्त कपड़ा, मकान, बिजली, मशीनें इत्यादि भी आवश्यक हैं। कृषि की उन्नति के लिए ट्रैक्टर जैसे नए प्रकार के कृषियंत्रों की आवश्यकता पड़ती है। सिंचाई के लिए नलकूपों और नलकूपों के लिए मोटरयंत्र की जरूरत पड़ती है। जन-स्वास्थ्य के लिए औषधियों तथा यातायात एवं संचार साधनों की व्यवस्था करना भी लोक कल्याणकारी राज्य का प्रमुख लक्ष्य होता है। जिन देशों में जीवन की सुख-सुविधाओं का अभाव रहता है उनकी गिनती पिछड़े देशों में की जाती है और उन देशवासियों का जीवन-स्तर ऊंचा नहीं हो पाता।

यही कारण है कि योजना-आयोग ने वर्तमान उद्योगों में वृद्धि करने तथा नए कारखाने स्थापित किए जाने पर बल दिया। इसके अतिरिक्त आयोग ने यह भी आवश्यक समझा कि सरकार बड़ी-बड़ी औद्योगिक इकाइयों का निर्माण करे और भारी मशीन या यंत्र बनाने के कारखानों की स्थापना को वरीयता दे। उसने लघु उद्योगों एवं कुटीर उद्योग-धंधों को भी प्रोत्साहन दिया।

प्रथम पंचवर्षीय योजनाकाल में औद्योगिक विकास के क्षेत्र में सन्तोषजनक प्रगति हुई। सिन्दरी में उवर्रक कारखाने की स्थापना की गई तथा चितरंजन में रेल के इंजन बनाने का कारखाना खोला गया। लोहा और इस्पात के उत्पादन का कार्य भी शुरू किया गया। अखबारी कागज का उत्पादन करने के लिए मध्य-प्रदेश में नेपा मिल्स स्थापित किया गया। रेयान का सूत, सीमेंट, साइकिल, कांच की चादरें एवं पेट्रोलशोधक कारखानों की स्थापना का कार्य तेजी से चला। इसका परिणाम यह हुआ कि औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य बहुत ही थोड़े समय में पूरा कर लिया गया। चीनी, सीमेन्ट और रासायनिक उद्योगों में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। बहुत-सी वस्तुएं जो पहले विदेश से आती थीं अब अपने ही देश में तैयार होने लगीं। जलपोत निर्माण, वायुयान निर्माण, टेलीफोन निर्माण तथा पैन्सीलिन और डी० डी० टी० के उत्पादन की व्यवस्था की गई। तमिलनाडु के पैराम्बूर नामक स्थान पर रेल के डिब्बे बनाने का कारखाना स्थापित किया गया। पिम्बरी में औषधियां तैयार करने तथा विशाखापटनम् में जहाज बनाने के कारखाने खोले गए।

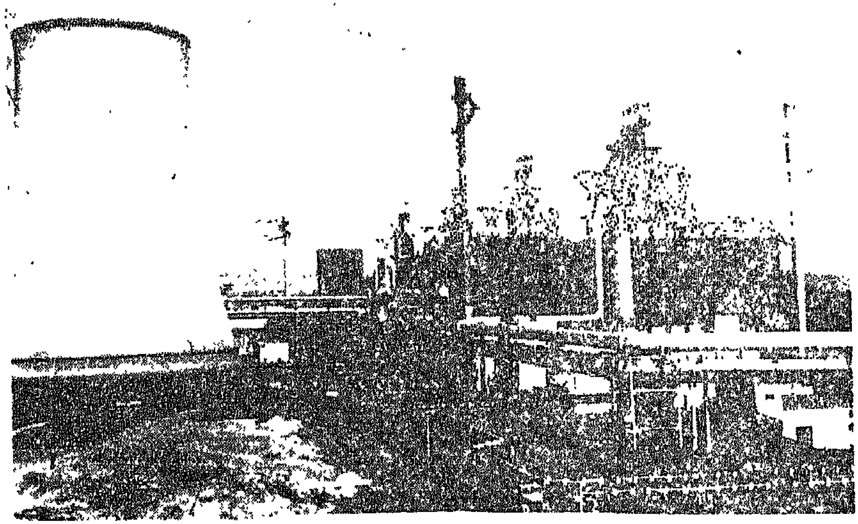
दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास के लिए प्रथम योजना की अपेक्षा कहीं अधिक धनराशि निर्धारित की गई। इस योजना में औद्योगिक विकास पर इतना अधिक बल दिया गया कि यह औद्योगिक योजना के नाम से

भिलाई के लौहस्पात कारखाने की भट्टी



विख्यात हो गई। इसके अंतर्गत मशीन और इंजीनियरी के उद्योगों में बहुत प्रगति हुई। सीमेंट, कोयला और अल्यूमुनियम जैसी औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन बड़ी मात्रा में हुआ। अनेक कल-पुर्जे जिनके लिए हम अन्य देशों पर निर्भर थे, अब अपने ही देश में बनने लगे। सरकार ने इस्पात, मशीन यंत्र बिजली के भारी सामान, भारी मशीनें, उवर्रक, औषधियां आदि का निर्माण करने वाले तथा तेल साफ करने वाले कारखाने स्थापित किए। इनमें से दुर्गापुर, भिलाई एवं राउरकेला में स्थापित इस्पात के कारखाने विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के अंतर्गत दैनिक उपभोग की वस्तुओं से लेकर बड़ी-बड़ी मशीनों का उत्पादन अपने देश में ही होने लगा।

तीसरी योजना का लक्ष्य इस्पात ईंधन और बिजली उत्पादन आदि के बुनियादी उद्योगों का विस्तार करना था। योजना आयोग चाहता था कि तीसरी



दुर्गापुर का इस्पात का कारखाना

पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत उद्योगों के लिए सभी वांछित सामान भारत में ही बनने चाहिए। इस योजना की अवधि में रांची के पास भारी मशीनें बनाने का

कारखाना लगाया गया। बिजली के उत्पादन में वृद्धि के अतिरिक्त तीन भारी सामान तैयार करने वाले कारखाने तथा औषधि निर्माण करने वाले कारखाने भी खोले गए। इस योजना के अंतर्गत ग्रामोद्योगों एवं लघु उद्योगों को भी प्रोत्साहन दिया गया।

चौथी पंचवर्षीय योजना को कुछ बाधाओं का सामना करना पड़ा। पाकिस्तान से युद्ध होने, दो वर्षों तक अकाल पड़ने और मूल्यों में सामान्य वृद्धि होने से इस पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप प्रदान करने में विलम्ब हुआ। अतएव हमें वार्षिक-योजना का सहारा लेना पड़ा। चौथी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप के अंतर्गत ही तीन वार्षिक योजनाएं बनाई गई। ये वार्षिक योजनाएं अत्यन्त सामान्य थीं क्योंकि आर्थिक साधन उपलब्ध नहीं हो पा रहे थे। चौथी पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य विकास की गति को तीव्र करना था। इस योजना ने कृषि उत्पादन की अस्थिरता और विदेशी सहायता की अनिश्चितता से बचाव का भी प्रयास किया।

यद्यपि इस योजना के लिए अपेक्षाकृत अधिक धनराशि उपलब्ध कराई गई थी किन्तु उसके अन्तर्गत कोई सन्तोषजनक प्रगति न हो पाई।

पांचवी योजना में भी औद्योगिक विकास संतोषजनक नहीं रहा। इन दोनों पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में अधिक कठिनाइयां आई। औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक साधनों जैसे यातायात, विद्युत, ईंधन, तेल इत्यादि की कमी पड़ गई। इसके विपरीत औद्योगिक वस्तुओं की मांग निरन्तर बढ़ती गई।

छठी पंचवर्षीय योजना में लोहा, इस्पात, इंजीनियरी से संबंधित सामानों, सीमेंट, कागज़, कपड़ा, औषधि एवं रासायनिक उत्पादनों पर बल दिया गया है इस योजना में लघु-उद्योग-धन्धों एव ग्रामोद्योगों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

अभ्यास के प्रश्न

1. दूसरी पंचवर्षीय योजना को "औद्योगिक योजना" क्यों कहा गया है ?
2. निम्नलिखित के उत्तर दो—
   (क) उस स्थान का नाम लिखो जहां रेल के ईंजन बनाने का कारखाना स्थापित किया गया है।
   (ख) रेल के डिब्बे कहां बनाए जाते हैं ?
   (ग) पोत निर्माण का कारखाना कहां है ?
   (घ) पिम्परी किस उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है ?
3. नीचे दिए गए कथनों के सामने कोष्ठकों में हां अथवा नहीं लिखिए—
   क्या यह सच है कि—
   (अ) भारत जापान की अपेक्षाकृत अधिक पिछड़ा हुआ है।
   (ब) भारत ने तेल साफ करने के अपने कारखाने स्थापित कर लिए हैं।
   (स) चौथी पंचवर्षीय योजना समय से प्रारम्भ नहीं की जा सकी।

कुछ करने को

1. भारत के मानचित्र में प्रमुख औद्योगिक केन्द्र अंकित करो।
2. पता लगाकर लिखो कि भिलाई, राउरकेला तथा दुर्गापुर के कारखानों के लिए किन देशों ने सहायता दी है।

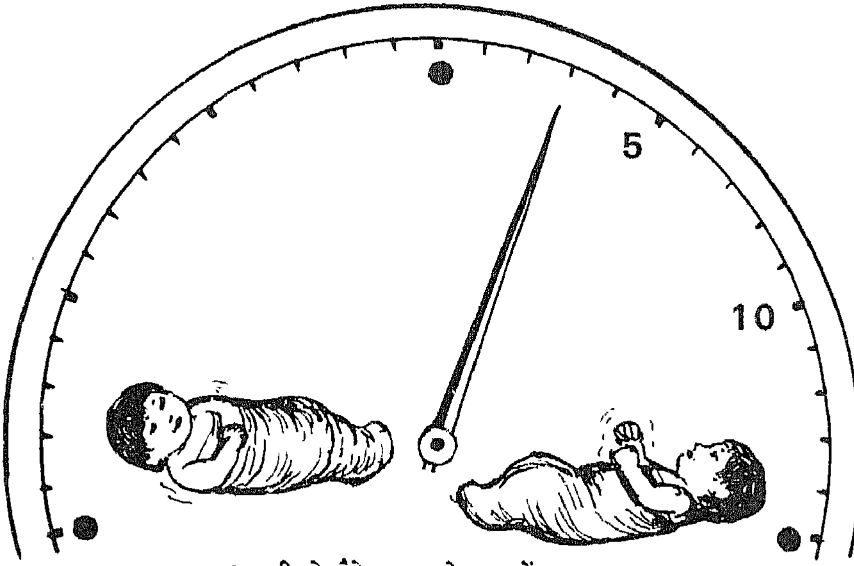
अध्याय—10

जनसंख्या में वृद्धि और राष्ट्रीय विकास

इस समय हमारे देश की सबसे विकट समस्या बढ़ती हुई जनसंख्या है। हमारी जनसंख्या में प्रतिवर्ष एक करोड़ से अधिक व्यक्ति बढ़ जाते हैं। इस समय भारत की जनसंख्या लगभग 65 करोड़ है।

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था पर वहां की जनसंख्या का प्रभाव अवश्य पड़ता है। जब जनसंख्या तेजी से बढ़ती है तो राष्ट्रीय आय के बढ़ने पर भी देश को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। उत्पादन चाहे जितना बढ़ता जाए यदि जनसंख्या भी उसी दर से बढ़ती गई तो देश की अधिक उन्नति नहीं हो सकती। यदि देश के साधन सीमित हों और जनसंख्या प्रतिवर्ष बढ़ती ही जाए तो वहां के निवासियों का जीवन-स्तर किस प्रकार ऊंचा हो सकेगा? स्पष्ट है कि उस देश की निर्धनता कभी दूर न हो सकेगी।

भारत में जनसंख्या के इतनी तेजी से बढ़ने के क्या कारण हैं? इसका एक कारण तो यह है कि पहले की अपेक्षा अब अपने देश में मृत्यु दर कम हो गई है। पिछले पचास वर्ष की तुलना में मृत्यु दर घटकर एक तिहाई रह गई है। 1921 में प्रति हजार 48 व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती थी किन्तु यह दर घटते-घटते 1971 में 16 व्यक्ति प्रति हजार रह गई है। चिकित्सा विज्ञान के द्वारा स्वास्थ्य एवं सफाई के तरीकों में की गई उन्नति के कारण यह सम्भव हो सका है। मृत्यु दर के और अधिक घट जाने की भी सम्भावना है।



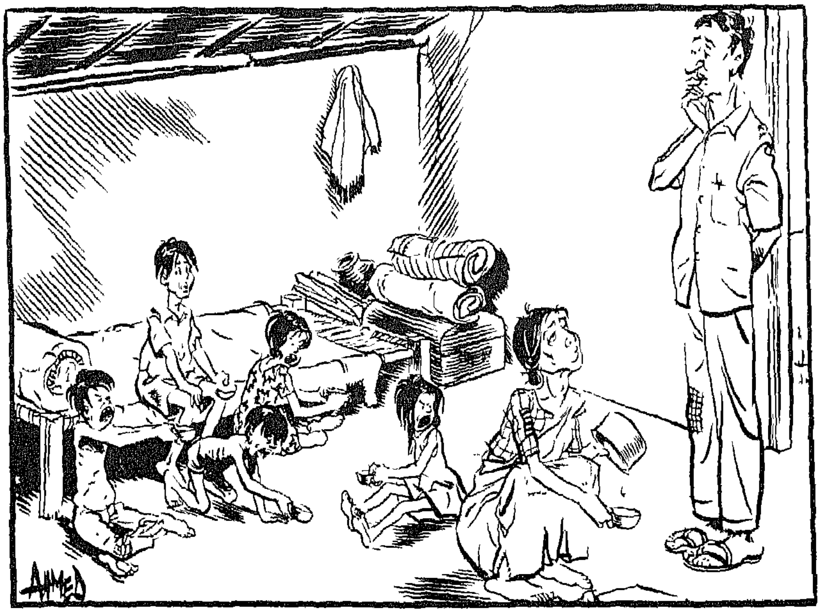
हर तीसरे सैकेण्ड पर दो बालकों का जन्म

मृत्यु दर का घटते जाना एक अच्छी बात है। हम लोग अधिक दीर्घ जीवी होने की आशा कर सकते हैं। हमारे देश में व्यक्ति की औसत आयु 50 वर्ष से अधिक है। हमने अनेक खतरनाक बीमारियों पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया है। चेचक तथा मलेरिया का लगभग उन्मूलन हो गया है। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में आशातीत उन्नति हुई है। अब ऐसी अनेक बीमारियों से बचना सम्भव हो गया है जो कुछ वर्ष पूर्व प्राणघातक समझी जाती थीं।

जनसंख्या में वृद्धि का दूसरा कारण जन्मदर में होने वाली वृद्धि है। अनुमान है कि प्रति हज़ार व्यक्तियों पर 30 बच्चे प्रतिवर्ष जन्म लेते हैं। अनेक देशों की तुलना में यह जन्मदर बहुत अधिक है। उदाहरण के लिए सोवियत रूस में जन्मदर प्रतिवर्ष प्रति हजार 18 है, अमरीका में 15, पश्चिमी जर्मनी में 10, इंग्लैंड में 13 तथा जापान में 19 है। इस प्रकार हमारे देश की जनसंख्या 2'2 प्रतिशत की दर से प्रतिवर्ष बढ़ रही है जबकि यह वृद्धि रूस में 1 प्रतिशत, अमरीका में 0,8 प्रतिशत और जापान में 1,2 प्रतिशत हुई। यदि

हमारी जनसंख्या इसी दर से बढ़ती रही तो इस शताब्दी के अन्त तक हमारी जनसंख्या दुगुनी हो जाएगी, और फिर हमारी समस्याएं कहीं अधिक जटिल हो जाएंगी। जनसंख्या में अधिक वृद्धि हो जाने से खाद्यान्न में कमी, शहरों में भीड़, मकानों की कमी, रेल और बसों के लिए कतारें, धुंए व गंदगी से प्रदूषित वातावरण, बेरोजगारी आदि बहुत सी समस्याएं बढ़ जाएंगी। इस समय भी हमारे देश वासियों को औसतन प्रतिदिन जो भोजन प्राप्त होता है उससे उनको केवल 2000 कैलोरीज़ प्राप्त होती हैं जबकि एक स्वस्थ मनुष्य को 2500 कैलोरीज़ प्रतिदिन मिलनी चाहिए।

हमारे देश में ऊंची जन्मदर का मुख्य कारण बाल-विवाह की प्रथा है। प्राय: लड़के या लड़की के वयस्क होने के पहले ही माता-पिता उसका विवाह कर



क्या ये एक बड़े परिवार के सुख हैं ?

देते हैं। परिवार की आर्थिक स्थिति खराब होने पर भी उसका विवाह कर दिया जाता है। यद्यपि अपने देश में बाल-विवाह का निषेध करने वाला कानून बना

हुआ है तथापि अनेक व्यक्ति अब भी ऐसे हैं जो अपने बच्चों का विवाह अल्पायु में ही कर देते हैं।

जनसंख्या में वृद्धि का एक अन्य कारण निर्धनता है। यह भी देखा गया है कि निर्धन व्यक्तियों की सन्तानें अधिक होती हैं। कुछ तो यह सोचते हैं कि उनके अधिक बच्चे होंगे तो उनकी आमदनी बढ़ जाएगी। निर्धनता के कारण उनके बच्चे छोटी आयु में ही काम करने में लग जाते हैं। लेकिन वे अपनी निर्धनता के कारण कोई कौशल नहीं सीख पाते और जीवन भर उन्हें अकुशल मजदूरों की भांति काम करना पड़ता है।

प्राचीन काल में जन्मदर घटाने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई क्योंकि उस समय जनसंख्या इतनी अधिक नहीं थी। इसके अतिरिक्त यह बात भी थी कि बहुधा प्राकृतिक प्रकोप से जनसंख्या स्वतः घट जाती थी। प्रकृति, भूकम्प बाढ़ तथा महामारी आदि इनमें मुख्य थे। युद्धों के कारण भी जनसंख्या घट जाती थी। लेकिन विज्ञान और चिकित्सा की उन्नति के फलस्वरूप ये प्राकृतिक प्रकोप काफी सीमा तक नियंत्रित हो चुके हैं।

अतएव अब यह आवश्यक हो गया है कि जनसंख्या को सीमित करने के लिए कुछ उपाय सोचे जाएं। निरक्षरता, अंधविश्वास और धार्मिक रूढ़ियों के कारण बहुत से लोग यह समझते हैं कि बच्चों का जन्म होना भाग्य पर निर्भर है। यह भ्रांति शिक्षा द्वारा दूर की जा सकती है। विज्ञान के इस युग में इस प्रकार की लाचारी दिखाना और भाग्य का सहारा लेना न तो उचित है और न देश के हित में है। आज के युग में विज्ञान के साधनों द्वारा यह सम्भव हो सका है कि अपने परिवार के वांछित आकार के विषय में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं निर्णय ले सके। हमारा परिवार छोटा होगा या बड़ा, यह हमारे निश्चय पर ही निर्भर है।

अपने देश में परिवार नियोजन के विषय में अनेक प्रकार की ग़लत धारणाएं प्रचलित हैं। कुछ लोग इसको धर्म के प्रतिकूल मानते हैं। कुछ अन्य लोग यह समझते हैं कि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। ऐसी भ्रान्तियों को दूर करने के लिए जनता में सही दृष्टिकोण रखने का कार्यक्रम अपनाना होगा। उन्हें यह समझना होगा कि यह न तो धर्म के प्रतिकूल है और न

स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। यदि हमें जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण रखना है तो हमें इस प्रकार का कदम उठाना ही होगा। जनमत को इसके पक्ष में करने के लिए सूचना प्रसारण के सभी साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए, जैसे— पोस्टर, (इश्तहार), रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं आदि का समुचित प्रयोग किया जाना। लोगों को इस बात के लिए भी प्रेरित किया जाए कि वे अपने बच्चों का विवाह अल्पायु में न करें।

इसलिए हम सभी देशवासियों का कर्त्तव्य है कि बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या के हल करने में अपना-अपना सहयोग प्रदान करें। जन्मदर को सीमित करने से हमारी निर्धनता दूर होगी और रहन-सहन का स्तर ऊंचा होगा। यदि हम जनसंख्या को सीमित न कर सकें तो देश के विकास की योजनाएं विफल हो जाएंगी और हम आर्थिक समृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त न कर सकेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

1. किसी देश की जनसंख्या बढ़ जाने से क्या हानि होती है ?
2. अपने देश में जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के क्या कारण हैं ?
3. प्राचीन काल में जनसंख्या में वृद्धि रोकने की आवश्यकता की ओर लोगों का ध्यान क्यों नहीं गया ? सबसे अधिक सही कारण पर (✓) चिन्ह लगाओ—
   (क) उस समय आजकल की अपेक्षा अधिक उपज होती थी।
   (ख) देश में जनसंख्या की वृद्धिदर बहुत कम थी।
   (ग) लोगों को जन-संख्या सीमित करने के उपाय मालूम नहीं थे।
   (घ) सम्मिलित परिवार की प्रथा होने से अधिक बच्चों का होना हानिप्रद नहीं था।

(ङ) प्राकृतिक प्रकोपों के कारण जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण रहता था।

कुछ करने को

एक छोटे और एक बड़े परिवार में रहन-सहन की तुलना केवल निम्न-लिखित शीर्षकों में करो—

(1) शिक्षा की सुविधाएं।
(2) पौष्टिक भोजन (घी, दूध, अंडे, फल आदि) की सुविधाएं।
(3) मनोरंजन के साधनों (रेडियो, चलचित्र, पर्यटन) की सुविधाएं।

भाग—4

भारत और विश्व

भूमिका

स्वाधीन होने के पश्चात् भारत, विश्वशान्ति तथा स्वतंत्र विदेश-नीति के अनुसरण के लिए निष्ठापूर्वक प्रयास करता रहा है। भारत का यह विश्वास है कि राष्ट्रों में आपसी सहयोग द्वारा, सैनिक समझौतों एवं अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप से अलग रहकर तथा शस्त्रीकरण की होड़ में सम्मिलित न होकर विश्वशान्ति बनाए रखना सम्भव है।

भारत संयुक्त राष्ट्र के प्रारम्भिक सदस्यों में से एक है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र द्वारा शान्ति बनाए रखने के प्रयासों को सदैव पूर्ण समर्थन दिया है। वह पड़ोसी देशों तथा संसार के अन्य देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने में निष्ठा-पूर्वक प्रयत्न करता रहा है।

परन्तु शान्ति तथा सह-अस्तित्व में विश्वास का यह तात्पर्य नहीं है कि आक्रमण होने पर भारत अपनी सुरक्षा नहीं करेगा। अनेक अवसरों पर भारत के पड़ोसी देशों—चीन तथा पाकिस्तान—ने उस पर आक्रमण किया। अपनी सुरक्षा के लिए उसे सैन्य-शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। यही कारण है कि भारत के पास एक सुरक्षा-सेना है जो उसके भू-खण्ड पर किसी भी आक्रमण का सामना करने के लिए सदैव तैयार रहती है।

भारत ने समय-समय पर अपनी सेना सहायतार्थ भेजी। संयुक्त राष्ट्र की ओर से हमारी सैन्य टुकड़ियां कोरिया, कांगो तथा मिस्र के गाजा पट्टी में भेजी गईं।

भारत साम्राज्यवाद, नवीन-उपनिवेशवाद तथा जातीय भेदभाव का घोर विरोधी रहा है। संयुक्त राष्ट्र में उसने शोषित समाज के लिए स्वतंत्रता एवं न्याय के समर्थन में आवाज उठाई है तथा उपनिवेशवाद की दासता से मुक्ति पाने के संघर्षों को अपना दृढ़ समर्थन दिया। जातीय भेदभाव तथा रंग भेद की अमानवीय नीति के विरुद्ध आवाज उठाने में भी भारत अग्रणी रहा है।

अध्याय–11

भारत की सुरक्षा

विदेशी आक्रमण से देश की सुरक्षा करना प्रत्येक राज्य का मूल कर्तव्य है। इसी उद्देश्य से राज्य में सेना का संगठन किया जाता हैं। हमारे देश में भी सरकार सीमा-सुरक्षा के लिए सैन्य व्यवस्था रखती है। हमारा देश संसार के अन्य देशों से मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखने के सिद्धान्त में विश्वास रखता है। किन्तु यदि हमारे देश पर कोई अन्य देश आक्रमण करता है तो उसका सामना करने के लिए हमारी सेनाओं को हर समय तैयार रहना चाहिए।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत को चार बार विदेशी आक्रमणों का सामना करना पड़ा। पहला आक्रमण तो स्वतंत्रता प्राप्ति के वर्ष में ही हुआ जबकि पाकिस्तान ने कश्मीर के एक भू-भाग पर अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् 1962 में भारत पर चीन का आक्रमण हुआ, 1965 और 1971 में पाकिस्तान द्वारा पुनः आक्रमण किए गए। इन सभी अवसरों पर भारत के सैन्य-संगठनों ने महत्वपूर्ण कार्य किए।

हमारे गणतंत्र के राष्ट्रपति का देश की रक्षा—संगठन में सर्वोच्च स्थान होता है। संविधान के अनुसार वह हमारी सेनाओं का प्रधान सेनापति होता है। लेकिन राष्ट्रपति अपने कर्तव्यों और अधिकारों का प्रयोग मंत्री-परिषद् की सलाह पर करता है। रक्षा मंत्री सेना के तीन अंगों अर्थात् स्थल सेना, नौ सेना और वायु सेना के कार्यों का समन्वय करता है। प्रत्येक अंग का एक प्रमुख होता है।

सैन्य प्रशिक्षण के लिए विभिन्न कालेज, डिफेन्स सर्विसेज स्टाफ कालेज और नेशनल डिफेन्स एकेडेमी जैसे सैन्य प्रशिक्षण संस्थान, सैनिकों एवं सैन्य अधिकारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करते हैं।

स्थल सेना

स्थल सेना का मुख्य कार्यालय दिल्ली में है। इसका प्रधान स्थल सेनाध्यक्ष होता है जिसका पद जनरल के समकक्ष होता है। स्थल सेना के कई अंग होते हैं जैसे पैदल सेना, सवार (टैंक), तोपखाना (गन) आपूर्ति तथा इंजीनियरिंग आदि।

सेना को पांच क्षेत्रों (कमान) में संगठित किया गया है। केन्द्रीय, पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी तथा दक्षिणी। प्रत्येक कमान का मुख्य अधिकारी अलग-अलग होता है जो अपने क्षेत्र के लिए उत्तरदाई होता है। वह लेफ्टीनेन्ट-जनरल के पद का होता है। जो व्यक्ति स्थल सेना में प्रविष्ट होना चाहते हैं उन्हें इन्डियन मिलिट्री एकाडेमी देहरादून भेजा जाता है।

नौ सेना

नौ सेना का मुख्यालय भी दिल्ली में है। इसके सर्वोच्च अधिकारी को नौसेनाध्यक्ष कहते हैं और वह एडमिरल पद पर होता है। नौ सेना के संगठन को तीन क्षेत्रीय कमानों में विभक्त किया गया है—पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी। इन के अलावा एक पश्चिमी जहाजी बेड़ा भी होता है। जो सागर पर सचल कमान के रूप में कार्य करता है। नौ-सेना के प्रशिक्षण के केन्द्र कोचीन तथा बंबई हैं। भारतीय नौ सेना अधिक विशाल नहीं है। इसका धीरे-धीरे विस्तार किया जा रहा है। विशाखापटनम् स्थित हिन्दुस्तान शिपयार्ड में पोत-निर्माण का कार्य जारी है। कलकत्ता में भी रक्षात्मक पोत-निर्माण के केन्द्र स्थापित किए गए हैं। इन कारखानों ने अजय, अभय और अक्षय जैसे जलपोतों का निर्माण करके हमारी सेना विस्तार में यथेष्ट योगदान दिया है।

वायु सेना

भारतीय वायुसेना का मुख्यालय भी नई दिल्ली में है। वायु सेना का सर्वोच्च अधिकारी वायु सेनाध्यक्ष कहलाता है। वायुसेना के संगठन को सात क्षेत्रीय कमानों में विभक्त किया गया है—पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिण-पश्चिमी कमान मध्य कमान, दक्षिणी कमान, प्रशिक्षण कमान तथा अनुरक्षण कमान। वायु सेना के लिए प्रारम्भिक चयन के पश्चात्, डेडीगल के वायु सेना प्रशिक्षण केन्द्र पर उड्डान प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। इसी प्रकार तकनीकी एवं प्रशासनिक प्रशिक्षण के लिए क्रमशः बंगलौर तथा कोयम्बतूर में इसी प्रकार के केन्द्र खोले गए हैं।

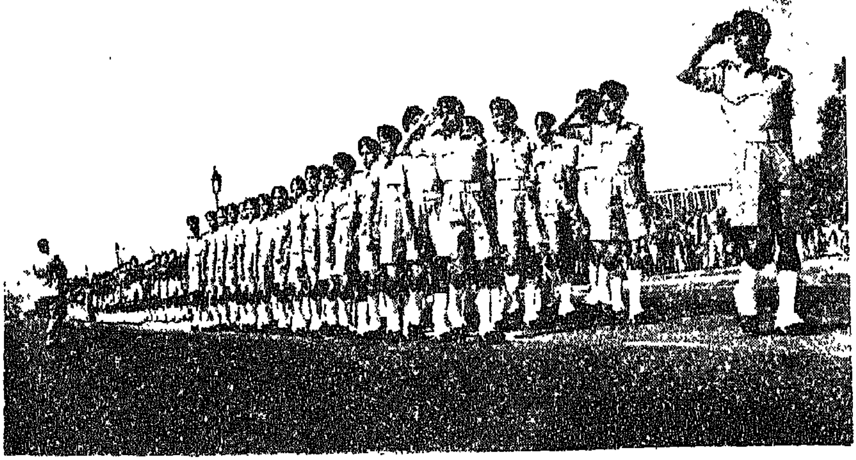
रक्षा-सामग्री उत्पादन

रक्षा-सामग्री के उत्पादन की दिशा में भी भारत ने यथेष्ट प्रगति की है। विजयंत जैसे मजबूत टैंक तथा मिग-21 नैट, मारुत जेट जैसे लड़ाकू विमानों का निर्माण होने लगा है। अन्य प्रकार के वायुयानों का निर्माण एवं मरम्मत की व्यवस्था कानपुर तथा बंगलौर में है।

पोत निर्माण का एक कारखाना विशाखापटनम में है। जबलपुर में 'शक्तिमान' नामक ट्रक हजारों की संख्या में तैयार किए जाते हैं। आधुनिक ढंग के शस्त्रों के लिए भी बड़े-बड़े कारखाने स्थापित होते जा रहे हैं जैसे किरकी (पूना) और मुरादनगर (मेरठ में)।

अन्य सुरक्षा संगठन

नियमित सेना के अतिरिक्त कुछ अन्य रक्षात्मक संगठन भी हैं। एक प्रादेशिक सेना है। कोई भी व्यक्ति जो अपने अवकाश के समय में सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहता है इसमें भर्ती हो सकता है। 18 और 35 वर्ष के बीच की आयु वाले स्वस्थ नवयुवक इसमें भिन्न प्रकार के सैन्य प्रशिक्षण पा सकते हैं। दूसरा संगठन देश के विद्यार्थियों में अनुशासन व सैन्य प्रवृत्ति जागृत करने के



एन० सी० सी० परेड

लिए है। उसे नेशनल कैडेट कोर कहते हैं। इसमें छात्र और छात्राएं दोनों ही भाग ले सकते हैं।

शान्तिकाल में सैन्यकार्य

देश की रक्षा करने के अतिरिक्त सेना को समाज सेवा के अन्य कार्यों पर भी लगाया जा सकता है जैसे भूकम्प अथवा किसी प्राकृतिक प्रकोप के समय लोगों को सहायता पहुंचाना। हमारी सेना को समय-समय पर विदेशों में शान्ति-स्थापना हेतु संयुक्त राष्ट्र की सहायता करने के लिए भेजा जाता रहा है। उदाहरण के लिए, हमारी सेना ने कोरिया, गाजा पट्टी, लेबनान, कांगों टामन तथा अन्य स्थानों में संयुक्त राष्ट्र की प्रशंसनीय सेवाएं की हैं।

सेना और नागरिक

आधुनिक युद्ध प्रणाली से समूचा राष्ट्र प्रभावित होता है। सेनाओं को अबाध रूप से शस्त्र, कपड़े और खाद्यान्न की आपूर्ति की आवश्यकता है। युद्ध काल में

कारखानों को काम के निर्धारित घन्टों के अलावा भी काम करना पड़ता है और निरन्तर यह प्रयास किया जाता है कि उत्पादन में वृद्धि हो, आपूर्ति का क्रम टूटने न पाए और किसी वस्तु का अभाव न हो। एक बात यह भी है कि युद्ध का खतरा केवल युद्ध-क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहता। हवाई हमले और गोलाबारी से नगर के नगर नष्ट हो जाते हैं। अतः प्रत्येक नागरिक को चाहिए कि वह नागरिक सुरक्षा, प्राथमिक चिकित्सा और नर्सिंग का प्रशिक्षण ले। हमें यह भी जानना चाहिए कि ब्लैक आउट, हवाई हमले और आग लगने की स्थिति में हमें क्या करना चाहिए।

युद्धकाल, संकट और विपत्ति का समय होता है। हर प्रकार की कमी और कठिनाई सामने आती है। कुछ समाज विरोधी तत्व इस परिस्थिति का लाभ उठाते हैं। वे चोर-बाजारी, जमाखोरी और मुनाफाखोरी करने लगते हैं। नागरिकों को इन असामाजिक तत्वों से सावधान रहना चाहिए और उन पर रोक-थाम करनी चाहिए। सभी नागरिकों को देश के रक्षा-कार्य में सेवा का हाथ बटाना चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

1. भारतीय सेना के तीनों अंगों के विषय में कुछ अलग-अलग पंक्तियां लिखो।
2. देश की रक्षा में नागरिक क्या योगदान दे सकते हैं ?
3. निम्नलिखित संकेताक्षरों को स्पष्ट करो :
   (अ) डी० एस० एस० सी०
   (ब) एन० डी० ए०
   (स) आई० एम० ए०

4. निम्नलिखित स्थान किस लिए प्रसिद्ध हैं :
   (अ) देहरादून
   (ब) कोचीन
   (स) कलकत्ता
   (द) जबलपुर

कुछ करने को

1. भारतीय सेना के तीनों अंगों के अध्यक्षों के नाम पता लगाकर लिखो।
2. आधुनिकतम जेट विमानों, टैंकों और नौसेना के जहाजों के फोटो मॉडलों का संग्रह करो।
3. प्राथमिक चिकित्सा का प्रशिक्षण प्राप्त करो।

अध्याय–12

भारत की विदेश-नीति

विज्ञान और प्राविधिक उन्नति के फलस्वरूप अब दुनियां अपेक्षाकृत छोटी हो गई है। विभिन्न राष्ट्र एक दूसरे पर अधिकाधिक निर्भर होते जा रहे हैं और ज्ञान-विज्ञान, टैक्नोलाजी, संस्कृति, व्यापार तथा वाणिज्य के क्षेत्र में उनमें आपसी आदान-प्रदान होना पहले की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। हम यह भी कह सकते हैं कि मानव जाति की प्रगति ही नहीं अपितु उसके अस्तित्व का भविष्य भी उपर्युक्त तथ्य की गम्भीरता महसूस करने पर निर्भर है।

अणु और हाइड्रोजन बम, बैलिस्टिक प्रक्षेपास्त्र तथा अत्यन्त विनाशकारी शस्त्रों के इस युग में विश्वशान्ति के लिए मात्र सद्आशा के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है क्योंकि अब इसे एक अति महत्वपूर्ण आवश्यकता के रूप में देखना चाहिए। भारत के स्वतंत्र होने पर हमारे नेताओं की यह धारणा दृढ़ हो गई कि विश्व शान्ति के लिए प्रयास करना भारत की विदेश नीति के मुख्य सिद्धान्तों का अंग होना चाहिए। इसके अतिरिक्त जिस समय हमारा देश स्वतंत्र हुआ, हमारी मुख्य समस्या देश के आर्थिक विकास की थी। आर्थिक विकास केवल शान्ति के वातावरण में ही हो सकता है। जब अंग्रेजों ने अपनी शासन-सत्ता भारत को सौंपी, उस समय भारत की अर्थव्यवस्था पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा भारत का तीव्र शोषण किए जाने से यहां के उद्योग-धंधे और कृषि नष्ट हो गए। भारत कच्चा माल निर्यात करने वाला तथा नियंत्रित बाजार

में ब्रिटिश माल बेचने वाला देश बना दिया गया।

आजादी मिलने के कुछ ही वर्षों पूर्व समाप्त होने वाले विश्व युद्ध ने आर्थिक स्थिति और भी खराब कर दी थी। युद्ध-काल में देश के सभी साधन युद्ध में लग जाते हैं, व्यापार वाणिज्य ठप्प हो जाता है। यदि कोई देश युद्ध में शामिल न होना चाहे तो भी वह इसके कुप्रभाव से बच नहीं सकता, पूरे विश्व के बाजारों में कीमतें बढ़ जाती हैं, आयात-निर्यात रुक जाता है और युद्ध समाप्त होते ही बेरोज-गारी बढ़ जाती है। इस नियम का अपवाद न होते हुए भारत को भी इस प्रकार के प्रभावों का सामना करना पड़ा। एक ऐसे समय में स्वतंत्रता प्राप्त करने पर जबकि संसार द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के परिणामों से अपने को सम्हाल नहीं पाया था, भारतीय नेताओं ने विश्व शान्ति स्थापित करना अपनी विदेश नीति का मूल तत्व निर्धारित किया।

हमारी विदेश नीति का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व निर्गुटता है। द्वितीय महा-युद्ध के बाद विभिन्न राष्ट्रों के दो गुट बन गए। एक गुट का नेतृत्व सोवियत संघ करने लगा और दूसरे गुट का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमरीका। नाटो, सीटो, और सेन्टो, जैसी सैन्य सन्धियां एवं गठबंधन भी किए गए। इस प्रकार की परस्पर विरोधी गुटबंदी और सैन्य गठबंधनों से विश्व में तनातनी, अविश्वास और संदेह का वातावरण बन गया। इसे शांति-युद्ध की संज्ञा दी जाती है।

भारत ने इस गुटों को विश्वशान्ति के लिए अहितकर माना है। वह इनमें से किसी भी संधि या सैन्य गठबंधनों में शामिल नहीं हुआ। इस प्रकार हमारी विदेश नीति का मूलतंत्र यह रहा है कि हम किसी गुट में शामिल नहीं होंगे, बल्कि विश्व की घटनाओं पर हम अपना मत स्वतंत्र रूप से व्यक्त करेंगे।

बहुत से लोग हमारी विदेश नीति को 'तटस्थता' की नीति कहकर सम्बो-धित करते हैं। ऐसा करना उचित नहीं है। जैसा कि हम जानते हैं आजकल की दुनिया में कोई देश अंतर्राष्ट्रीय मामलों में उदासीन या तटस्थ नहीं रह सकता, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम किसी गुट विशेष में शामिल हो जाए। वास्तव में इन गुटों से या सैन्य गठबंधनों से अलग रहकर ही हम अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर स्वतंत्रता पूर्वक विचार कर सकते हैं। उदाहरणार्थ जब मिश्र पर आक्रमण

हुआ तो हमने इग्लैंड और फ्रांस की आलोचना की और जब चैकोस्लावाकिया पर आक्रमण हुआ तो हमने सोवियत संघ की आलोचना करने में संकोच नहीं किया।

विश्व-शान्ति के लक्ष्य को सामने रखकर ही हमने संयुक्त राष्ट्र का समर्थन करना अपनी विदेश-नीति का अंग बनाया। संयुक्त राष्ट्र के आदेशानुसार हमने युद्ध विराम का निरीक्षण करने और शान्ति बनाए रखने के लिए कई स्थानों पर सैनिक दस्ते भेजे हैं। 1952 के कोरियन युद्ध को समाप्त कराने में भारत की गौरवपूर्ण भूमिका की विश्व में सर्वत्र प्रशंसा की गई थी।

भारत की यह नीति रही है कि यथा सम्भव अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शक्ति-प्रयोग द्वारा नहीं बल्कि शान्तिपूर्ण उपायों से सुलझाया जाय। हमारा संविधान भी यह निर्देश देता है कि हमें विश्व शान्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए तथा अंतर्राष्ट्रीय विवादों को पंचायती ढंग से सुलझाने का प्रयास करना चाहिए। पाकिस्तान के साथ कच्छ सीमा विवाद को सुलझाने के लिए हमने अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण का निर्णय स्वीकार किया।

भारत ने जातीयता एवं जातीय भेदभाव का निरन्तर विरोध किया है। उसने दक्षिणी अफ्रीकी सरकार की जातीय-भेदभाद की नीति का घोर विरोध किया। यहां तक कि हमने उस देश से अपना कूटनीतिक संबंध भी विच्छेद कर लिया।

इसके अतिरिक्त, हमने उपनिवेशों के स्वतंत्र होने की भावना के प्रति हार्दिक सहानुभूति व्यक्त की। भारत ने हिन्दू-चीन में फ्रांसीसी साम्राज्य का तथा वियतनाम में अमरीका युद्ध का विरोध किया। भारत ने पुर्तगाली उपनिवेशों जैसे अंगोला आदि के स्वातंत्र्य-संग्राम के पक्ष में भी आवाज उठाई। इस प्रकार भारतीयों ने उन सभी राष्ट्रों का समर्थन किया जो साम्राज्यवाद का विरोध करते हैं और अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हैं।

भारत की विदेश नीति के अति महत्वपूर्ण तत्वों को 'पंचशील' के माध्यम से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। 'पंचशील' के पांच सिद्धान्तों का निरूपण सर्वप्रथम 29 अप्रैल 1954 में भारत-चीन समझौता में किया गया था। धीरे-धीरे अफ्रीका और एशिया के बहुत से देशों ने इन सिद्धान्तों को स्वीकार कर

लिया। यूरोप में सर्वप्रथम योगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो ने इसका समर्थन किया। 'पंचशील' के प्रमुख पांच सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

1. एक दूसरे के प्रति प्रादेशिक अखण्डता तथा सर्वोच्च सत्ता के लिए पारस्परिक सम्मान की भावना।
2. एक दूसरे के भाग पर आक्रमण न करना।
3. एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप।
4. समानता और पारस्परिक लाभ।
5. शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व।

भारत की विदेश नीति इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित रही है। जहां हम दूसरे देशों की प्रादेशिक अखंडता एवं विचारधाराओं का सम्मान करते हैं वहां हम अपने देश की भी सुरक्षा एवं प्रादेशिक अखंडता को विशेष महत्व देते हैं। शान्ति या सहअस्तित्व का यह अर्थ कदापि नहीं है कि यदि हमारे देश पर कोई आक्रमण करे तो हम अपनी रक्षा न करें।

विश्व शान्ति की स्थापना के लिए हमारे देश ने निःशस्त्रीकरण की नीति का सदैव समर्थन किया है। संसार के शस्त्रों के अधिकाधिक उत्पादन से युद्ध की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं। 1956 में हमारी सरकार ने निःशस्त्रीकरण से संबधित प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र की महा सभा में प्रस्तुत किया। भारत की सदा से यह मान्यता रही है कि इस विश्व में कोई देश तभी उन्नति कर सकता है जबकि वह शस्त्रीकरण की होड़ में न पड़े और जटिल आणविक शस्त्रों का निर्माण न करें। हमारी विदेश नीति सदैव जन-आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करती रही है। लोकतंत्र में विदेश नीति भी आम सहमति का प्रतिनिधित्व करती है और जन सहयोग के बिना वह सफल नहीं हो सकती।

अभ्यास के प्रश्न

1. भारत की विदेश नीति के मुख्य तत्व कौन से हैं ?
2. वर्तमान काल में संसार के लिए निःशस्त्रीकरण क्यों आवश्यक है ?
3. 'पंचशील' के पांच सिद्धान्तों का वर्णन करो ।
4. निम्नलिखित संकेताक्षरों को स्पष्ट करो :
   (क) सीटो
   (ख) सेंटो
   (ग) नाटो

कुछ करने को

1. विश्व के मानचित्र में इस अध्याय में वर्णित स्थानों को अंकित करो ।
2. विश्व प्रसिद्ध नेताओं के निम्न विषयों पर दिए गए विचारों के उद्धरण एकत्र करो और अपनी अभ्यास पुस्तिका पर लिखो :
   (1) निर्गुटता
   (2) निःशस्त्रीकरण
   (3) पंचशील

अध्याय–13

भारत और उसके पड़ोसी

भारत एक विशाल देश है। किसी भी विशाल देश के बहुत से पड़ोसी होते हैं। पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, चीन, बंगलादेश और श्रीलंका भारत के निकटतम पड़ोसी हैं। भारत और इन देशों के बीच अनेक प्रकार के समान ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक संबंध हैं। भारत शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व में आस्था रखता है। स्वतंत्रता के पश्चात् उसका मुख्य प्रयास यही रहा है कि वह अपने पड़ोसी देशों सहित विश्व के सभी देशों से मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखें।

भारत और नेपाल

भारत और नेपाल की सीमाएं उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग और हिमालय के दक्षिणी ढाल पर मिलती हैं। भारत ने नेपाल के मामलों में अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया है। नेपाल के आर्थिक विकास में योगदान दिया है। हमने उन्हें भारत और नेपाल के बीच एक मात्र सम्पर्क मार्ग जिसे त्रिभुवन राजपथ कहते हैं, के निर्माण में सहायता भी दी है। संस्कृति, इतिहास, व्यापार और वाणिज्य की दृष्टि से इन दोनों देशों के संबंध अटूट हैं। नेपाल चारों ओर से भूमि सीमाओं से घिरा हुआ देश है और इसलिए इसको अपने व्यापार के लिए एवं संसार के अन्य देशों से सम्पर्क करने के लिए भारत पर निर्भर रहना पड़ता

है। भूटान से भी भारत के मैत्रीपूर्ण संबंध हैं।

भारत और चीन

कई शताब्दियों तक इन दोनों पड़ोसियों का व्यवहार मित्रतापूर्ण रहा है। दोनों देशों में सांस्कृतिक संबंध विकसित करने में बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत के अनेक बौद्ध विद्वान चीन गए। अनेक चीनी यात्री ज्ञान की खोज में भारत आए जिनमें फाहियान, ह्वेनसांग और इत्सिंग के नाम प्रमुख हैं। बहुत से चीनी छात्र भी अध्ययन करने के लिए नालन्दा आया करते थे। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक भारत और चीन के राजनैतिक संबंध मैत्रीपूर्ण थे। भारत 1947 में स्वतंत्र हो गया और एक क्रांति के फलस्वरूप चीन भी 1949 में स्वतंत्र हो गया। प्रारम्भ से ही भारत ने पीपुल्स रिपबलिक ऑफ चाइना को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता दिए जाने का समर्थन किया। इस समय चीन भी संयुक्त राष्ट्र का सदस्य है। चीन ने भारत की शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति की सराहना की थी और 'पंचशील' पर हस्ताक्षर किए थे। किन्तु बाद में चीन ने भारत के प्रति अपनी नीति बदल दी। 20 अक्टूबर 1962 को चीनी फौजों ने नेफा (अब अरुणाचल प्रदेश) और लद्दाख की सीमाओं पर जोरदार आक्रमण किया। हमने अपनी सीमाओं की रक्षा की। यद्यपि युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो गया तथापि दोनों देशों में संबंध पुनः सामान्य न हो पाए। कुछ वर्ष बाद जब पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध युद्ध घोषित किया जिसमें चीन ने पाकिस्तान का पक्ष लिया। भारत ने अभी आशा नहीं छोड़ी है और वह चीन से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने का वास्तविक प्रयास कर रहा है।

भारत और पाकिस्तान

यदि ऐतिहासिक, भौगोलिक, भाषाई, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टि से देखा जाए तो विश्व के कोई भी दो अन्य देशों में इतनी समानता नहीं है जितनी कि भारत और पाकिस्तान में। 1947 में भारत का विभाजन हुआ और फलस्वरूप पाकिस्तान का जन्म हुआ। विभाजन के बाद से कुछ ऐसी परिस्थितियां

उत्पन्न होती गईं जिनके कारण भारत और पाकिस्तान के संबंध शत्रुतापूर्ण बनते गए। ये विवाद सम्पत्ति के बटवारे, सीमा विभाजन, नदी जल के वितरण इत्यादि मामलों से संबंधित थे। इन सभी समस्याओं का समाधान दोनों देशों के मध्य किए गए व्यवहारिक समझौता-वार्ताओं द्वारा सम्भव हो सका। किन्तु कश्मीर के मामले पर भारत और पाकिस्तान के बीच कोई व्यवहारिक समझौता नहीं हो पाया। तुम यह पढ़ चुके हो कि स्वतंत्रता प्राप्त होने वाले वर्ष में ही पाकिस्तान ने कश्मीर के एक बड़े भू-भाग पर अधिकार कर लिया था। जब से पाकिस्तान का निर्माण हुआ है तभी से वह कश्मीर के प्रति आक्रमणकारी नीति अपनाए हुए है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक ही पखवाड़े के भीतर पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया और वहां हमारे देश का बड़ा भू-भाग अपने अधिकार में कर लिया। हमने अपनी फौजें भेजी जिन्होंने पाकिस्तानी फौजों को आगे बढ़ने से रोक दिया। संयुक्त राष्ट्र संघ के आदेशों के अनुरूप हमने इस विवाद का निपटारा शक्ति प्रयोग द्वारा नहीं किया। संयुक्त राष्ट्र ने युद्ध-विराम कराने में सहायता की लेकिन कश्मीर का एक महत्वपूर्ण भाग अभी भी पाकिस्तान के अधिकार में है।

1965 में पाकिस्तान ने कश्मीर पर अधिकार जमाने का एक और प्रयास किया। लेकिन हमारी फौजों के आगे वे टिक न सके। दोनों देशों के बीच संबंध सुधारने के उद्देश्य से एक समझौता हुआ जिसे 'ताशकन्द समझौता' कहते हैं। लेकिन 1971 में पाकिस्तान ने भारत पर पुनः आक्रमण कर दिया। भारत ने इस बार भी उसके आक्रमण को पूर्णतया विफल कर दिया। पाकिस्तान से संबंध सुधारने में भारत की ओर से कोई कसर बाकी नहीं रखी गई। दोनों देशों के संबंधों में सुधार की दिशा में 'शिमला-समझौता' एक अन्य कदम है।

भारत और बंगलादेश

पिछले वर्षों के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण घटना एक स्वतंत्र देश के रूप में बंगलादेश का उदय है। इसके पूर्व बंगलादेश को पूर्वी-पाकिस्तान या पूर्वी-बंगाल कहते थे। पश्चिमी पाकिस्तान के सैन्य शासकों ने पूर्वी-बंगाल को देश के

प्रशासनकार्यों में भाग लेने के अधिकार से वंचित कर दिया। दोनों के बीच तनाव बढ़ता गया और 1970-71 में ऐसी स्थिति आ गई कि पश्चिमी पाकिस्तान की फौज ने पूर्वी-बंगाल के निवासियों को नृशंसतापूर्वक कुचलने का प्रयास किया। पाकिस्तान के सैन्य-गुट के विरुद्ध पूर्वी-बंगाल की सेना ने जो मुक्तिवाहिनी कहलाती थी, शेख मुजीबर रहमान के नेतृत्व में तथा भारत की सहायना से संघर्ष किया। 1971 में पूर्वी-बंगाल के नेताओं को शासनभार सौप दिया गया और बंगलादेश का जन्म हुआ।

बंगलादेश के गणतंत्र को मान्यता देने वाला सबसे पहला देश भारत था। बंगलादेश और भारत के बीच कूटनीतिक एवं व्यापारिक संबंध हैं। अपने निजी साधनों के अंतर्गत भारत ने बंगलादेश के पुनर्निर्माण में सहायता भी की। हाल ही में फरक्का बांध के प्रश्न पर दोनों देशों में सहमति हो गई है।

भारत और श्रीलंका

श्रीलंका मुख्यत: एक बौद्ध देश है। तुम्हें याद होगा कि सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा ने श्रीलंका की यात्रा की थी और वहां बौद्ध-धर्म के प्रसार-कार्य में सहायता की थी। भारत में बौद्ध-धर्म से संबंधित अनेक तीर्थ स्थान हैं, जैसे, सांची, सारनाथ, बोध गया और कुशीनगर। श्रीलंका से सहस्रों लोग तीर्थयात्रा के लिए हमारे देश में आते हैं। श्रीलंका में बहुत से भारतीय बस गए हैं और वे चाय तथा रबड़ बागान में कार्य करते हैं। श्रीलंका से हमारे राज-नैतिक संबंध भी सौहार्दपूर्ण हैं और हम दोनों पारस्परिक सहायता एवं सहयोग की नीति का अनुसरण करते हैं।

यद्यपि भारत और श्रीलंका के संबंध न्यूनाधिक सौहार्दपूर्ण रहे हैं तथापि श्रीलंका में बसे हुए भारत के मूल निवासियों की समस्या दोनों देशों के संबंधों को कलुषित कर रही है। 1949 में जिस समय श्रीलंका स्वतंत्र हुआ, उसने लग-भग दस लाख भारतीयों को नागरिकता से वंचित कर दिया। ये राज्य-विहीन तथा वहां के लिए अवांछित हो गए। श्रीलंका उन्हें पूर्णरूप से नागरिक मानने को तैयार न था।

इसके विपरीत भारत सरकार श्रीलंका में निवासित, मूल भारतवासियों के लिए किसी प्रकार का वैधानिक उत्तरदायित्व नहीं लेना चाहती थी। लेकिन भारत ने यह घोषित कर दिया था कि उनमें से यदि कोई 'स्वेच्छा' से भारतीय नागरिक बनना चाहता है, तो उसका स्वागत किया जाएगा। इस प्रकार भारत ने श्रीलंका में रहने वाले अनेक मूल भारतवासियों को भारतीय नागरिकता प्रदान की।

अभ्यास के प्रश्न

1. भारत और चीन के बीच किस प्रकार के संबंध हैं ?
2. हमारे देश और पाकिस्तान के बीच कौन-कौन से विवाद थे ? किस विवाद का अभी तक हल नहीं निकल पाया।
3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखो :
   (अ) भारत और बंगलादेश
   (ब) श्रीलंका में भारत के मूल निवासी

कुछ करने को

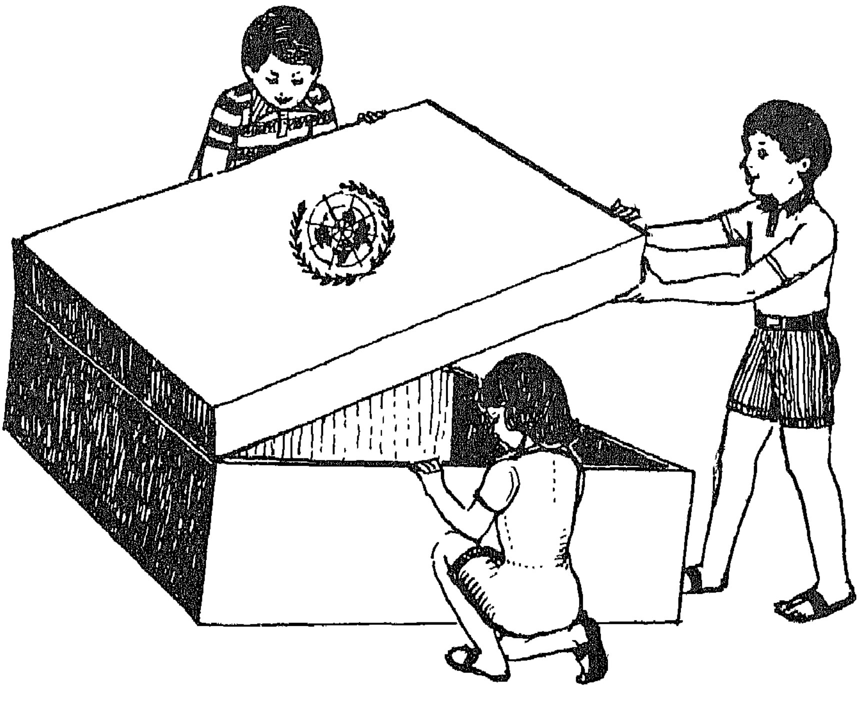
1. भारत के मानचित्र में अपने देश की सीमांकन करो तथा पड़ोसी देशों के नाम भी अंकित करो।

अध्याय–14

भारत और संयुक्त राष्ट्र

द्वितीय विश्व युद्ध में भीषण नरसंहार हुआ। करोड़ों लोग मारे गए और उस से भी अधिक लोग घायल तथा अपंग हो गए। धन-सम्पत्ति की जो हानि हुई उसका अनुमान लगाना कठिन है। विश्व के अनेक नेता चिंतित हो उठे कि यदि तीसरा महायुद्ध हुआ तो पूरे संसार का ही विनाश हो जाएगा। अत: वे एक ऐसे संगठन की कल्पना करने लगे जो संसार को भयंकर युद्ध की पीड़ा से बचा सके।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के बारे में जानो



प्रथम महायुद्ध के बाद (1919 में) भी इसी उद्देश्य से लीग ऑफ नेशन्स नामक एक विश्व संगठन की स्थापना की गई थी। यह संस्था द्वितीय विश्वयुद्ध रोकने में सफल न हुई और 1939 में विश्व युद्ध छिड़ ही गया। द्वितीय महायुद्ध में पुनः इस प्रकार के संगठन की आवश्यकता महसूस होने लगी। इसलिए जनवरी 1942 में ब्रिटेन, अमरीका, चीन और रूस की ओर से एक घोषणा हुई जिसमें विभिन्न राष्ट्रों के एक संगठन की आवश्यकता पर जोर दिया गया। 30 अक्टूबर 1943 को ब्रिटेन, अमरीका, चीन, रूस, फ्रांस के विदेश मंत्रियों ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की "हम इस बात की आवश्यकता महसूस करते हैं कि जितना शीघ्र हो सके, एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन बनाया जाए। यह संगठन समस्त शान्तिप्रेमी राज्यों की समान प्रभुता पर आधारित होगा और इसकी सदस्यता छोटे तथा बड़े सभी राज्यों के लिए खुली होगी। इसका उद्देश्य शान्ति सुरक्षा स्थापित करना होगा।"

इन उद्देश्यों को लेकर 50 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन अमरीका के प्रमुख नगर सैन्टफ्रांसिसको में 1945 में अप्रैल महीने में बुलाया गया। इन पचास राष्ट्रों ने मिलकर संयुक्त राष्ट्र संघ की विधिवत् स्थापना की। तभी से हम प्रत्येक वर्ष 24 अक्टूबर (इस तिथि पर इन राज्यों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र की पुष्टि की थी) को हम संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप में मनाते आ रहे हैं। 1970 में संयुक्त राष्ट्र संघ की रजत जयन्ती भी मनाई गई।

संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र में निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है :

1. अंतर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित करना।
2. विभिन्न राष्ट्रों में समान मानवीय अधिकारों तथा आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर आधारित मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करना।
3. अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा मानवीय समस्याओं को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने में सहायता करना तथा सभी के लिए मानवीय अधिकारों एवं मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान में वृद्धि करना।
4. उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न राष्ट्रों के कार्यों में सामजस्य

स्थापित करने के लिए इस संस्था का केन्द्र के रूप में प्रयोग करना।

इन उद्देश्यों के अध्ययन से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि संयुक्त राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य मानव जाति को युद्ध की विभीषिका से बचाना है। विश्व में शान्ति स्थापित हो जाने पर ही राष्ट्र अपनी सम्पूर्ण शक्ति एवं साधन जनता का जीवन-स्तर ऊंचा करने में लगा सकेंगे। ये सभी उद्देश्य हमारे राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुकूल हैं। हमारे संविधान में भी संयुक्त राष्ट्र के इन आदर्शों को मान्यता दी गई है। उसमें उन उद्देश्यों का उल्लेख भी किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र के छः अंग हैं—(1) महासभा, (2) सुरक्षा परिषद्, (3) आर्थिक तथा सामाजिक परिषद्, (4) प्रन्यास परिषद्, (5) अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय, तथा (6) सचिवालय।

सदस्य-राष्ट्रों के प्रतिनिधि महासभा में अधिक से अधिक पांच प्रतिनिधि भेज सकते हैं लेकिन मतदान के समय एक राष्ट्र एक ही मत देने का अधिकारी है। साधारणतः महासभा की बैठक वर्ष में एक बार होती है और अगले एक वर्ष के लिए वह अपना सभापति चुनती है। 1953 में महासभा ने संयुक्त राष्ट्र में भेजे गए भारतीय प्रतिनिधि मंडल की नेता श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित को अपना सभापति चुना। यह सभा संयुक्त-राष्ट्र की विभिन्न परिषदों के सदस्यों का भी निर्वाचन करती है।

सुरक्षा परिषद् को संयुक्त राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। इसके सदस्य दो प्रकार के होते हैं—स्थाई एवं अस्थाई। इसके स्थाई सदस्यों में अमरीका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, तथा जनवादी चीन है। शेष दस अस्थाई सदस्य दो वर्ष की अवधि के लिए महासभा द्वारा चुने जाते हैं। हमारा देश कई बार इस परिषद् का सदस्य निर्वाचित हो चुका है।

आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् में 18 सदस्य होते हैं। ये तीन वर्ष के लिए महासभा द्वारा निर्वाचित होते हैं। इस परिषद् का उद्देश्य विभिन्न राष्ट्रों का आर्थिक तथा सामाजिक विकास करना है।

प्रन्यास परिषद् कुछ विशिष्ट प्रकार के प्रदेशों के शासन की देख-रेख का निरीक्षण करती है। इन प्रदेशों में कुछ तो वे हैं जो पहले लीग ऑफ नेशन्स से

प्रशासित होते थे और कुछ द्वितीय महायुद्ध के बाद प्रशासन हेतु संयुक्त राष्ट्र के अंतर्गत आ गए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में 15 न्यायाधीश होते हैं, जो 9 वर्ष तक अपने पद पर रह सकते हैं। यह न्यायालय अंतर्राष्ट्रीय विवादों का निपटारा करता है।

सचिवालय में संयुक्त राष्ट्र के कार्य-संचालन के लिए कर्मचारी वर्ग रहता है। इसका मुख्य प्रशासक महा-सचिव (सेक्रेटरी जनरल) होता है। उसे सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा नियुक्त करती है। प्रशासनिक कार्यों के अतिरिक्त उसका यह भी दायित्व है कि विश्व शान्ति भंग करने वाले मामलों की ओर सुरक्षा परिषद् का ध्यान आकर्षित करे। आजकल इसके महासचिव जेवियर पेरे डी क्वेयार हैं। ये पेरू निवसी हैं।

संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनेक विशेष संस्थाएं बनाई गई हैं। ये संस्थाएं आर्थिक व सामाजिक परिषद् के अंतर्गत कार्य करती हैं। इनमें कुछ इस प्रकार हैं—

1. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन
2. खाद्य और कृषि संगठन
3. संयुक्त राष्ट्रीय शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन
4. अंतर्राष्ट्रीय नागरिक यातायात संगठन
5. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष
6. विश्व स्वास्थ्य संगठन
7. विश्व डाक संगठन
8. अंतर्राष्ट्रीय दूर संचार संघ
9. विश्वयुद्ध विज्ञान संगठन
10. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन

संयुक्त राष्ट्र से हमारा सहयोग

प्रारम्भ से ही हमने संयुक्त राष्ट्र के साथ सहयोग किया है। अपने प्रस्तावों के अनुसार संयुक्त राष्ट्र को बहुधा युद्ध विराम कराने पड़ते हैं, किन्तु इसके पास

अपनी कोई निजी सेना नहीं हैं। ऐसे अवसरों पर संयुक्त राष्ट्र सदस्य राष्ट्रों से सैनिक भेजने का अनुरोध करता है। इसके अनुरोध पर भारत ने भी अनेक अवसरों पर अपने सैनिक भेजे। भारत ने कोरिया के युद्ध में घायलों की प्राथमिक चिकित्सा के लिए डाक्टरों का एक दल भेजा था। हमारी निष्पक्षता से प्रभावित होकर भारत को युद्ध बंदियों से संबंधित एक आयोग का अध्यक्ष बनाया गया। अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति आइजनहावर ने हमारी फौजों के निष्पक्षकार्य की प्रशंसा करते हुए कहा था कि अभी हाल के वर्षों में किसी अन्य सेना ने इतना अधिक नाजुक और कठिन कार्य नहीं किया जितना कि भारतीय सेनाओं ने कोरिया में किया है। इन अफसरों तथा सैनिकों का कार्य भारतीय सेना की उच्चतम ख्याति के अनुरूप था। वे अधिकतम प्रशंसा के पात्र हैं।

1945 में हिन्द-चीन के युद्ध विराम का निरीक्षण करने के लिए जो आयोग नियुक्त किया गया था उसका अध्यक्ष भारत को ही बनाया गया। संयुक्त राष्ट्र के आदेश पर हमारी फौजें गाजा पट्टी और लेबनान में भी शांति स्थापित करने गई। संयुक्त राष्ट्र की शांति सेना ने भारतीय सैन्य अधिकारियों की देख-रेख में कई बार कार्य किया है।

हमारे देश ने संयुक्त राष्ट्र के समक्ष सभी पराधीन देशों की स्वाधीनता के पक्ष में तथा जातीय भेद-भाव के विरुद्ध अपने विचार व्यक्त किए हैं। हमने इन्डोनेशिया, लीबिया, ट्यूनीशिया, मलाया, घाना आदि देशों की स्वतंत्रता का समर्थन किया है। 1960 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा में पराधीन देशों को स्वतंत्रता प्रदान किए जाने से संबंधित एक घोषणा-पत्र जारी किया गया। इस घोषणा-पत्र को कार्यान्वित करने के लिए जो समिति बनी उसका प्रथम अध्यक्ष भारत को बनाया गया। भारत ने दक्षिणी अफ्रीका में जातीय-भेदभाव के प्रश्न पर अनेक बार महासभा में आवाज उठाई।

संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में निःशस्त्रीकरण के प्रश्न पर एक सम्मेलन बुलाया गया। अठारह राष्ट्रों के प्रतिनिधि इसके सदस्य हैं। इसमें भारत ने महत्व-पूर्ण योगदान दिया है। हमारा सदा से यह मत रहा है कि आणविक शक्ति का प्रयोग केवल मानव-कल्याण के लिए किया जाना चाहिए, न कि शस्त्र-निर्माण के

लिए। विभिन्न अवसरों पर महासभा में बोलते हुए भारतीय नेताओं ने निःशस्त्रीकरण को समय की मांग बतलाया और कहा कि शस्त्र उत्पादन पर जो धन खर्च किया जा रहा है यदि उसका थोड़ा अंश भी बचा लिया जाए तो उससे मानव कल्याण के असीम साधन उपलब्ध हो जाएंगे जिनसे आर्थिक विषमता दूर करने में बहुत काफी सहायता मिलेगी।

संयुक्त राष्ट्र के कार्य

जहां एक ओर विश्व के राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र को सहयोग प्रदान करते हैं, वहां दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्र भी उनकी सहायता करता है। संयुक्त राष्ट्र की विशेष संस्थाओं ने हमारे देश की सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, तकनीकी एवं वैज्ञानिक उन्नति में सराहनीय योग दिया है। उनके कार्यों का कुछ विवरण इस प्रकार है—

खाद्य एवं कृषि संगठन ने उत्तर-प्रदेश में तराई के प्रदेश को कृषि योग्य बनाने में सहायता दी है। राजस्थान में रेगिस्तान प्रसारण को रोकथाम करने तथा इसे हरा-भरा बनाने में भी यह संगठन प्रयत्नशील है। भारत में मत्स्य-उद्योग तथा चावल-उत्पादन केन्द्र भी स्थापित किए गए हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत में जन-स्वास्थ्य के लिए प्रशंसनीय कार्य किए हैं। इसके माध्यम से हमने मलेरिया-उन्मूलन के लिए डी० डी० टी० तथा तपेदिक के निवारण के लिए बी० सी० जी० वैक्सीन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध किया है। इसने चिकित्सा के क्षेत्र में उच्च अध्ययन हेतु अनेक छात्र-वृत्तियां भी दी हैं और बाल-कल्याण के लिए अनेक प्रकार की सहायता व सुविधाएं भी उपलब्ध की हैं।

शैक्षिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में भी भारत को संयुक्त राष्ट्र से काफी मदद मिली है। इसकी विशेष संस्था 'यूनेस्को' ने भारत में शिक्षा-प्रसार में यथेष्ट योगदान दिया है। तकनीकी क्षेत्र में, विभिन्न देशों से अध्यापकों एवं छात्रों के आदान-प्रदान करने में तथा अन्य देशों से सांस्कृतिक सम्पर्क बढ़ाने में भारत को यूनेस्को से सहायता मिली है।

भारत के आर्थिक विकास में भी संयुक्त-राष्ट्र ने अनेक प्रकार से सहायता

पहुंचाई है और अंतर्राष्ट्रीय बैंक ने पंचवर्षीय योजनाओं के लिए ऋण दिए हैं। अनेक योजनाओं को सफल बनाने के लिए हमें तकनीकी विशेषज्ञों का परामर्श भी उपलब्ध हुआ है।

इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र की लक्ष्य-प्राप्ति में भारत पूर्ण रूप से सहयोग देता रहा है और उसके बदले में भारत भी संयुक्त राष्ट्र से अपने उद्देश्यों एवं आदर्शों की पूर्ति में सहयोग पा रहा है। भारत के सुझाव पर ही 1965 का वर्ष 'अंतर्राष्ट्रीय सहयोग वर्ष' घोषित किया गया। वास्तव में आधुनिक कला, विज्ञान तथा तकनीकी प्रगति अब राष्ट्रीय सीमाएं पार कर चुकी हैं। अत: मानव का कल्याण अंतर्राष्ट्रीय सहयोग पर ही निर्भर है।

अभ्यास के प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र की स्थापना क्यों हुई ?
2. संयुक्त राष्ट्र के मुख्य अंगों का संक्षिप्त परिचय दो।
3. संयुक्त राष्ट्र की विशेष संस्थाओं में से किन्हीं चार के नाम व कार्य लिखो।
4. भारत ने संयुक्त राष्ट्र को किस प्रकार सहयोग प्रदान किया ?
5. भारत को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता से क्या लाभ हुआ ?
6. निम्नलिखित में से कौन संयुक्त राष्ट्र की विशेष संस्था है :
   (1) अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय
   (2) सुरक्षा परिषद्
   (3) प्रन्यास परिषद्
   (4) विश्व स्वास्थ्य संगठन
   (5) आर्थिक तथा सामाजिक परिषद्

7. संयुक्त राष्ट्र सघ से संबंधित जो तथ्य सही हों उनके आगे (✓) का चिन्ह लगाओ—
   (क) इसके पास एक बड़ी फौज है।
   (ख) इसके सचिवालय के प्रधान को अध्यक्ष कहते हैं।
   (ग) सुरक्षा परिषद में पांच स्थाई सदस्य हैं।
   (घ) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष इसकी विशेष संस्था है।
   (ङ) अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय इसका प्रमुख अंग है।

कुछ करने को

1. विभिन्न देशों के डाक-टिकट एकत्र करो।
2. विश्व के मानचित्र में संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख सदस्य राष्ट्रों को दिखलाओ।
3. किसी दूसरे देश के निवासी को एक पत्र लिखो और उसे अपने देश की भाषा, वेश-भूषा आदि की जानकारी दो।
4. संयुक्त-राष्ट्र से संबंधित किसी परियोजना तैयार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र के नई दिल्ली कार्यालय से उसके कुछ प्रकाशन उपलब्ध करो।